उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रयागराज

(MAYO-107)

प्राकृतिक चिकित्सा

प्रथम खण्ड – प्राकृतिक चिकित्सा का परिचय

इकाई.01– प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा एवं विकास, प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त।

इकाई.02– प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास, पंचमहाभूत एवं महातत्व का परिचय, स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा, विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त।

इकाई.03– रोग की तीव्र व जीर्ण अवस्थाएं,जीवनी शक्ति बढ़ाने के उपाय।

द्वितीय खण्ड – जल चिकित्सा

इकाई .04 – जल का महत्व, जल के गुण, विभिन्न तापक्रम के जल का शरीर पर प्रभाव।

इकाई .05 – जल चिकित्सा के सिद्धान्त, जल के प्रयोग की विधियाँ जलपान, साधारण व घर्षण स्नान, कटि स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नान, रीढ़ स्नान, उष्ण पाद स्नान।

इकाई .06 – एनिमा की विधि एवं परिचय, एनिमा में प्रयुक्त होने वाले जल, तेल तथा विविध रोगों में एनिमा का प्रयोग एवं सावधानियां।

तृतीय खण्ड– मिट्टी, सूर्य व वायु चिकित्सा

इकाई.07 – मिट्टी का महत्व, प्रकार, गुण, शरीर पर मिट्टी का प्रभाव, मिट्टी की पट्टिया, स्नान मिट्टी ।

इकाई.08 – सूर्य प्रकाश का महत्व, सूर्य स्नान, विभिन्न रंगो का चिकित्सीय प्रयोग।

इकाई.09 – वायु का महत्व, वायु का आरोग्यकारी प्रभाव, वायु स्नान।

चतुर्थ खण्ड – अभ्यंग / उपवास

इकाई. 10– अभ्यंग चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त व उपयोग।

इकाई. 11– अभ्यंग की विधियां व अभ्यंग में प्रयुक्त तेल, विभिन्न रोगों में अभ्यंग का प्रयोग व सावधानियाँ

इकाई. 12 – उपवास का अर्थ, उपवास के चिकित्सीय लाभ, उपवास सम्बन्धी भ्रामक धारणायें, उपवास के नियम, उपवास के प्रकार–दीर्घ, लघु, पूर्ण, अर्ध, जल उपवास, प्राकृतिक आहार, रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रयागराज

एम.ए.वाई.ओ.– 107 (MAYO-107)

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह –कुलपति, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज ।

विशेषज्ञ समिति –

डॉ. मीरा पाल, प्रभारी निदेशक	स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा UPRTOU
डॉ. अतुल मिश्रा, असि, प्रोफेसर (सं.)	दर्शन शास्त्र, UPRTOU
श्री अमित कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री अनुराग सोनी, असिस्टेंट, प्रोफेसर	योग, आर.एम.एल.यू., अयोध्या
श्री अनुराग शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री निकेत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
सुश्री जूमी सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU

लेखक –

श्री प्रांशु कुमार मौर्य– सहायक आचार्य (योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा) देव संस्कृति विश्वविद्यालय, सांकरा, कुम्हारी, दुर्ग, छत्तीसगढ़ ।

सम्पादक –

डॉ रंजना मिश्रा – देव संस्कृति विश्वविद्यालय, सांकरा कुम्हारी दुर्ग छत्तीसगढ़ ।

परिमापक –

डॉ. मीरा पाल – प्रभारी निदेशक, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज ।

समन्वयक –

श्री अमित कुमार सिंह – सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज ।

खण्ड–1 प्राकृतिक चिकित्सा का परिचय

परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा **(MAYO-107)**

पाठ्यक्रम का यह पहला खण्ड है, जिसका शीर्षक प्राकृतिक चिकित्सा के संदर्भ में बताया गया है, जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा का स्वरूप, अर्थ ,परिभाषा, सिद्धान्त एवं इतिहास से लेकर पंचतत्वों से होने वाली समस्त चिकित्सा के बारे में परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाईयाँ हैं–

इकाई–1 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा एवं विकास, प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त।

इकाई–2 प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास, पंचमहाभूत एवं महातत्व का परिचय, स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा, विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त।

इकाई–3 रोग की तीव्र व जीर्ण अवस्थाएं, जीवनी शक्ति बढ़ाने के उपाय।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा का परिचय , उपयोगिता के साथ साथ प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त, पंचमहाभूत, महातत्व, स्वास्थय एवं रोग की अवधारणा, विजातीय द्रव्य, रोग की तीव्र व जीर्ण अवस्था के साथ जीवनी शक्ति बढ़ाने के उपाय आदि के विषय में विस्तार पूर्वक जान सकेंगे।

इकाई– 01

प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा एवं विकास, प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ , परिभाषा

1.4 प्राकृतिक चिकित्सा का विकास

1.5 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांत

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 सारांश

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना.

प्राकृतिक चिकित्सा एक जीवन जीने की कला है जब से मनुष्य का जन्म हुआ तब से वह प्रगति के पथ पर चलते हुए प्रकृति का अनुसरण करते हुए अपने जीवन को सफल बनाया वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति भौतिकवादी दुनिया में इतना आगे बढ़ता चला गया कि वह प्रकृति को भूल गया जैसे–जैसे प्रकृति को भूलता चला गया वैसे वैसे वह विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित होने लगा। बीमारियों से निजात पाने के लिए बड़े–बड़े डॉक्टर बड़ी–बड़ी एलोपैथिक बड़ी–बड़ी दवाइयों के माध्यम से ठीक करने लगे। जिसका दुष्प्रभाव पड़ने पर शरीर में विभिन्न प्रकार के अन्य रोग भी उत्पन्न होने लगे। व्यक्ति की जीवनी शक्ति का ह्रास होने लगा व्यक्ति परेशान पीड़ित और विभिन्न प्रकार के मानसिक बीमारियों से ग्रसित होने लगा। किंतु

जो व्यक्ति गांव में रहते हैं जो व्यक्ति प्रकृति अनुसरण में रहते हैं उनका जीवन साधारण होने के बावजूद भी वह स्वास्थ्य प्रसंनचित्त जीवन व्यतीत करते हैं ।इसके पीछे मुख्य कारण है कि प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक जीवन एक प्राकृतिक प्रणाली है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन को प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाकर एक कलात्मक ढंग से जीने का प्रयास करता है। प्राकृतिक जीवन जीने से व्यक्ति के जीवन से भिन्न प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं। जिसको प्राकृतिक चिकित्सक के नाम से भी जाना जाता है। कहा जाता है प्रकृति स्वयं चिकित्सक है जो व्यक्ति प्रकृति का अनुसरण करता है उसकी प्रकृति स्वयं रक्षा करती है प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली प्रकृति का नियम है, एक धर्म है जिस पर चल कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को पूर्ण और आनंदित कर सकता है और अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है प्राकृतिक चिकित्सा का धर्म एवं स्वास्थ्य का आपस में सामंजस्य एवं समावेशन माना गया है प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को कहते हैं जिस पर चलने से स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है और व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्य को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

1.2 उद्देश्य

- प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेगें।
- प्राकृतिक चिकित्सा के विकाश का अध्ययन करेगें।
- प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ , परिभाषा एवं विकास

प्रकृति के संरक्षण में रहने को प्राकृतिक जीवन कहा जाता है। जब मानव के जीवन में किसी प्रकार से बीमारियां उत्पन्न होती हैं । उनको प्रकृति के संरक्षण में रहकर के जब ठीक किया जाता है ।उसे प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है इस चिकित्सा में प्रकृति के पांच तत्व आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व ,पृथ्वी तत्व का उपयोग करके शरीर को स्वस्थ बनाया जाता है। क्योंकि व्यक्ति की जीवनशैली जब विकृत हो जाती है उसके अंदर आलस्य, प्रमाद, काम ,क्रोध ,लोभ ,मद, मत्सर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे आधियां और व्याधियां भी उत्पन्न होती हैं। तब व्यक्ति के पंचतत्व में असाम्यावस्था उत्पन्न हो जाती है यही असाम्यावस्था ही रोग को जन्म देती है । प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्यों को माना गया है ।यही विजातीय द्रव्य शरीर के अंदर एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं । उनका निष्कासन नहीं हो पाता है । तब हम प्रकृति के तत्वों का उपयोग करके उन विजातीय द्रव्यों को

दूर करते हैं और मनुष्य को पूर्ण रूप से शारीरिक ,मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से स्वास्थ्य प्रदान कर उनको जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं । यही प्राकृतिक चिकित्सा है प्रकृति के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा है इसमें हम प्रकृति के सभी उपकरणों को रोगों को दूर करने के लिए उपयोग करते हैं जिनसे मानव जीवन प्रगति पथ पर विकसित होता है आइए हम प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषाओं के बारे में विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सकों और महान पुरुषों के द्वारा जानकारी प्राप्त करेंगे ।

प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषाएं–

- **पं० श्रीराम शर्मा आचार्य –** प्राकृतिक चिकित्सा एक जीवन जीने की कला है जिसमे प्राकृतिक पदार्थों विशेषतः प्रकृति के पांच मूल तत्वों द्वारा स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारक उपाय किया जाता है

- **लुईस कुने के अनुसार–** प्राकृतिक प्रणाली जिसका चिकित्सा के रूप में उपयोग करते हैं तथा जो दूसरी पद्धतियों से गुण में बहुत अच्छी है, बिना औषधि या आपरेशन के उपचार की आधार की शिक्षा है।

- **जे.एम. जुस्सावाला के अनुसार–** प्राकृतिक चिकित्सा एक विस्तृत शब्द है जो रोगोपचार के सभी प्रणालियों के लिये उपयोग किया जाता है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक शक्ति एवं शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता के साथ सहयोग करना है। यह व्याधि से मुक्त कराने का एक भिन्न तरीका है जिसका जीवन स्वास्थ्य एवं रोग के संबन्ध में अपना स्वयं का एक दर्शन है।

- **महात्मा गांधी के अनुसार –** प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से रोग मिट जाने के साथ ही रोगी के लिये ऐसी जीवन पद्धति का आरम्भ होती है जिसमें पुनः रोग के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।"
- **बेनजामिन हेरी के अनुसार–** प्राकृतिक चिकित्सा व्याधि से मुक्त करने तथा रोग का दर्शन है प्राकृतिक चिकित्सा शरीर की स्वयं की आंतरिक सफाई एवं शुद्धिकरण की स्वीकृति देती है। इस प्रकार यह अशुद्धता एवं अनुपयोगी पदार्थ जो कि अधिक वर्षों के

कारण एकत्र हो गया तथा जो सामान्य कार्य में बाधा उत्पन्न करता था उसे निकाल फेंकता है।

- **डा0 प्रकाश बरनवाल के अनुसार–** प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोगों का उपचार व स्वास्थ्य–लाभ का आधार है – 'रोगाणुओं से लड़ने की शरीर की स्वाभाविक शक्ति'।

1.4 प्राकृतिक चिकित्सा का विकास

प्राकृतिक चिकित्सा के उद्भव विकास की यदि बात की जाए तो जब मनुष्य का जन्म हुआ तब से प्राकृतिक चिकित्सा मानी जाती है और जैसे मानव प्रगति के पथ पर बढ़ने लगा वैसे वैसे वह प्रकृति से साम्यावस्था स्थापित करने लगा प्रकृति में रहना, प्रकृति में सोना ,प्रकृति से खाना खाना, प्रकृति में निवास करना, यह सारी उसकी जीवन की दैनिक दिनचर्या बन गई । यहीं से प्राकृतिक चिकित्सा की शुरुआत भी मानी जाने लगी । क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्वों का उपयोग किया जाता है। जिनमें आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी तत्व माने गए हैं । इन्हीं पंचतत्व से मनुष्य के शरीर का निर्माण हुआ है। और इन्हीं पंचतत्व से प्रकृति का भी निर्माण हुआ है। जब दोनों में साम्यवस्था उत्पन्न हो जाती है तभी रोग दूर होने लगते हैं इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा बहुत ही प्राचीन माना गया है हमारे सर्वोच्च धार्मिक ग्रंथ वेदों, उपनिषदों, पुराणों में भिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां बतलाई गई हैं । जिनमें जल चिकित्सा , उपवास चिकित्सा का वर्णन मिलता है । वेदों के अलावा पुराणों में भी विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों की बात बताई गई है । वेदों के साथ–साथ बहुत ग्रंथ महाबल में भी एक प्रसंग के साथ इस चिकित्सा की चर्चा की गई है जिसमें एक बार भगवान बुद्ध कलंद निवायी नामक स्थान पर रुके हुए थे। वहां पर एक दिन किसी बौद्ध भिछु को सांप ने काट लिया और तभी लोगों ने इसकी सूचना भगवान बुद्ध को दी तब भगवान बुद्ध ने उन सभी को आदेश देते हुए कहा कि तुम सांप के विष के नाश के लिए मिट्टी , गोबर, राख और मूत्र का उपयोग करके उसे ठीक करो फिर किसी ने पूछा की सभी का उपयोग एक साथ करे तब उन्होंने उत्तर दिया कि जो चीज पहले मिल जाए उसी का उपयोग बिना समय नष्ट किए करना चाहिए। यह चिकित्सा लगभग 2500 साल पूर्व की इस घटना से सम्बन्धित है। इस बात का प्रमाण मिलता है कि रोगों के उपचार में मिट्टी का प्रयोग हमारे देश में अनंत प्राचीन काल से चला आ रहा है। प्रारंभ में औषधि चिकित्सा नहीं हुआ करती थी ।औषधि का ज्ञान लोगों को इतना नहीं था। तब लोग बीमार होने पर या फिर उपवास चिकित्सा करते थे या फिर जल चिकित्सा करते थे या फिर आकाश तत्व की चिकित्सा करते थे। इनके माध्यम से अपने रोगों को दूर करते थे । औषधियों के प्रयोग का प्रारंभिक काल रावण के समय से माना जाता है रावण भोग विलास जी कामी क्रोधी अहंकारी होने के कारण उसे उपवास से कष्ट होता था तथा उनके वेदों को ऐसी औषधियों की खोज करने के लिए कहा जिनका उपयोग करने

पर उपवास आदि ना करना पड़े इसी प्रकार धीरे–धीरे समय बढ़ता गया और औषधियों लोगों के मध्य फैलती गई परंतु वह इतनी प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुई जितनी प्राकृतिक चिकित्सा थी सृष्टि के आदि से अब तक इतिहास को यदि देखें तो स्वयं ही जानकारी होती है । कि पूर्व काल में न इतनी चिकित्सा पद्धतियां थी और ना ही इतने चिकित्सक हुआ करते थे। फिर भी लोग आज की अपेक्षा दीर्घायु जीवन जीते थे और स्वस्थ रहते थे प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे जितने भी रोग आज है इसका कारण स्पष्ट है कि उस काल में लोग प्रकृति से जुड़े हुआ करते थे प्रकृति का अनुसरण करते थे प्रकृति के विरुद्ध नहीं जाया करते थे आज का मनुष्य प्रकृति से तालमेल बिठाने में भारी भूल कर दी है जिसके कारण उसे विभिन्न प्रकार की बीमारियों से जूझना पड़ रहा है हम जब तक प्रकृति के अनुसरण में नहीं जाएंगे तब तक हमें किसी प्रकार के रोगों से छुटकारा नहीं मिल सकता। प्रकृति हमें शारीरिक मानसिक सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन को प्रदान कर ओजस्वी तेजस्वी बना सकती है। जिसके माध्यम से उपासना ,साधना, आराधना करके अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करके अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा का विशेष महत्व माना गया है प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व के अलावा योग आसन, प्राणायाम, मुद्रा योग की विभिन्न साधनाओ का प्रयोग करके अपने जीवन को प्रकृतिमय बना सकते हैं साथ ही साथ अपथ्य आहार का ध्यान रखते हुए खान–पान प्राकृतिक होना चाहिए हम अपने जीवन को आगे बढ़ा सकते हैं प्राकृतिक चिकित्सा में प्रकृति से उत्पन्न हुई फल सब्जियां इनका उपयोग करके हम लोगों को दूर कर सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा संपूर्ण भारत की प्रधान चिकित्सा में से एक मानी जाती थी ।किंतु हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की विकृतियां उत्पन्न होने के कारण जब भारतवर्ष गुलामी की जंजीरों में जकड़ गया था तब से धीरे–धीरे लोग अपनी आजादी की तरफ बढ़ने लगे और यहां की सभी प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों को धीरे–धीरे नष्ट कर उसे मिटाने का प्रयास किया गया कालांतर में धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का पुनरुत्थान करके जनमानस के बीच रखने का प्रयास किया प्राकृतिक चिकित्सा के पुनरुत्थान में सहयोग करने वाले अनेक प्रभावशाली प्राकृतिक चिकित्सक थे। और यह लोग औषधि द्वारा चिकित्सा करते–करते अपने जीवन का एक बड़ा भाग बिताने पर आत्मिक शांति ना पा सके इसलिए भारत में महात्मा गांधी चाचा नेहरू अनेक महापुरुषों ने प्राकृतिक शिक्षा का उत्थान करके प्राकृतिक जगत में एक नई क्रांति लाने का प्रयास किया।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का विकास (पाश्चात्य संदर्भ में) –

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति पर विश्वास जागने के पश्चात अनेक ऐलोपैथी डॉ० इसके पुनरुत्थान में लग गये थे, इस श्रेणी में पहले दो **डॉ० जेम्स क्यूरी** और **सरजॉन फ्लायर** थे जो 88 शताब्दी से सम्बन्ध रखते हैं, डॉ० फ्लॉयर इंग्लैंड के रिचफील्ड के रहने वाले थे। डॉ० फ्लॉयर एक बार उन्होंने कुछ किसानों को एक स्रोत के पानी में नहाकर स्वास्थ्य लाभ लेते हुए देखा, तभी उनके मन में जल के स्वास्थ्यकारण प्रभाव के विषय में अधिकाधिक खोज करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई थी, डॉ० जेम्स क्यूरी लिवर पूल के रहने वाले थे। सन् 1717 में इन्होंने जल चिकित्सा के विषय एक पुस्तक लिखकर उसका प्रकाशन करवाया था ।

विनसेंज प्रिस्निज :– वास्तव **डॉ० जेम्स क्यूरी** और **सरजॉन फ्लायर** डाक्टरों के समय तक लोगों में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार व्यवहारिक रूप से नहीं हो सका था। इस श्रम को सर्वप्रथम जर्मनी में डॉ० प्रिस्निज ने ही किया। यहीं कारण है कि कुछ विद्वानों के अनुसार **डॉ० प्रिस्निज ही आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के जन्मदाता** है। सत्य चाहे जो भी हो किन्तु लगभग 2300 वर्ष पूर्ण हिपोक्रेटस के उठाये हुए रोग से संबंधित अनुसंधान कार्य को आगे बढ़ाया इन्होंने अपने जीवन काल में हिप्पोक्रेट्स के द्वारा सभी प्रकार की बताई गई विधियों को लोगों पर प्रयोग करके इनकी विचारधारा को सिद्ध किया आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आंदोलन आज से लगभग 100 साल पूर्व ही हुआ था जो अनुसंधान के कार्य को इन्होंने ही अपने समय में पूरा किया।

सीलास ओ० ग्लीसन :– ये प्रिस्निज के शिष्य थे जिन्होंने उनके कार्य को आगे बढ़ाया ।

हरगार्षेन, बिजल, फेल्के :–ये तीनों प्राकृतिक चिकित्सक जर्मनी के रहने वाले थे तथा अपने समय में वहां इनका बहुत नाम था इन्होंने अपने जीवन काल में प्राकृतिक चिकित्सा के उत्थान के लिये अथक प्रयास किये।

जेम्स सी० जैम्सन :– जेम्स सी० जैम्सन अमेरिका यह अमेरिका के मूल निवासी थे उन्होंने अमेरिका में ही प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को विकसित किया वहीं पर इन्होंने प्रचार प्रसार कर सन 1811 ई0 अमेरिका में अपना अनुसंधान केन्द्र में प्राकृतिक चिकित्सा माध्यम से लोगों के रोगों को दूर करने का प्रयास किया।

जोहान्स स्क्रॉथ :– जोहान्स स्क्रॉथ इन्होंने भी प्राकृतिक चिकित्सा के विकास के लिए अनेक प्रयास किए प्रिस्निज की भांति इन्होंने भी प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का उद्धार किया अपने आसपास रहने वाले लोगों की जड़ी बूटियों जलवायु मिट्टी आदि के माध्यम से रोगों को दूर करने का प्रयास कर प्रचार प्रसार किया इसके बाद इन्होंने घायल घोड़ो, कुत्तों पर जल चिकित्सा का प्रयोग शुरु कर दिया जल्द ही प्रिस्निज की

भांति उनकी ख्याति लोगों के दिलों में बढ़ने लगी जिस कारण औषधि विज्ञान में श्रद्धा रखने वाली लोगों ने इसकी अत्यधिक निंदा की लगभग 20 वर्षों तक इनकी इसी प्रकार निंदा होती रही यहां तक इन्होंने इनको जेल भी जाना पड़ा 1849 में जेल से छूटने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा का केंद्र खोलकर इस चिकित्सा को विकसित किया।

इमेन्युल स्क्राथ :– ये जोहान्त स्वाथ के इन्होंने इकलौते पुत्र थे इन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद उनके द्वारा की जाने वाली समग्र चिकित्सा विधि को आगे बढ़ाने और उसका प्रचार प्रसार करने का काम किया अनेक रोगियों के उपचार में विशेष सफलता भी प्राप्त की जिसके माध्यम से आधुनिक चिकित्सा जगत में प्राकृतिक चिकित्सा का नया नाम रोशन किया।

फादर सेबस्टियन नीप :– जोहान्स स्क्राथ के ही समकालीन प्राकृतिक चिकित्सक है यह पादरी फादर नीप के प्रबल समर्थक उपासक थे यह अपने पूरे उत्साह और लगन से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार किया इन्होंने जल चिकित्सा विज्ञान के साथ–साथ जड़ी बूटियों द्वारा चिकित्सा करने के भी पक्षधर थे इन्होंने एक स्वास्थ्य ग्रह बनाया उस स्वास्थ्य ग्रह का संचालन लगभग 45 साल से अधिक अवधि तक बड़ी तत्परता और सफलता के साथ किया आज भी जर्मनी में इनके नाम से अनेक संस्थाएं कार्य कर रही है जिनमें इनकी चिकित्सा प्रणाली प्रचलित है इनके द्वारा बताए हुए सिद्धांतों को भी चिकित्सक लोग पूरी तत्परता के साथ लागू कर रोगों को दूर करने का प्रयास किया जाता है इनकी संस्थाओं में सदस्यों की संख्या 50000 से अधिक है इनके द्वारा कई प्रकार की पुस्तक लिखी गई जिनमें मायवाटर क्योर आज भी व्यापक रूप से प्रसिद्ध है।

आर्नल्ड रिक्ली :– रिक्ली पहले एक बहुत बड़े व्यापारी थे इनका व्यापार करने का धंधा था अपने व्यापार को बहुत ही लगन से करते थे किंतु लोगों की बड़ती रोगात्मक पीड़ा को देखते प्राकृतिक उपचार के बाद प्राकृतिक चिकित्सा से प्रभावित होकर इन्होंने अपना सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित कर दिया यह आस्ट्रिया के रहने वाले थे इन्होंने 1848 में केन प्रान्त के टेल्डास नामक स्थान पर धूप चिकित्सा और वायु चिकित्सा का सैनिटोरियम स्थापित किया वहीं से प्राकृतिक चिकित्सा को नया रूप दिया यह अपने ढंग का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सा भवन था जिसे देख जिसे देखकर बाद में अन्य चिकित्सकों ने भी इसी प्रकार के भवन बनवाए सबसे पहले इन्होंने ही धूप चिकित्सा और वायु चिकित्सा के साथ–साथ रोगियों को सप्ताहिक आहार पर रखकर उनके उपचार की प्रणाली विकसित की इन्होंने ही प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–साथ चिकित्सा के सिद्धांतों को भी प्रचारित किया यह धूप चिकित्सक के नाम से काफी विश्व प्रसिद्ध भी हुए इन्होंने धूप चिकित्सा के अनेक सिद्धांत दिए कई प्रकार की धूप चिकित्सा विधियों को भी जनमानस के सामने प्रस्तुत किया।

डॉव रूसे :– उपरोक्त तीनों डॉ० लुई कुने से पूर्व हुए थे, जो कि प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थे इनके आश्रम में जाकर लुई कूने ने अपने रोग की चिकित्सा करवाई थी जिसके बाद उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा पर अटूट विष्वास हो गया तथा इस चिकित्सा के गुणों को देखकर वे बाद में स्वयं एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक बने ।

लूई कूने :– प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा को पुर्नजीविते तथा उसका विकास मुख्य रूप से प्रेस्निज, नीम व कूने ने ही किया। किन्तु यदि देखा जाये तो इन तीनों में से **लूई कूने** को श्रेष्ठ माना जाता है। यहां तक की इस प्रणाली का नाम कूने ही पड़ गया। इन पुस्तकों के आज तक लगभग 60–70 एडिसन छप चुकी है। इन पुस्तकों का अनुवाद विश्व की अधिकांश भाषाओं में हो चुका है। इनका जन्म स्थान जर्मनी है। इनके पिता जुलाहे थे, जिनकी मृत्यु एलोपैथिक डाक्टरों के हाथों हुई थी। जब ये 19–20 वर्ष के थे तब इन्हें मस्तिष्क तथा फेफड़ों के असाध्य रोग हुए। एलोपैथी द्वारा काफी इलाज कराने के बाद भी जब ये ठीक न हुए तब इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जिससे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि ये प्राकृतिक चिकित्सा पर पूर्ण विश्वास करने लगे तथा उसके भक्त बन गये। सन् 1883 में इन्होंने अपना एक स्वास्थ्य गृह खोला जिससे इनकी ख्याति चारों दिशाओं में फैलने लगी ।

हेनरिच लेमैन :– यह सबसे पहले एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति पर बहुत ही ज्यादा विश्वास करते थे परंतु धीरे–धीरे जब प्राकृतिक चिकित्सा की तरफ रुझान हुआ उनकी चिकित्सा को देखकर काफी प्रभावित हुए प्राकृतिक चिकित्सा के गुणों से प्रभावित होकर बाद में बहुत बड़े प्राकृतिक चिकित्सक बन गए और अपना सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा में लगा दिया उन्होंने मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पोषक तत्वों से संपन्न प्राकृतिक भोजन पर अधिक महत्व दिया और भोजन के साथ–साथ इन्होंने आहार चिकित्सा के सिद्धांत को जनमानस के समक्ष रखा, आहार के माध्यम से ही लोगों को ठीक करने का प्रयास किया जिसमें पेड़ पौधे से उत्पन्न फल, सब्जियां आदि के माध्यम से उनकी दूसरों को निकालकर स्वरस को निकालकर उस के माध्यम से चिकित्सा पर अधिक जोर दिया जिसकी सहायता से आहार विज्ञान में स्वास्थ में सबसे बड़ी सहायता मिली।

एडोल्फ :– एडोल्फ यह शुरुआत से ही प्रकृति के सबसे बड़े प्रेमी रहे इन्होंने मिट्टी के प्रयोग पर अधिक जोर दिया उन्होंने मृदा चिकित्सा के माध्यम से समस्त रोगों चिकित्सा करके लोगों को स्वास्थ्य प्रदान किया यह मृदा चिकित्सा के साथ–साथ मालिश चिकित्सा पर विशेष ध्यान दिया इनको ही मालिश चिकित्सा का जनक भी माना जाता है यह अपनी मालिश स्वयं करने की क्रिया को भी जन्म दिया जो वायु चिकित्सा के

सिद्धांतों को पूर्ण रूप से विकास करने में मदद मिली। एडोल्फ जस्ट द्वारा लिखी पुस्तक Return to Nature (प्रकृति की ओर) विश्व विख्यात है।

हेनरी लिण्डल्हार :– हेनरी यह प्राकृतिक चिकित्सक बनने से पूर्व एक बहुत ही उच्च कोटि के एलोपैथिक चिकित्सक थे यह अमेरिका के मूल निवासी थे इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के जगत में विशेष महत्वपूर्ण योगदान दिया यह सभी प्रकार के चिकित्सकों में से एक थे जो प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों के विरुद्ध जाकर रोग उपसम संकट के उपस्थित होने पर प्राकृतिक उपचारों के साथ–साथ उत्तेजक दवाइयों विशेषकर होम्योपैथी एलोपैथी औषधियों में दिए जाने के पक्ष में थे उन्होंने सिद्ध किया की तीव्र रोग हमारे मित्र हैं शत्रु नहीं क्योंकि तीव्र रोग होने से हमारे अंदर के छोटे–मोटे रोग स्वतः दूर हो जाते हैं उनकी चिकित्सा स्वतः हो जाती है शरीर से सभी विजाती द्रव्यों के निष्कासन के लिए तीव्र रोग उत्पन्न होते हैं तथा निष्कासन से व्यक्ति ठीक हो जाता है इनके द्वारा लिखी पुस्तकें Indiagrosis और Pilosnphy Nd Practice Ok Ntural Terapentio पुस्तक विश्व भर में काफी प्रसिद्ध है।

एडवड हूकर डेवी :– ये उपवास चिकित्सा के बड़े नामी विषेषज्ञ थे। ये लगातार 30 वर्षो तक उपवास चिकित्सा का प्रयोग करते रहे तथा इसके बाद इन्होंने इस चिकित्सा का प्रचार आम लोगों में करना शुरू किया। उपवास चिकित्सा के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ थे इनका उपवास शिक्षा के क्षेत्र में विशेष नाम था यह लगातार 30 वर्षों तक उपवास चिकित्सा का प्रयोग करके रोगों को दूर करने का काम किया इन्होंने उपवास चिकित्सा के सिद्धांत को जन्म दिया उपवास के विभिन्न प्रकार के तरीके उनकी विधि उनके शुरुआत करने की विधि उनको समाप्त करने की विधि उनसे उत्पन्न होने वाले दो को किस प्रकार से दूर किया जाए कैसे उपवास किया जाए इस पर विशेष काम करके जनमानस के प्रति उन्होंने उपवास चिकित्सा के सिद्धांत को जन्म दिया उन्होंने इस चिकित्सा का प्रचार प्रसार आम लोगों में करना शुरू किया इन्होंने ही सबसे पहले No Brek Plan अर्थात स्वास्थ्य की रक्षा हेतु प्रातः काल कुछ न खाने की सत्यता को प्रमाणित किया।

बेनिडिस्ट लस्ट :– ये जर्मन के मूल निवासी थे इनका जन्म सन 1372 में हुआ यह जल चिकित्सा के सुप्रसिद्ध चिकित्सक थे प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा से संबंधित सभी प्रकार के सिद्धांतों को अपनाकर रोगों को दूर करने का काम किया 1892 में जब ये मात्र 20 वर्ष के थे, उस समय फादर नीप ने इन्हें अमेरिका के जल चिकित्सा का संदेष देने तथा समस्त संसार में जल चिकित्सा का प्रचार और प्रसार करने के लिये चुना । अमेरिका में इन्होंने नीप वाटर केयर नामक मासिक पत्र निकाला तथा न्यूयार्क में एक स्कूल तथा कॉलेज की स्थापना की। इसके बाद इनके द्वार एक और पत्र नेचार्न पाथ भी प्रकाषित किया

गया। इनके द्वारा स्थापित स्कूल अमेरिकन स्कूल ऑफ नेचुरोपैथी तथा अस्पताल सुप्रसिद्ध यंग वास अस्पताल के नाम से परिणित हो गया है।

1.5 प्राकृतिक चिकित्सा के मूल भूत सिद्धांत

प्राकृतिक चिकित्सा वास्तव में एक जीवन जीने की कला है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन को कलात्मक ढंग से सुचारू रूप से आलस्य प्रमाद को त्याग करके प्रकृति के अनुसरण के साथ जीने का प्रयास करता है और प्रकृति का अनुदान वरदान मिलने पर वह हमेशा दीर्घायु और स्वस्थ जीवन को प्राप्त होता है जिससे उसके जीवन में प्रसन्नता प्रखरता सफलता बनी रहती है प्राकृतिक चिकित्सा वाक्यों में पंच तत्वों की चिकित्सा है जिसमें वायु ,जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश के माध्यम से चिकित्सा की जाती है जो 10 सिद्धांतों के आधार पर कार्य करती है इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर विजाती द्रव्यों को शरीर से निकालकर शरीर को स्वस्थ प्रदान करता है मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है जीवन को सही दिशा मिलती है

प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर की साम्यावस्था ना हो पाने के कारण उत्पन्न होते हैं गलत आहार खान–पान रहन–सहन दिनचर्या के गलत होने पर रोग उत्पन्न होते हैं यह रोग विजाती द्रव्यों के रूप में शरीर में जमे रहते हैं इनका निष्कासन अति आवश्यक है इनके निकलते ही शरीर स्वस्थ हो जाता है और इनका निष्कासन प्रकृति के अनुसरण में रहने पर होता है प्राकृतिक चिकित्सा में हमें ईश्वर और उसकी कृपा पर विश्वास करना पड़ता है राम नाम शब्द का जप करते करते हमारी आत्मा की भी चिकित्सा होती है इसमें किसी विशेष डॉक्टर वैद्य की आवश्यकता नहीं होती है इसमें शरीर मन व आत्मा सभी प्रकार से निर्माण हो जाते हैं व्यक्ति के विचारों में प्रखरता चेहरे पर प्रसन्नता आचरण में पवित्रता का भाव उत्पन्न होता है आइए हम प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे

- सभी रोग एक कारण एक, उनकी चिकित्सा की एक ।
- रोग का कारण कीटाणु नहीं ।
- तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते है।
- प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।
- चिकित्सा रोग की नहीं अपितु रोगी के पूरे शरीर की होती है।
- प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निदान की विषेश आवशष्यकता नहीं।
- प्राकृतिक चिकित्सा में जीर्ण रोगों के ठीक होने में समय लगता है।
- प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते हैं।
- प्राकृतिक चिकित्सा में मन, शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ होती है।

- प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के दिये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं ।

1. सभी रोग एक ,कारण एक, उनकी चिकित्सा एक ।

प्राकृतिक चिकित्सा का प्रथम सिद्धांत सभी रोग एक हैं उनके कारण एक हैं उनकी चिकित्सा भी एक है इस सिद्धांत के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्यों को माना गया है इन विजातीय द्रव्यों को आकाश तत्व, वायु तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, पृथ्वी तत्व के माध्यम से दूर किया जाता है जिस प्रकार घर के कोने कोने में जब गंदगी इकट्ठा हो जाती है तो वहीं पर विभिन्न प्रकार के कीड़े मकोड़े मकड़ी अपना जाला लगा लेती हैं और वहीं पर पूरी तरह से दीवार घर खराब होने लगता है उसी प्रकार जब हमारे शरीर में विजातीय द्रव्य शरीर के कोने कोने में इकट्ठा हो जाते हैं तब वहीं से वह रोग उत्पन्न करने लगते हैं शरीर की मालिश, उपवास , प्रातः कालीन भ्रमण आदि क्रियाएं सुव्यवस्थित ढंग से होती रहे, शरीर की शुद्धि क्रिया होती रहे तो निश्चित रूप से हमारे शरीर में किसी प्रकार का कोई रोग उत्पन्न नहीं होगा इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में बताया गया है कि शरीर शुद्धि से ही सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं क्योंकि शरीर शुद्धि से भी जाती द्रव्यों का निष्कासन आसानी से हो जाता है और विजातीय द्रव्यों के निकलते ही शरीर स्वस्थ हो जाता है इसलिए सभी रोग एक माने गए हैं क्योंकि जाति धर्म ही एक ही कारण है रोगों को उत्पन्न करने का उनकी चिकित्सा भी उसी प्रकार की जाती है जैसे घर की सफाई की जाती है शरीर के कोने–कोने अंग प्रत्यंगओं की हम यदि अच्छे से पंच तत्वों के माध्यम से सफाई करते रहे योग व्यायाम करते रहें तो निश्चित रूप से शरीर स्वस्थ हो जाता है इसलिए सभी रोग एक हैं उनका कारण भी विजातीय द्रव्य है उनकी चिकित्सा भी एक समान है क्योंकि विजातीय द्रव्यों को निकालने से सभी रोग दूर हो जाते हैं इसलिए उनकी चिकित्सा भी एक ही है।

2. रोग का कारण कीटाणु नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा में दूसरा मुख्य सिद्धांत रोग का कारण कीटाणु नहीं है प्राकृतिक चिकित्सा में बताया गया है कि जब कोई रोग उत्पन्न होता है शरीर में उसका कारण कीटाणु नहीं है क्योंकि व्यक्ति या कीटाणु जीवाणु यह सब की सब वहां पर इकट्ठा होते हैं जहां पहले से गंदगी जमा रहती है इसलिए रोग का कारण कीटाणु नहीं है रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्य है इसलिए विजातीय द्रव्यों के निष्कासन से ही रोग दूर हो जाते हैं और विजातीय द्रव्य विभिन्न प्रकार के पथ्य अपथ्य आहार के सेवन से उत्पन्न होते हैं जब व्यक्ति की दैनिक दिनचर्या अस्त–व्यस्त हो जाती है खान–पान सब पूरी तरह से दूषित हो जाता है तब शरीर में विजातीय द्रव्य जमा हो जाते हैं और यह विजातीय द्रव्य जब दीर्घकाल तक बने रहते हैं तब रोगों का कारण बन जाते हैं उन्हीं से अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं रोग का कारण कीटाणु इसलिए नहीं है क्योंकि कीटाणु बाहर से उत्पन्न होते हैं जबकि रोग हमारे शरीर के अंदर से उत्पन्न होते हैं यदि रोगों

का कारण कीटाणु होते तो हमारे शरीर के अंग प्रत्यंग ओं को पूरी तरह से खोखला कर देते हैं कीड़े हमारे शरीर को खाकर सड़ा गला करके शरीर को नष्ट कर देते इसलिए रोग का मूल कारण कीटाणु नहीं है।

3. तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा में तृतीय सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते हैं मित्रता से मतलब है कि तीव्र रोग जो होते हैं वह हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी लाभकारी माने गए हैं क्योंकि जब तीव्र रोग एक साथ में उत्पन्न होते हैं तो व्यक्ति के अंदर के छोटे–मोटे दवे रोग स्वत ही ठीक हो जाते है। जब तीव्र रोगों की एक साथ चिकित्सा की जाती है तब निश्चित रूप से दवे रोग भी स्वता ही ठीक हो जाते हैं इसलिए बताया गया है कि तीव्र रोग व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभकारी होते हैं। जब व्यक्ति को वायरल फीवर उत्पन्न होते हैं तो उनके चिकित्सा के दौरान छोटे–मोटे बीमारियां ठीक हो जाती हैं इसलिए तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र के रूप में माने गए हैं।

क्योंकि जैसे मित्र हमारे हितेषी होते हैं उसी प्रकार से लोगों को दवे रोगों को दूर करने में तीव्र रोग उसी प्रकार मदद करते हैं क्योंकि तीव्र रोगों की शक्ति निम्न रोगों की अपेक्षा अधिक होती है जब तीव्र रोगों का इलाज पंच तत्वों के माध्यम से किया जाता है तब छोटे रोग स्वता ही उनके प्रभाव से दूर हो जाते हैं।

4. प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत चौथे सिद्धांत में बताया गया है कि प्रकृति स्वयं चिकित्सक है इसका तात्पर्य है कि जब व्यक्ति प्रकृति की शरण में रहता है प्रकृति का अनुसरण करता है प्राकृतिक जीवन जीता है प्रकृ ति के अनुसार नियमों का पालन करता है तो निश्चित रूप से प्रकृति भी व्यक्ति का संरक्षण पालन–पोषण करती है तब किसी प्रकार से यदि कोई बीमारी उत्पन्न होती है तो प्रकृति स्वयं उसे ठीक कर देती है बीमारियां उन्हीं को होती हैं जो निश्चित रूप से प्रकृति का अनुसरण नहीं करते हैं जब व्यक्ति के शरीर में कोई रोग घाव चोट लग जाती है तो प्रकृति उसे समय के अनुसार धीरे–धीरे ठीक कर देती है ठीक तभी करती है जब व्यक्ति प्रकृति के अनुसार खानपान रहन–सहन को ढाल लेता है उसी के अनुसार अपने जीवन को चलाने का प्रयास करता है तभी प्रकृति उसके जीवन को स्वस्थ समर्थन देकर उसे उन्नतशील जीवन जीने के लिए आगे प्रेरित करती हैं इसलिए प्रकृति स्वयं चिकित्सक हैं और वह अपने बच्चों का स्वयं ध्यान रखती है ख्याल रखती है उसका चिकित्सा भी करती है।

5. चिकित्सा रोग की नहीं अपितु रोगी के पूरे शरीर की होती है।

इस सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में व्यक्ति के रोग की चिकित्सा नहीं बल्कि उसके शरीर की चिकित्सा की जाती हैं क्योंकि शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाते हैं वही विजातीय द्रव्य रोग का मूल कारण बन जाते हैं जब विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निष्कासित किया जाता है तो रोग स्वता ही दूर हो जाते हैं इसलिए सिर्फ रोग के स्थान पर चिकित्सा नहीं की जाती है बल्कि संपूर्ण शरीर की चिकित्सा की जाती है जब हम शरीर की चिकित्सा करते हैं तो शरीर के कोने कोने में दबे हुए विजातीय द्रव्य सतत धीरे धीरे बाहर निकलकर शरीर को शुद्ध पवित्र बना देते हैं जब शरीर से विजातीय द्रव्य पूरी तरह से निकल जाते हैं तो शरीर स्वच्छ और पवित्र बन जाता है तो शरीर की सभी प्रकार की गंदगी दूर हो जाती है इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी की चिकित्सा नहीं बल्कि संपूर्ण शरीर की जाती है क्योंकि रोग विद्रोह के कारण होते हैं शरीर के कोने कोने में रहते हैं इसीलिए संपूर्ण चिकित्सा होने के साथ–साथ सभी प्रकार के रोग दूर भी हो जाते हैं।

6. प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निदान की विषेश आवशष्यकता नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा के इस सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निदान की विशेष आवश्यकता नहीं होती क्योंकि रोग निदान की आवश्यकता एलोपैथी औषधियों के अंतर्गत या चिकित्सा के अंतर्गत मानी गई है प्राकृतिक चिकित्सा में सिर्फ और सिर्फ विजातीय द्रव्यों को दूर कर लोगों का निदान किया जाता है इसमें किसी प्रकार से ऑपरेशन, चीर फार सर्जरी की आवश्यकता नहीं होती इसमें सिर्फ विजातीय द्रव्यों को शरीर से दूर किया जाता है जल तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, पृथ्वी तत्व इन के माध्यम से उपवास, आसन, शुद्धि , तपस्या इन के माध्यम से भोजन में सात्विक आहार शुद्ध पवित्र और शुद्ध शाकाहारी भोजन को ग्रहण करके शरीर से विजातीय द्रव्यों को दूर किया जाता है और जैसे जैसे शरीर से विजातीय द्रव्य दूर होते जाते हैं वैसे वैसे शरीर ठीक होने लगता है क्योंकि शरीर में जब आलस्य प्रमाद काम क्रोध लोभ जैसी मानसिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं वैसे वैसे शरीर में भी विजातीय द्रव्यों की मात्रा भी बढ़ने लगती है और इस विजातीय द्रव्यों को निकालने के लिए किसी प्रकार की सर्जरी ऑपरेशन आज की आवश्यकता नहीं पड़ती है इन्हें सिर्फ प्राकृतिक दिनचर्या को अपनाने मात्र से यह सभी प्रकार की विजातीय द्रव्य दूर हो जाते हैं और शरीर स्वस्थ हो जाता है इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निदान की विशेष आवश्यकता नहीं है।

7. प्राकृतिक चिकित्सा में जीर्ण रोगों के ठीक होने में समय लगता है।

इस सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में जिन रोगों के उपचार और ठीक होने में समय लग सकता है यह इसलिए क्योंकि शरीर में विजातीय द्रव्य जब दीर्घकालीन बने रहते हैं तब वह

धीरे–धीरे अपनी जड़ें पूरे संपूर्ण शरीर में जमा लेते हैं उनकी जड़ें इतनी मजबूत हो जाती हैं कि उनको दूर करने में काफी समय लग जाता है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्वों के माध्यम से शरीर की सफाई की जाती है सफाई सिर्फ एक अंग की नहीं बल्कि संपूर्ण शरीर की जाती है जिसके कारण जो दबे हुए और जिनकी जड़ें मजबूत हो गई हैं ऐसे विजातीय द्रव्यों को दूर करने में थोड़ा समय लगता है क्योंकि यह रोग धीरे–धीरे शरीर की नस नाड़ियों से लेकर के शरीर के आंतरिक भागों में अपना जमावड़ा बना लेते हैं क्योंकि समय–समय पर इनको इलाज ना मिलने के कारण इनकी जड़ें काफी मजबूत हो जाती हैं इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में जिन लोगों के उपचार में समय लगता है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में हम शरीर की शुद्धि करते हैं शुद्धि करते समय के उपचार में समय लगता है यह रोग बहुत समय से शरीर में उत्पन्न होने के कारण बने रहने के कारण यह बहुत ही मजबूत हो जाते हैं इसलिए उनको दूर करने में थोड़ा समय जरूर लगता है लेकिन यह हमेशा के लिए दूर भी हो जाते हैं और शरीर पूरी तरह से स्वस्थ हो जाता है।

8. प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते हैं।

इस सिद्धांत में बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में दवे रोग भरते हैं यह ऐसा इसलिए है क्योंकि जब हम शरीर की शुद्धि किया करते हैं पंचतत्व के माध्यम से शरीर का शोधन करते हैं तब अंदर कोशिशों में शरीर के विभिन्न भागों में रोग जो होते हैं वह दबे रहते हैं विजातीय द्रव्य दबे रहते हैं क्योंकि जब हम एलोपैथिक औषधियां खा कर के रोगों को ठीक करने का प्रयास करते हैं तब लोग पर कुछ समय के लिए पर्दा पड़ जाता है और रोग वहीं पर दब जाते हैं और रोग पूरी तरह से ठीक नहीं होते हैं प्राकृतिक चिकित्सा में हम शरीर की शुद्धि करते हैं तब वह शरीर के कोने–कोने अंग प्रत्यंग ओं में विजातीय द्रव्यों के रूप में जमे रहते हैं उनको निकालने का प्रयास किया जाता है उनके निकलते हैं शरीर स्वस्थ हो जाता है इसलिए शरीर के चिकित्सा के समय रोग को जड़ों से दूर करने का प्रयास किया जाता है जब हम वापस ना कटी स्नान पूर्ण मृदा स्नान यदि करते हैं तब शरीर के जो दावे रोग होते हैं वह धीरे–धीरे निकल कर बाहर आने लगते हैं फिर वह छोटे रोगों से बड़े हो सब के सब एक साथ में ठीक हो जाते हैं इसलिए बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार के दौरान जो दवे रोग होते हैं वह भी बाहर निकल कर आते हैं क्योंकि बड़े रोगों के साथ वह भी निकल कर आ जाते हैं उनकी भी सफाई हो जाती है उनकी जैसे सफाई हो जाती है तो शरीर दीर्घकालीन तक स्वस्थ बना रहता है तब कोई रोग जल्दी नहीं उत्पन्न होता है यह सब की सब विजातीय द्रव्यों के कारण होते हैं विजातीय द्रव्यों को निकालने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है और तब सभी प्रकार के रोग भी साथ में निकल कर दूर हो जाते हैं।

9. प्राकृतिक चिकित्सा में मन, शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ होती है।

सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में मन शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ होती है यह कथन पूर्णता सत्य है क्योंकि शरीर में जब विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं तब शरीर की चिकित्सा करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है क्योंकि शरीर में जब व्याधिया अधिक हो जाती हैं तब शरीर कार्य करना धीरे–धीरे कम कर देता है शरीर की जीवनी शक्ति में ह्रास होने लगता है और शरीर वृद्ध होने के साथ–साथ रोग ग्रस्त हो जाता है इसलिए शरीर की शुद्धि अत्यंत आवश्यक मानी गई है इस सिद्धांत के अंतर्गत जब शरीर की शुद्धि की जाती है तब शरीर हल्का महसूस होने लगता है शरीर से अनावश्यक मल पदार्थ दूर हो जाते हैं शरीर स्वस्थ और पवित्र हो जाता है जब शरीर स्वच्छ हो जाता है तो निश्चित रूप से मन में प्रसन्नता प्रफुल्लित आनंद का अनुभव उत्पन्न होता है और प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्वों के साथ–साथ छठा तत्व राम नाम का जप करने से मन की चिकित्सा होती है मन भी प्रसन्न चित्त होता है जिससे आत्मा भी प्रफुल्लित होती है आत्मा में आनंद होता है और पूरी तरह से मनुष्य के मन शरीर आत्मा तीनों पूरी तरह से स्वस्थ हो जाते हैं और किसी प्रकार से रोग उत्पन्न नहीं होता इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में बताया गया है कि शरीर मन और आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ होती है क्योंकि सबसे पहले जब हम शरीर की चिकित्सा करते हैं तब मन इंद्रियां सब पूरी तरह से पवित्र हो जाती हैं स्वस्थ हो जाती हैं जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है।

10. प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के दिये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं ।

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतिम और दशमी सिद्धांत के अंतर्गत बताया गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के दिए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है या इसलिए है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर की शुद्धि की जाती है रोगों को दूर करने के लिए शुद्ध आहार का सेवन दैनिक दिनचर्या का सेवन उसकी जीवन शैली प्रकृति हो प्रकृति का अनुसरण करें समय का पालन करें सुबह प्रातः कालीन जल्दी उठकर के योग व्यायाम करें इस प्रकार की दिनचर्या को अपनाया जाता है ऐसी दिनचर्या को अपनाने से रोग दूर किए जाते हैं जिसमें जल वायु अग्नि आकाश तत्वों से संबंधित चिकित्सा की जाती है इसलिए उत्तेजक औषधियों को दिए जाने का प्रश्न ही नहीं इसमें उत्पन्न होता है क्यों क्योंकि उत्तेजक औषधियां कहीं ना कहीं शरीर के लिए हानिकारक भी मानी गई हैं पंच तत्वों के माध्यम से रोगों को दूर आसानी से किया जा सकता है तो औषधियों को दिए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं दूसरी बात यह भी है कि प्राकृतिक चिकित्सा में सिर्फ पंच तत्वों का उपयोग करके लोगों को आसानी से और दीर्घकाल के लिए दूर किया जा सकता है इसलिए औषधि देने का कोई प्रश्न ही नहीं बनता उसे दे या ना दे इसे कोई मायने नहीं रखता क्योंकि जब पंच तत्वों से ही शरीर स्वस्थ हो जाता है तब औषधि देने का कोई प्रश्न नहीं है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकाला जाता है और विजातियों को शरीर से निकलते ही रोग दूर हो जाते हैं इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियां नहीं दी जाती।

1.6 अभ्यास प्रश्ना

प्रश्न – 1.प्राकृतिक चिकित्सा का जनक किसे माना जाता है?

अ.महात्मा गांधी ब. हिप्पोक्रेट्स स. जवाहरलाल नेहरू द. मदर टेरेसा

प्रश्न – 2.प्राकृतिक चिकित्सा में कुल कितने प्रमुख तत्व माने गए हैं?

अ. 6 ब. 3 स. 5 द. 10

प्रश्न– 3.महात्मा गांधी जी ने कौन सा तत्व दिया है?

अ.आत्मा ब.राम नाम स. ईश्वर द.रघुपति

प्रश्न– 4. प्राकृतिक चिकित्सा में कुल कितने सिद्धांत बतलाए गए हैं?

अ .8 ब.10 स.12 द.15

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. प्राकृतिक चिकित्सा में ऑपरेशन (सर्जरी) अनिवार्य माना गया है।

प्रश्न–6. प्राकृतिक चिकित्सा मे रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्यों को माना गया है।

1.7 सारांश

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा जीवन जीने की कला है जिसमें व्यक्ति संपूर्ण रूप से प्रकृति का अनुसरण करते हुए जीवन को आगे बढ़ाता है प्रकृति के सानिध्य में रहकर प्रकृति जीवन को अपनाता है उसका अनुसरण करता है तब प्रकृति भी उसका संरक्षण करती है पालन करती है पोषण करती है उसे हर प्रकार की आधियों तथा व्याधियों से बचाए रखती हैं प्राकृतिक चिकित्सा जीवन जीने की कला होने के साथ–साथ एक कलात्मक जीवन शैली है जिसमें व्यक्ति प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करता है जब सामंजस्य स्थापित करता है तो रोग भी दूर होते हैं वह प्रश्न निश्चित भी रहता है और यहां चिकित्सा 10 सिद्धांतों पर आधारित होकर के काम करती है जिससे रोगों को दूर कर व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वस्थ प्रदान करती है

उसके जीवन को दीर्घायु प्रदान कर जीवन जीने की राह सिखाती है इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति का अनुसरण करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है जिसमें प्रकृति के सभी तत्वों को अपनाकर व्यक्ति अपने जीवन को समन्वित और विकसित करता है यही प्राकृतिक चिकित्सा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत हमने उसकी परिभाषा सिद्धांत उसके विकास को आसानी से जाना समझा इसको अपना कर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को उन्नति शील बना सकता है क्योंकि प्रकृति भगवान का दिया हुआ एक वरदान है जिसे प्रत्येक मनुष्य को अपना कर अपने जीवन को पूर्णता तक ले जाने का प्रयास करना चाहिए और अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्त करना चाहिए।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 **ब. हिप्पोक्रेट्स** प्रश्न –2 **स.5** प्रश्न –3 **ब.राम नाम** प्रश्न –4 **ब.10**

प्रश्न–5. **असत्य** प्रश्न–6. **सत्य**

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न :–

- प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करें।
- प्राकृतिक चिकित्सा का उद्भव एवं विकास को समझाइये ।
- भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के विकास के क्रम को समझाइये।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डां राकेश जिन्दल – प्राकृतिक आर्युविज्ञान
- डां ओ पी सक्सेना – सरल प्राकृतिक चिकित्सा
- डां नागेन्द्र कुमार नीरज – प्राकृतिक चिकित्सा एंव योग
- बीना मिश्रा – प्राकृतिक चिकित्सा सिद्वान्त एंव व्यवहार
- प्राकृतिक चिकित्सा– उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी उत्तराखंड भारत।

इकाई– 02

प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास, पंचमहाभूत एवं महातत्व का परिचय, स्वास्थ्य की अवधारणा, विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

- 2.3.1 पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति
- 2.3.2 भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास व विकास

2.4 पंचमहाभूत एवं महातत्व का परिचय

- **2.4.1** आकाश तत्व
  - 2.4.1. 1 मन में संयम द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति
  - 2. 4.1.2 सदाचार द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति
  - 2. 4.1.3 मानसिक अनुशासन द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति
  - 2. 4.1.4 ब्रह्मचर्य द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति
- **2.4.2** वायु तत्व
  - 2.4.2.1 पवन स्नान द्वारा वायु तत्व की प्राप्ति
  - 2.4.2.2 प्राणायाम द्वारा वायु तत्व की प्राप्ति अग्नि तत्व
- 2.4.3 सूर्य तत्व
- 2.4.4 जल तत्व
- 2.4.5 पृथ्वी तत्व
- 2.4.6 महत तत्व
  - 2.4.6.1 प्रार्थना द्वारा रोग निवारण

2.5 स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा

2.6 विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 सारांश

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

विश्व की सबसे प्राचीनतम चिकित्सा प्रणालियों में से एक है इसकी शुरुआत मानव के जन्म के साथ विकसित हुई जब मानवीय सभ्यता का जन्म हुआ तब से मनुष्य अपने प्रगति पथ पर बढ़ते हुए अपने जीवन को सफल बनाने में तत्पर हुआ साथ ही साथ शरीर को स्वस्थ मजबूत बनाए रखने के लिए प्रकृति का अनुसरण मैं रहना प्रारंभ किया प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मनुष्य और मानवीय सभ्यता पुरानी है प्राकृतिक चिकित्सा में पंच तत्वों के माध्यम से चिकित्सा की जाती है जिनमें आकाश तत्व वायु तत्व अग्नि तत्व जल तत्व पृथ्वी तत्व को मुख्य रूप से शरीर स्वास्थ्य और समर्थन के लिए उपयोग में लाया जाता है जिसमें स्वास्थ्य को प्राकृतिक गुणों का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है
प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्यों को माना गया है जिनके शरीर में उत्पन्न होने से अनेकों प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं ऐसे विजातीय द्रव्यों को पंच तत्वों की सहायता से दूर कर शरीर को स्वास्थ्य तथा जीवन को दीर्घायु की ओर ले जाने का कार्य किया जाता है प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर मन और आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ होने के कारण श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धतियों में से एक मानी जाती है।

2.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अंतर्गत हम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास के का अध्ययन करेंगे।

- इसमें पंचमहाभूत एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा का अध्ययन करेंगे।
- विजतीय द्रव्य के सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त इतिहास

2.3.1 पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति

प्राकृतिक चिकित्सा ने बहुत कम समय में ही काफी प्रगति कर ली है।'' आज साधार मनुष्य की इसके गुणों को पहचानने लगे हैं, तथा अपने रोगों की चिकित्सा के लिये इस प्रणाली को अपनाने लगे हैं।' मात्र इंग्लैण्ड में ही जो भारत से काफी छोटे क्षेत्रफल में फैला है, वहां पर भी आज लगभग 3–4 सौ प्राकृतिक चिकित्सक अपनी चिकित्सा द्वारा सफलतापूर्वक रोगों का उपचार कर रहे हैं। इनमें से अधिकतर अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा देने वाले कॉलेजों में तथा अन्य कुछ स्काटलैण्ड के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थामसन के कॉलेज में शिक्षा पाकर चिकित्सक बने हैं।'' इन दोनों ही स्थानों पर 4 वर्ष का प्राकृतिक चिकित्सा का कोर्स कराया जाता है। जिसके बाद ये चिकित्सक बनते हैं, इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्विटरलैण्ड आदि लगभग सभी पश्चिमी देषो में प्राकृतिक चिकित्सा का विकास काफी तेजी से हो रहा है। आज लोग ऐलोपैथी से होने वाले सहप्रभावों को जान चुके हैं'' और साथ ही ये भी जान चुके हैं कि ये चिकित्सा रोगों की केवल लाक्षणिक चिकित्सा ही है ये रोग दूर नहीं करती अपितु केवल रोग के लक्षण को ही मिटाती है। जिस कारण रोग जहां का तहां बना रहता है और फिर और उग्र रूप लेकर प्रकट होता है। इस चिकित्सा की प्रगति का श्रेय उन सभी महान चिकित्सकों को जाता है।'' जिन्होंने तत्कालीन कलेषों, मान अपमान को सहन करके सभी कठिनाइयों को झेलते हुए प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार–प्रसार किया। इन प्रचारकों के नाम व संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।'' जिनके विषय में पढ़कर आने वाले समय के भावी प्राकृतिक चिकित्सक प्रेरणा ले सकें, और इस चिकित्सा पद्धति की प्रगति में अपना योग दान पूर्ण रूप से दे सकें।

- **बरनर मैकफैडन** :– ये आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के जानकारों में foysioal ulture पत्रिका के सम्पादक cfuddens encyclopedia for physical culture आदि दर्जनों उपयोगी पुस्तकों के प्रणेता हैं। इन्होंने आजीवन समस्त व्यायाम पद्धतियों का स्वयं अनुभव करके जीमत की उपाधि प्राप्त की है।

- **एल्फेड डब्लू मैक्कन** :– मैक्कन एक अमेरिकन आहार शास्त्री है, जिन्होंने इसके ऊपर एक पुस्तक जैम cience o ting लिखी है जो काफी प्रचलित है।
- **हैरी बैन्जामिन** :– इनका जन्म लन्दन में सन् 1896 ई0 में हुआ था। इनकी आंखे बाल्काल से ही खराब थी और जैसे–जैसे इनकी उम्र बढ़ती गयी इनकी आंखे और अधिक खराब होती गयी। परन्तु बाद में इन्होंने डॉ० वेट्स द्वारा लिखी पुस्तक चश्मे के बगैर पूर्ण दृष्टि पढ़ी और इनकें द्वारा चिकित्सा करते हुए अपनी आंखे पूर्ण रूप से ठीक कर ली। ये सन् 1929 से हैल्थ फार आल नामक पत्रिका में काम कर रहे हैं।
- **ऐण्ड्रयू ही स्टिल** :– डॉ० स्टिल को आस्टियोपैथी का जन्मदाता कहा जाता है।
- **स्टैनली लीफ** :– ये एक विषाल प्राकृतिक चिकित्सालय 'Lifes Nalure cure Resort ' संस्थापक है।
- इनके द्वारा लिखी दो पुस्तकें Diet Reform Simplified तथा How to Feed Children from Infancy on ward काफी प्रसिद्ध है। ये आजकल प्राकृतिक चिकित्सा के लिये बहुत कुछ कर रहे हैं। लंदन का प्रसिद्ध ब्रिटिष कॉलेज ऑफ नेचुरोपैथी इनके तत्वावधान में बहुत तेजी से प्रगति कर रहा है।
- **डॉ० पामर** :– डॉ० पामर (कर चिकित्सा) के संस्थापक है।
- **डमर** :– ये डॉ० लीफ के ब्रिटिष कॉलेज ऑफ नेचुरोपैथी में अनेक प्रोफेसरों में काफी प्रभावषाली हैं। ये लंदन में अपनी प्राकृतिक चिकित्सा की प्रैक्टिस सुचारू रूप से कर रहे हैं।
- **प्रो० आर्नल्ड एडरेट** :– इनका जन्म जर्मनी में हुआ था परन्तु सेनीटोरियम के संरक्षक है। बाद में अपने कार्य क्षेत्र के रूप में इन्होंने अमेरिका को चुना। इनकी चिकित्सा पद्धति मुख्य रूप से फलाहार व उपवास थे। इनके द्वारा लिखित पुस्तकें Rotional jsating तथा Mucules Diet Healing ystem अधिक प्रसिद्ध है।
- **जे०एच० केलांग** :– ये एम.डी. आर. सी. एस. एल. एल.डी. अमेरिका के महान शल्य विषेषज्ञ, मालिष क्रिया, धूप चिकित्सा आदि अनेक विषयों पर लिख चुके हैं, तथा निचिगैन अमेरिका के विष्व प्रसिद्ध बैटिल क्रीम सेनीटोरियम के डायरेक्टर है। इनके अनेक अविष्कारों में विद्युत ज्योति स्नान lEctric Light Bath) भी सम्मिलित हैं। जिसका प्रयोग आज विष्व के लगभग सभी बड़े–बड़े अस्पतालों में अच्छी तरह से हो रहा है। बैटल क्रीम सेनीटोरियम अपने आप में एक अनोखा सेनिटोरियम है जिसमें एक स्थान पर जल चिकित्सा, आहार चिकित्सा शल्य चिकित्सा, स्वीडिष मूवमेन्ट तथा विद्युत चिकित्सा आदि से रोगों का उपचार किया जाता है। द यू डायटेटिक्स नैषनल हाइड्रो थैरेपी तथा होम है। बुक ऑफ हाइजीन एण्ड मेडिसीन इनके द्वारा प्रसिद्ध पुस्तकें है।

- **सर विलियम औसलर** :– औसला ऐलोपैथी डाक्टर होते हुए भी प्राकृतिक चिकित्सा पर अगाध विष्वास रखते थे. इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति में काफी सहायता पहुंचायी। ये अमेरिका के जान हापकिन्स विष्वविद्यालय तथा इंग्लैण्ड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष पद पर भी रह चुके हैं।
- **जे०सी० थामसन** :– ''किंग्सटन क्लीनिक डाक्टर थामसन का एक सुन्दर चिकित्सालय है जो एडिनबर्ग में स्थित है। इस चिकित्सालय में लगभग 35–40 रोगियों की व्यवस्था है। इसी चिकित्सालय के पास इनका एक कॉलेज भी है जिसे ब्रिटेन में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रथम और सबसे प्राचीन षिक्षण केन्द्र माना जाता है। इनका समस्त परिवार प्राकृतिक चिकित्सा है। इनके द्वारा लिखी पुस्तकें Naturecure from Inside, Influenja- Two Health problems The heart, Appendictis] High and low blood pressure आदि काफी प्रसिद्ध है।''
- **जे०एच० टिल्डेन** :– डॉ० टिल्डेन अमेरिका के एक अग्रणी प्राकृतिक चिकित्सक थे। इनका विचार यह था कि सर्वप्रथम रोग के कारणों को खोजकर उन कारणों को दूर किया जाये तथा उसके बाद रोगी को यह षिक्षा दी जाये कि वह किसी प्रकार प्राकृतिक जीवन जी कर स्वस्थ रह सकता है। ये एक महान लेखक होने के साथ–साथ एक उत्कृष्ट विचारक भी है। इनके द्वारा लिखी पुस्तकें mpenred elth तथा फूड काफी लोकप्रिय है। प्राकृतिक चिकित्सक बनने से पूर्व में एलोपैथी के डाक्टर थे। इनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक द डाक्टर के द्वारा इन्होंने ऐलोपैथी चिकित्सा के दुष्प्रमाणों को उजागर करते हुए इस चिकित्सा की कड़ी आलोचना की है।
- **रसेल टी०ट्राल :–** डॉ० रसेल भी पहले एक ऐलोपैथीक डाक्टर थे,'
  परन्तु बाद में ये केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही नहीं बल्कि एक महान प्राकृतिक चिकित्सक बने, इनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकें जो कि प्राकृतिक जीवन व प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित है बड़े आदर्ष व सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है।''
- **आटो कार्क** :– ''ये जर्मन निवासी थे तथा अपने समय के उत्कृष्ट प्राकृतिक चिकित्सकों में गिने जाते थे, लंदन से प्रकाषित होने वाले तीन प्रमुख पत्रों हैल्थ लाइफ' हैल्थ एण्ड लाइफ हियर्ज हैल्थ का इन्होंने सम्पादन किया।''
- **डॉ० लिअनडर विलियमस** :– इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में काफी योगदान दिया। इनकी पुस्तक minor Maladies and tSeir treatment काफी उत्कृष्ट पुस्तक है।''

- **हेन्स माल्टेन** :– VadenBden Germny) के रहने वाले डॉ० माल्टेन एलोपैथी व प्राकृतिक चिकित्सक दोनों ही है। ये केवल हृदय रोग व मधुमेह का ही उपचार करते है। एंजाइना पैक्टोरिस इनके द्वारा लिखी एक उपयोगी पुस्तक हैं।1
- **टी०जे०** :– में एक अमेरिकन प्राकृतिक चिकित्सक है। लेकिन बाद में इन्होंने ब्रिटेन में टावर लेज नामक चिकित्सालय की स्थापना की। एडविन बैबिट एन०डी० :– कुछ लोग इन्हें प्राकृतिक चिकित्सा में 'सूर्य किरण चिकित्सा का जन्म दाता मानते हैं। इनके दो पुस्तकें लिखी गयी है। रंगों के नियम तथा जैम नउद जसजनतम दक बनतम काफी प्रसिद्ध है ।
- **मिल्टन पावल :–** आप व्यायाम, आसन और आहार शास्त्र उत्कृष्ट ज्ञाता है। इस समय आपकी आयु 100 से अधिक है। आपने पहले विष्व युद्ध में सैनिक अस्पताल में भी नाम किया आप ब्रिटिष नेचर क्योर एसोसियेषन के संस्थापको में भी काम किया आप ब्रिटिष नेचर क्योर एसोसियेषन के संस्थापकों में से एक है। काफी समय तक आप इस संस्था के मंत्री भी रहे थे। स्टैनली लीक, तथा जे०सी० थामसन के साथ–साथ आप भी इंग्लैण्ड में अपने व्याख्यानों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। आजकल आप एक मासिक पत्रिका का सम्पादकीय लिखते है तथा एक अन्य मासिक पत्र में पाठक गणों की समस्याओं का समाधान कर रहे हैं।
- **मारग्रेट ब्रैडी** :– इन्हें जब प्रथम सन्तान हुई तो गर्भावस्था की सभी स्थितियों का इन्होंने गहन अध्ययन व निरीक्षण किया तथा प्रसव कालीन अवस्थाओं को गंभीरता से जाना। इसी अध्ययन के परिणाम स्वरूप इन्होंने इंग्लैण्ड से प्रकाषित होने वाली पत्रिकाओं, गर्भिणीयों की समस्याओं पर लिखना प्रारम्भ किया। जिनमें 'हैल्थ फार आल' नामक पत्रिका प्रमुख है। ये लगभग 40–50 वर्षो में माताओं और षिषुओं के पालन से सम्बन्धित समस्याओं पर लगभग 15 हजार से अधिक स्त्रियों को परामर्ष दे चुकी है। सन् 1940 जल इन्हें लगा कि माताओं की समस्याओं के हल के लिये प्राकृतिक चिकित्सा के दृष्टिकोण से कोई पुस्तक लिखी जाये तब इन्होंने 'सुख प्रसव नाम नाम से अपनी पहली रचना प्रकाषित करायी जिसके अब तक 6 संस्करण निकल चुके हैं। बाद में सन् 1948 में इनकी दूसरी कृति 'बाल्यवस्था' का प्रकाषन हुआ जिसमें 3–4 से लेकर 12–14 वर्ष के बच्चों के लालन पालन पर प्रकाष डाला गया है।
- **विर्चर बर्नर :–** इनका स्विटरजरलैण्ड में एक क्लीनिक है जो आहार सम्बन्धित अपने अनुसंधानों के लिये विष्व में प्रसिद्ध है। इनके द्वारा उपवास, जलोपचार और भोजन प्राकृतिक चिकितसा से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखी गयी है जो सभी जर्मन भाषा में है। केवल दो पुस्तकें जैम prevention व nourablu disusau और Food cience चित सस का ही अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है।

- **रोलियर ए०** :– इन्होंने सन् 1900 में स्विटजरलैण्ड ने यक्ष्मा में रोगियों के लिये प्रथम धूपशाला खोली जिसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले।
- **एलेन माथेल** – ये मिल्टन पावल के शिष्य है। ये इंग्लैण्ड के प्राकृतिक चिकित्सा के सुप्रसिद्ध एवं लोकप्रिय लेखक है। ये लगभग 40 वर्षो तक हैल्थ फॉर ऑल' नामक पत्रिका में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति लेख लिखते रहे हैं। इस दिशा में काम करने के लिये लीफ ने इन्हें काफी प्रोत्साहन दिया हैं।

2.3.2 भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास व विकास

कृष्ण स्वरूप क्षेत्रीय :– यह उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिला के निवासी थे इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में काफी कार्य किया इन्होंने लुई कुने की प्रसिद्ध पुस्तक के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा की ओर बढ़े इन्होंने न्यू साइंस आफ हीलिंग का हिंदी और उर्दू भाषा में अनुवाद भी किया इनकी पुस्तकों को कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं यह अपने समय में प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक में से एक जाने जाते थे इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में काफी काम किया जिसका लाभ उन्होंने प्रत्येक भारतवर्ष के रहने वाले निवासियों को समय–समय पर देते रहे।

विनोबा भावे :– यह भी भारतीय संस्कृति से काफी लगाव रखने वाले संतों में से एक माने जाते हैं इन्होंने महात्मा गांधी के आध्यात्मिक जीवन से प्रेरित होकर प्राकृतिक जीवन की ओर अग्रसर हुए और प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से प्रकृति के साथ रहकर उन्होंने जीवन को जीने का संदेश दिया इन्होंने गीता और राम नाम के चिंतन से प्राकृतिक जीवन को मूल आदर्श ओं के साथ आगे अच्छे ढंग से बढ़ाने के लिए निर्देशित किया उनके द्वारा पुस्तक गांव की स्वास्थ्य योजना स्वास्थ्य की दृष्टि से एक बहुत अच्छी मार्गदर्शक के रूप में प्रसिद्ध हुई इसका लाभ एक भारतीय को मिलता रहा।

मोरारजी देसाई :– यह भारत के प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए भी प्राकृतिक जीवन को अपने जीवन का अंग बना कर जिया प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर इन्होंने प्रत्येक भारतीय जनमानस को प्रकृति के संरक्षण में जीने के संदेश को सर्वोपरि माना यह अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के शीर्ष नेताओं में से एक रहे इन्होंने सभी चिकित्सकों में प्राकृतिक चिकित्सा का भी जोर से समर्थन करते हुए इस को मान्यता भी दिलाई।

डॉ लक्ष्मी नारायण चौधरी :– यह भारत के राजस्थान प्रांत के निवासी थे यह एक सिविल सर्जन थे परंतु एलोपैथिक की दवाइयों के दुष्प्रभाव को देखकर इनका मन उससे पूरी तरह से आहत हो गया जिसके कारण यह प्राकृतिक चिकित्सा की ओर मुड़े और अपने जीवन के प्रत्येक क्षण और पल को प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से सैकड़ों रोगियों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान कराया और रोगों से मुक्ति दिलाई इनका भारत देश में प्राकृतिक चिकित्सा के विकास में काफी योगदान माना जाता है।

जानकी शरण शर्मा :– यह भी भारत के प्राकृतिक चिकित्सकों में से एक माने जाते हैं इनकी पुस्तकें काफी विकसित है इनकी दो पुस्तकें रोगों की अचूक चिकित्सा और अचूक चिकित्सा के प्रयोग इस पद्धति की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक हैं वह एक सफल चिकित्सक प्राकृतिक चिकित्सक थे परंतु उनका नाम इन दोनों पुस्तकों की वजह से प्राकृतिक चिकित्सा के जगत में सदा सदा के लिए अमर हो गया इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के लिए बहुत ही सराहनीय कार्य किए

डॉक्टर कुलरंजन मुखर्जी :– यह भारत के पश्चिम बंगाल राज्य के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक माने गए हैं इन्होंने अपने लोकप्रिय प्राकृतिक चिकित्सा के संदर्भ में अनेक ग्रंथ की रचना की इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रंथों का बांग्ला में हिंदी में और अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद भी किया और प्रकाशन भी किया।

डॉ लक्ष्मण शर्मा :– यह भारत के तमिलनाडु राजी के निवासी थे शर्मा जी ने भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के पितामह भी कहे जाते हैं इन्होंने उच्च शिक्षा ग्रहण करने के बाद अपना जीवन का अधिकतम भाग चिकित्सा के प्रचार प्रसार में लगा दिया इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के संदर्भ में अनेक काम किए तथा भारत में काफी प्रचार प्रसार किया।

डॉक्टर बालेश्वर प्रसाद :– बालेश्वर प्रसाद जी प्राकृतिक चिकित्सा के काफी समर्थक माने गए हैं इन्होंने महात्मा गांधी से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में लगा दिया प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से कई लोगों की सेवा तथा भारत में अनेकों स्थान पर शिविर लगाकर लोगों को रोगों से मुक्ति दिलाई तथा प्राकृतिक चिकित्सा को जनमानस तक पहुंचाया साथ ही साथ इनकी मासिक पत्रिका सभी लोगों को उनका लाभ मिल रहा।

डॉक्टर योगीराज कृष्णम राजू:– यह भारत के प्राकृतिक चिकित्सकों में काफी श्रेष्ठ चिकित्सक माने जाते थे यह दक्षिण भारत में स्थित भीमाराव नामक स्थान पर अपना प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना कर एक आदर्श प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में विकसित हुई

डॉक्टर खुशीराम दिलकश :– यह आरोग्य निकेतन उत्तर प्रदेश के लखनऊ में संस्थापक के रूप में कार्य करते रहे साथ ही साथ उन्होंने वार्षिक पत्र–पत्रिकाओं का संपादन भी किया यह काफी समय तक केंद्रीय योग प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सदस्य भी रहे उसका कार्यभार भी संभाला।

गंगा प्रसाद गौड़ जी :– ने अनेक स्वास्थ्य संबंधित पत्रिकाओं का विवेचन भी किया साथ ही साथ उन्होंने 1959 से 1975 तक कोलकाता में प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य बढ़–चढ़कर किया इन्होंने निकेतन डायमंड हर्बल रोड के प्रधान चिकित्सक पद पर रहते हुए अपनी सेवाएं प्रदान की ।

डॉ शरण प्रसाद :– यह अनेक वर्षों तक प्राकृतिक चिकित्सा में काम करते रहे इन्होंने विद्यापीठ कोलकाता के प्रधान चिकित्सक भी रहे इनके बाद काफी समय तक उनके शिष्यों ने इस चिकित्सा पद्धति को जनमानस तक पहुंचाया साथ ही साथ गुजरात में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के अन्य निर्देशक के पद पर भी रह।

विट्ठल दास मोदी :– उत्तर प्रदेश के गोरखपुर मंदिर के संस्थापक व संचालन थे इन्होंने प्रसिद्ध आरोग्य पत्रिका मासिक पत्रिका के संपादक थे उन्होंने अपने शब्दों में विचारों के माध्यम से जनमानस को प्राकृतिक से जोड़ने का प्रयास किया।

डॉ सत्यपाल ग्रोवरः– यह प्राकृतिक चिकित्सा परिषद एवं भारतीय योग संस्थान के संस्थापक सदस्य हैं इनके द्वारा अनेकों पुस्तक लिखी गई और प्रकाशन हुई जिनका लाभ जनमानस को मिला जिससे लोग प्रेरित होकर प्रकृति के समय में कहीं ना कहीं उनका झुकाव भी मिलता रहा।

श्री जयप्रकाश जी :– सूर्या फाउंडेशन के चेयरमैन रह चुके हैं यह बहुत बड़े उद्योगपति होने के साथ–साथ अपने विस्तृत जीवन में स्वास्थ्य पर ध्यान रखते हुए कई पुस्तकें व प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से उन्होंने जीवन को नई दिशा दी और कई सफलताओं व प्रयोगों से प्रेरित होकर प्राकृतिक चिकित्सा के अनन्य भक्त बन गए और प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किया अपने जीवन के साथ लोगों को भी जोड़ने का कार्य किया।

ओंकार नाथ :– प्राकृतिक चिकित्सा काफी योगदान माना जाता है इनका भी अन्य चिकित्सकों के साथ लिया जाता है इन्होंने कई पुस्तकों के माध्यम से समाज के प्रति जागृति पैदा की समस्त जनमानस को जोड़ने का काम किया और एक प्राकृतिक जीवन जीने की कला भी इनके द्वारा जनमानस को प्राप्त हुई।

2.4 पंच महाभूत एवं महातत्व का परिचय

परिचय :– प्राकृतिक चिकित्सा में मूल रूप से पांच तत्व माने गए हैं आकाश तत्व, वायु तत्व, अग्नि तत्व, जल तत्व, पृथ्वी तत्व पांचों तत्वों से मानव के शरीर का निर्माण हुआ है इसीलिए मानव शरीर को पंचभूत आत्मक शरीर भी कहा जाता है मानव के शरीर में जब कभी कोई रोग दोष पीड़ा पराभव जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं तब इन्हीं पंचतत्व में कहीं ना कहीं विषमता उत्पन्न होने के कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं पंचतत्व के माध्यम से शरीर को स्वस्थ समर्थन व सुरक्षित बनाया जा सकता है वही हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं क्योंकि ईश्वर से ही अभिभूत हुए पांच तत्व ईश्वर का ही रूप है सृष्टि की उत्पत्ति के पांच तत्व संपूर्ण सृष्टि की रचना के लिए सबसे महत्वपूर्ण माने गए क्योंकि स्वयं परमात्मा ने इन्हीं तत्वों में प्रवेश करके उसको सक्रिय बनाकर उसको मानव के जनजीवन को बनाया तथासृष्टि की रचना पंच तत्वों के माध्यम से की। पंचतत्व से ही विश्व की उत्पत्ति हुई ईश्वर एवं उसकी एकता ईश्वर के साथ सिद्ध होती है जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है सर्वगुण संपन्न जो है।

प्रकृति मे सर्वश्रेष्ठ सर्व गुणों से संपन्न ईश्वर को माना गया है ईश्वर से ही सभी तत्व में गतिशीलता उत्पन्न होती है क्योंकि पंचतत्व में सर्वप्रथम आकाश तत्व की उत्पत्ति फिर वायु तत्व फिर अग्नि तत्व फिर जल तत्व और फिर अंत में पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति हुई इन पंचतत्व में आकाश तत्व 1 गुणों से संपन्न है जिसमें शब्द समाहित हैं वहीं तत्व दो गुणों से संबंधित है इसमें शब्द और स्पर्श पाए जाते हैं अग्नि तत्व तीन गुणों से संबंधित है इसमें शब्द, स्पर्श, रूप गुण पाए जाते हैं जल चारों गुणों से संपन्न है शब्द, स्पर्श, रूप, रस पाए जाते हैं पृथ्वी तत्व से संपूर्ण समाहित में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं ,गंध गुण पाए जाते हैं आकाश सूक्ष्म तत्व है तथा सबसे स्थुल तत्व है वह पृथ्वी तत्व है सांख्य दर्शन में उत्पत्ति मानी गई है और प्रकृति व्यवस्था पर नियंत्रण ईश्वर के द्वारा माना गया है इसलिए सांख्य दर्शन में कुल 25 तत्व माने गए हैं योग दर्शन में कुल तत्व 26 माने गए हैं योग दर्शन में 26 वा तत्व ईश्वर को माना गया है क्योंकि संपूर्ण सृष्टि की रचना ईश्वर से हुई है और पंचमहाभूत की उत्पत्ति हुई इस प्रकार प्रकृति और पुरुष के सहयोग से महत्व से बुद्धि और बुद्धि से अहंकार की उत्पत्ति हुई और अहंकार से तीन प्रकार के अहंकारों की उत्पत्ति जो सात्विक, राजसिक, तामसिक रूप से जाने जाते हैं इस प्रकार पंच तत्वों से ही संपूर्ण सृष्टि और मानव शरीर की रचना हुई।

2.4.1 आकाश तत्व

आकाश तत्व आकाश जो स्पेस एलिमेंट के नाम से जाना जाता है जहां ना वायु है ना अग्नि है ना जल है ना पृथ्वी तत्व ऐसे स्थान को आकाश तत्व कहा जाता है आकाश तत्व का संबंध मानव के मस्तिष्क

प्रदेश से माना गया है क्योंकि मानव का मस्तिष्क का प्रदेश विचारों से संबंधित है और विचार संपूर्ण ब्रह्मांड से उत्पन्न होते हैं इसलिए इसका संबंध व्यक्ति के मस्तिष्क प्रदेश से माना गया है व्यक्ति की सोच उसकी विचार उसकी आदतें सब की सब उसके कर्म सब की सब यह व्यक्ति की सोच पर निर्भर करता है आचार्य चाणक्य ने कहा कि जिसके जैसे विचार होते हैं उसकी वैसी वाणी बनती है जिसकी जैसी वाणी होती है उसके वैसे कर्म बनते हैं जिसके जैसे कर्म होते हैं उसकी वैसी ही आदतें बनती हैं और जिसकी जैसी आदतें होती हैं वही आदतें उसका चरित्र का निर्माण करते हैं और जिसका जैसा चरित्र होता है वैसे ही उसके भाग्य का निर्माण होता है यह सब संस्कारों पर निर्भर करते हैं इसलिए अच्छा चिंतन आकाश तत्व की वृद्धि का कारण भी बनता है जिसके विचार सकारात्मक होते हैं उसके उज्जवल भविष्य के द्वार खुल जाते हैं विचार आदतें यही व्यक्ति के प्रकृति का भी निर्धारण करती हैं लेकिन उसकी आदतें उसके संस्कार उसके विचार उसके कर्म ही व्यक्ति को मानव से महामानव नर से नारायण बनने तक के सफर को पूर्ण करते हैं इसलिए अच्छे विचार ही व्यक्ति की प्रगति का द्वार खोलती हैं बुरे विचार नर्क का द्वार खोलती हैं और जो जैसा सोचता है करता है वैसा ही बन जाता है इसलिए आकाश तत्व के विचारों से संबंधित है आकाश की साधना की बात की जाए तो आकाश तत्व की साधना वाणी के माध्यम से की जाती है आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने गायत्री महाविज्ञान में वाणी प्रकार की बताए है वाणी के माध्यम से व्यक्ति आकाश तत्व की साधना कर सकता है प्रत्याहार में व्यक्ति आहार–विहार का विशेष ध्यान रखता है जिसके माध्यम से उसे अपनी आंतरिक जीवन पर नियंत्रण प्राप्त करने में मदद मिलती है और अपथ्य आहार का सेवन करके इंद्रियों को उचित दिशा भी दी जाती है इंद्रिय संयम से आकाश तत्व की शुद्धि होती है इसलिए आकाश तत्व की शुद्धि के लिए आहार के साथ–साथ उपवास की साधना भी की जाती है।

उपवास से पाचन तंत्र की शुद्धि होती है साथ ही साथ शरीर के सप्तधातु की शुद्धि उपवास से होती है उपवास में जब सात्विक प्रकृति का भोजन लिया जाता है तब हमारे अंदर मन विचार अंतःकरण पूरी तरह से पवित्र और सात्विक हो जाते हैं इसलिए कहा गया है जो जैसा है वैसे उसके मन का निर्माण भी होता है इसलिए भगवत गीता में कहा गया है कि आहार को सबसे पहले भगवान को भोग लगाकर ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि अन्न के सूक्ष्म भाग से रस का निर्माण होता है और रस से ही संपूर्ण सप्त धातुओं का निर्माण होता है इसलिए कहा गया है अन्न के रस से ही भूतों का निर्माण होता है और ऐसे ही अन्नमय कोष का निर्माण होता है इसलिए उपवास हमारे शरीर की उपत्तिकाओ की भी शुद्धि करता है हमारे शरीर में उपस्थित है 96 प्रकार की पाई जाती हैं जो अलग–अलग रूपों में अपना कार्य करती हैं

उपवास करने से व्यक्ति के विचार स्वभाव में भी परिवर्तन आता है तथा ईश्वर की भक्ति या भक्ति मार्ग की ओर सफल बनाने में उपवास एक महत्वपूर्ण साधना भी मानी गई है इसलिए भारतवर्ष में किसी विशेष तीज त्योहार पर्व उपवास का विधान बताया गया है जब हमारा पाचन क्रिया शांत रहती है तो हमारा मन अंतकरण भी शांत रहता है और मन की समस्त प्रकृति सही दिशा में बहने लगती इसलिए उपवास विशेष

महत्वपूर्ण और लाभकारी माना गया है जो आकाश तत्व की शुद्धि में सर्वश्रेष्ठ एक साधना के रूप में बताया गया है।

मन में संयम द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति

आकाश तत्व की साधना विधि आकाश तत्व की साधना उपवास के माध्यम से की जाती है तथा आसन तत्व शुद्धि और तपश्चर्या से भी की जाती है आसनों में हम योगासन की बात करते हैं तत्व शुद्धि में पंच तत्वों की शुद्धि की जाती है तपश्चर्या में हम अपने मन को अपनी साधना में लगाने के लिए विशेष उपवास प्रक्रिया को अपनाते हैं

सदाचार द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति

सदाचार द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति जब व्यक्ति सदाचार संयम सहिष्णुता जैसे गुणों को धारण करता है तो उसके हृदय में विशालता उत्पन्न होती है उसका हृदय सद्गति की तरफ बढ़ता है सब के प्रति प्रेम अनुराग उदार अहिंसा सत्य अक्षय जैसे गुणों को विकसित होता है और वह सदाचारी भावनाओं को अपनाते हुए सदाचार के सिद्धांत का वर्णन करते हुए अपने जीवन को श्रेष्ठ और उन्नति शील बनाता है इसलिए सदाचार से आकाश तत्व भी प्राप्त होती है।

मानसिक अनुशासन द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति

मानसिक अनुशासन द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति मन ही व्यक्ति के बंधन और मोक्ष का कारण माना गया है आकाश तत्व से मन की शांति व शुद्धि भी होती है इसलिए जब मन को हम अनुशासन में डालते हैं नियमों में डालते हैं सदाचार में डालते हैं परोपकार में डालते हैं सन्मार्ग की ओर उसको बढ़ाने का प्रयास करते हैं तो निश्चित रूप से हमारे मानसिक अनुशासन के द्वारा आकाश तत्व भी प्राप्त होती है हमारा हृदय विशाल होता है भावनाओं में पवित्रता आती है विचारों में प्रखरता आती है जीवन में शांति उत्पन्न हुई होती है इसलिए मानसिक अनुशासन से आकाश की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति

ब्रह्मचारी द्वारा आकाश तत्व की प्राप्ति ब्रह्मचारी जीवन का अनमोल वरदान में से एक माना गया है ब्रह्मचारी व्यक्ति जीवन की समस्त शक्तियों को अपने जीवन में धारण करता है वह अपने जीवन को अनुशासित बनाते हुए अपने जीवन को आगे बढ़ाता है उसके विचार उसके कर्म उसके संस्कार सब अनुशासित होते हैं जैसा महर्षि पतंजलि ने कहा अनुशासन ही योग है जीवन को हम अनुशासन के साथ डालते हैं सत कर्मो के साथ डालते हैं भावनाओं के साथ जीते हैं अपने जीवन को हम जागरूकता के साथ जीते हैं तो निश्चित

रूप से हमारा जीवन एक पवित्र कुशल और शांति दायित्व बनता है जो ब्रह्मचारी के कहीं ना कहीं गुणों से संबंधित है इसलिए ब्रह्मचारी के द्वारा आकाश तत्व की भी प्राप्ति होती है।

2.4.2 वायु तत्व

पंचतत्व में द्वितीय प्रमुख वायु तत्व को माना गया है वायु तत्व का संबंध व्यक्ति के श्वासनतंत्र से संबंधित हैं। इसलिए वायु तत्व का विशेष महत्वपूर्ण योगदान माना गया है भोजन के बिना व्यक्ति 2 से 3 दिनों तक जीवित रह सकता है किंतु वायु के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसलिए वायु तत्व विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि वायु में ऑक्सीजन की मात्रा निहित होती है उसी ऑक्सीजन से व्यक्ति की जीवन शैली चलती है जीवन जीने के लिए वायु अत्यंत आवश्यक मानी गई है क्योंकि सामान्य मनुष्य **1** मिनट में **14** से **18** बार सांस लेता है विश्वास विश्वास की क्रिया का संबंध हमारे शरीर में पढ़ता है हमारे शरीर की सभी प्रकार की क्रिया है जब गतिशील होती हैं उसमें वायु का विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। वायु का सेवन हमारी कोशिकाएं करती हैं कोशिकाएं ऊर्जावान होती है उसी ऊर्जा से हम सभी प्रकार के कार्य करते हैं और हमारे अंग प्रतिक्रियाशील भी होते हैं। श्वास द्वारा फेफड़ों में के भीतर आती है उनमें अनेक गैसों का मिश्रण भी होता है उन सभी गैसों का केवल ऑक्सीजन ही हमारे उपयोग के लिए अत्यंत लाभकारी होती है अन्य से हमारे शरीर के द्वारा बाहर छोड़ दी जाती हैं केवल ऑक्सीजन भीतर रहकर हमारे शरीर के रक्त कोशिकाओं में मिल जाती है और अशुद्ध रक्त को शुद्ध कर देती है। वायु तत्व से संबंधित अनेक प्रकार के उदाहरणों में मिलते हैं जिनसे देखने को मिलता है कि वह हमारे जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण है अर्थात यही हमारे दवा बनकर हमारे हृदय में शांति पैदा करती है ।वह सुख देने वाली है वह हमारे पास रहती है इस प्रकार वायु के गुणों की महानता का वर्णन भी मिलता है वायु साधना ,वायु स्नान के माध्यम से भी कर सकते हैं साथ ही साथ प्राणायाम के माध्यम से सकते हैं योग में प्राणायाम का महत्व पूर्ण वर्णन मिलता है। हमारे योगिक ग्रंथों में प्राणायाम का अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिनसे हमारे शरीर की जीवनी शक्ति का विस्तार होता है रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है ।आठ प्रकार के प्राणायाम बताए गए हैं योगी ग्रंथों में जो जीवनी शक्ति का विस्तार कर शरीर को शुद्ध करना क्योंकि शुद्धि कर शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घायु प्रदान करने के काम आती है। यह प्राण मुख्य रूप से **10** वायु के रूप में उपस्थित रहते हैं जिनमें पंचप्राण तथा उपपंचप्राण के नाम से भी जाने जाते हैं। जिनमें प्राण, अपान,समान, व्यान, उदान के साथ–साथ नाग, कुर्म ,क्रकल, देवदत्त, धनंजय आदि के नाम से जाने जाते हैं ।बात की जाए तो पवन स्नान के माध्यम से भी कर सकते हैं प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में उठकर खुली हुई वायु में घूमना एक्सरसाइज करना है आदि के माध्यम से पवन स्नान होती है। पवन स्नान करते समय शरीर पर हल्के कपड़े रहना चाहिए । खाली पेट पवन स्नान करना चाहिए ब्रह्ममुहूत के समय पवन स्नान करना

चाहिए क्योंकि उस समय का वातावरण शांत रहता है और वायु में ऑक्सीजन की मात्रा का लेवल अधिक रहता है इसलिए उस समय पर अमन स्नान करने से अधिक शरीर को लाभ मिलते हैं।

पवन स्नान शरीर की जीवनी शक्ति को भी बढ़ाता है शरीर की अनावश्यक एनर्जी को दूर करता है। बेहोशी थकावट आदि की समस्याओं को भी दूर करता है स्मृति शक्ति के विस्तार में पवन स्नान अधिक महत्वपूर्ण लाभकारी मानी गई है इस नाम से व्यक्ति की त्वचा रोग मानसिक रोग शारीरिक रोग दूर होते हैं। मन को शांति मिलती है बेचैनी घबराहट आदि समस्याएं भी दूर होती है।

2.4.3 अग्नि तत्व

अग्नि तत्व अग्नि तत्व पंचतत्व में तीसरा प्रमुख तत्व माना गया है जो हमारे शरीर की सभी प्रकार की पाचन क्रियाओं को क्रियान्वित करने का कार्य करती है। शरीर में कुल **13** प्रकार की अग्निया पाई जाती हैं शरीर में पंचभूतात्मक तथा सप्तधातु अग्नि और एक जठराग्नि समाहित है। पंचभूत अग्नि से पंच भूतों का निर्माण होता है । सप्तधातु अग्नि से सप्त धातुओं की वृद्धि होती है जिससे शरीर की वृद्धि शरीर की देखरेख शरीर की बनावट शरीर का आधार आदि पंचभूत अग्नि पर निर्भर करता है। शरीर की सभी क्रियाओं को संचालित करती है जिसमें खाए हुए भोजन को पचाना तथा पचे विभाग को शरीर से बाहर निकालना । अग्नि तत्व की यदि बात की जाए तो अग्नि का स्रोत भगवान सूर्य को माना गया है । सूर्य साधना के माध्यम से साधना की जाती है सूर्य तत्वों के अंतर्गत सूर्य स्नान आदि साधना के माध्यम से हम अग्नि तत्व के गुणों का लाभ प्राप्त कर सकते हैं । क्योंकि सूर्य ब्रह्मांड का केंद्र है इस संपूर्ण सृष्टि की रचना, संरचना व क्रियाशीलता इस पर निर्भर करती है इसलिए सूर्य की उपासना साधना आदि का विधान भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से देखने को मिलता है । सूर्य का वेदों, पुराणों, उपनिषदों में विशेष महत्व बताया गया है सूर्य जो हवन ग्रहण करने वाले अग्निदेव कल्याण करने वाले श्रद्धा, विद्या, लक्ष्मी, बल, आयु, तेज एवं आरोग्य को प्रदान करते हैं ऐसे सविता देवता के नाम से सूर्य को जाना गया है । सूर्य साधना हम सूर्य स्नान के माध्यम से कर सकते हैं जिसमें रिकली और कुने का धूप स्नान के साथ–साथ पसीना लाने वाला सूर्य स्नान एवं साधना सूर्य स्नान आदि की क्रियाओं से हम कर सकते हैं और सूर्य के लाभ ले सकते हैं साथ ही साथ कांच के प्रिजम के अलग–अलग रंगों के माध्यम से सूर्य की किरणों के माध्यम से चिकित्सा करके हम सूर्य का लाभ ले सकते हैं । इसके साथ साथ में जल को तेल को सूर्य के प्रकाश में ऊर्जित करके अलग–अलग रंगों के माध्यम से उर्जित करके उसका उपयोग अपने जीवन में हम करके सूर्य के गुणों को अपने जीवन में उपयोग कर सकते हैं । इसलिए सूर्य अत्यंत महत्वपूर्ण लाभकारी माना गया है सूर्य साधना श्रेष्ठ और सबसे सफल साधना में से एक भी मानी गई है । सूर्य ऊर्जा का प्रतीक है इसलिए भारतवर्ष में अनादि काल से ही अग्नि तत्व की प्राप्ति के लिए सूर्य की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है क्योंकि हम सूर्य के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते भारत ही नहीं संपूर्ण देश संपूर्ण धर्म सभी की सभी सूर्य पर निर्भर करते हैं । सूर्य की साधना तथा उपासना को स्वीकार करते हैं । सूर्य को

जगत की आत्मा भी कहा गया है शेष चारों तत्वों के आधार पर माना जाता है यही संसार के सौंदर्य का द्योतक सूर्य है , सूर्य की वजह से पुष्प खिलते हैं, वर्षा होती है ,फल पकते हैं ,जीव अपने जीवन की क्रियाओं को संपन्न करते हैं, प्रकृति फलों को देती है, नदियां जल को देती हैं, बादल बरसते हैं, संपूर्ण सृष्टि की क्रियाएं सूर्य के द्वारा ही होती हैं ।

सूर्य का विश्लेषण प्रकाश के रूप में उपलब्ध सूर्य इस सृष्टि की जीवात्मा के रूप में स्वीकार किया गया है सूर्य के प्रकाश में अल्फा बीटा एवं गामा किरणे सन्निहित है जिनसे रोगों को दूर करने का एक अचूक समाधान भी निकाला गया है सूर्य स्नान के माध्यम से हम की अग्नि चिकित्सा करते हैं ।

अल्ट्रावायलेट किरणें इनका प्रभाव हमारे शरीर मन पर विशेष रूप से पड़ता है रक्त की कमी, अंगों में समस्याएं संक्रमण रोग, गठिया रक्त, आदि विशेष में सूर्य की किरणें लाभ प्रदान करती हैं क्योंकि यह अदृश्य होती हैं चिकित्सकों के द्वारा प्रयोग नहीं किया जा सकता मंत्र के साथ किया जाता है।

लाल किरण सूर्य के प्रकाश के लगभग **80** भाग केवल लाल किरणों और इंफ्रारेड किरणें होती हैं। यह वायुमंडल को उत्तेजित करके अपने कार्य को करते हैं लाल रंग गर्मी को बढ़ाता है एनर्जी को बढ़ाता है। शरीर में रक्त की कमी तथा गठिया जैसे रोगों में लाभकारी है लाल रंग के वस्त्र धारण करना अच्छा रहता है ।जिन लोगों का हृदय कमजोर होता है उन्हें लाल रंग के वस्त्र नहीं पहनना चाहिए यह रंग चंचलता उत्पन्न करता है चंचलता तो रजोगणी के कारण आती है क्योंकि रजोगुण का रंग लाल होता है यह रंग वायु से जोड़ों का दर्द, सर्दी, दर्द, सूजन, स्नायु मंडल के सभी रोगों में लाभकारी है।

नीली किरणें शांति का प्रतीक है पीली किरणें पवित्रता का प्रतीक है। हरी किरणे दर्द, खुजली, फेफड़ों, गंजापन आदि में लाभकारी है । पीली किरणे प्रेम का प्रतीक है बैंगनी किरणे और नीले और हरे रंग की भांति शीतलता का प्रतीक है । अल्ट्रावायलेट किरणें यह शरीर की इंफ्रारेड किरणों में से एक हैं यह कीटाणुओं को जीवाणुओं को नष्ट करने के काम आती है ।शरीर की अनावश्यक दोषो को दूर करती है तथा शरीर को मजबूती प्रदान कर शरीर की अस्थियों को मजबूती प्रदान कर शरीर की त्वचा को स्वच्छ बनाती है।

2.4.4 जल तत्व

पंचतत्व में चौथा प्रमुख तत्व जल तत्व है जल को जीवन कहा गया है। जल जब बरसात के रूप में आता है तो वह फसलों को सींचता है जल से जनजीवन प्रभावित होता है ।बाढ़ के रूप में आकर जनजीवन को हानि भी पहुंचाता है जल जीवन के लिए उपयोगी है आहार के साथ–साथ जल को भी एक आहार के रूप में माना गया है । जल हमारे सृष्टि में ठोस द्रव और गैस के रूप में पाया जाता है आस्थाई कठोर जल ,स्थाई कठोर आदि रूपों में भी पाया जाता है नदियों में बहते पानी , कुओं का जल प्रदूषित होता है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकारी नहीं होता है । परंतु इस प्रकार का जल साबुन में खुलकर अधिक झाग उत्पन्न करता है इस जल को उबालने से उसकी कठोरता दूर हो जाता है पीने के लिए उपयोग में आते

हैं । इस प्रकार के जल में स्थानीय खनिज पदार्थों की उपलब्धता पाई जाती जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी मजबूत बनाती है साथ ही शरीर की बीमारियों को दूर कर स्वच्छ और स्वस्थ प्रदान करता है । इसकी साधना की बात की जाए तो जल स्नान ,जल का पान क्रियाओं के माध्यम से किया जाता है ।

2.4.5 पृथ्वी तत्व

तो पंचतत्व में पृथ्वी तत्व विशेष महत्वपूर्ण माना गया है पृथ्वी तत्व में आकाश, वायु ,अग्नि, जल आदि तत्वों के गुण भी पाए जाते हैं इसमें यांत्रिक गुण होता है । सर्दी गर्मी को रोकने की अद्भुत क्षमता होती है विश्व का पोषण करने की क्षमता होती है शरीर की त्वचा में वर्ण की क्षमता उत्पन्न होती है इसलिए पृथ्वी तत्व विशेष महत्वपूर्ण ही माना गया है । यह लाल मिट्टी, काली मिट्टी, पीली मिट्टी, बलुई मिट्टी आदि रूपों में भी पाए जाते हैं मिट्टी साधना की बात करें इसकी उपयोगिता हमारे जीवन के लिए बहुत ही लाभकारी है । क्योंकि सभी प्रकार के तत्वों को बैलेंस भी कर सकते हैं पृथ्वी तत्व एक ठोस प्रधान तत्व है जिससे घरों का भी घरों का भी निर्माण किया जाता है पृथ्वी तत्व की साधना की बात करें तो हम मिट्टी पट्टी के माध्यम से मस्तिष्क की मिट्टी पट्टी, रीड की मिट्टी पट्टी, गले की मिट्टी पट्टी, चेस्ट की मिट्टी पट्टी आदि की पट्टियों द्वारा हम शरीर की रोधक प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सकते हैं और पृथ्वी तत्व को हम अपना सकते हैं

मिट्टी के बर्तनों का उपयोग कर मिट्टी के गुणों का लाभ लिया जा सकता है प्राचीन समय मिट्टी के बर्तनों में लोग भोजन पकाते थे मिट्टी के घरों में रहते थे मिट्टी का अपने जीवन में अधिक से अधिक उपयोग करते थे और मिट्टी के साथ जुड़े रहते थे इसलिए उनका जीवन का भी पवित्र और निरोगी भी रहता था इसलिए मिट्टी जीवन के लिए काफी लाभकारी है मिट्टी की गुणों की चर्चा की जाए तो मिट्टी में दुर्गंध को मिटाने की क्षमता होती है मिट्टी गर्मी सर्दी को रोकने की क्षमता होती है मिट्टी अशुद्धता को दूर करती है मिट्टी विश्व का पोषण करके रोगों को दूर करती है। इसलिए मिट्टी काफी उपयोगी है।

2.4.6 महततत्व

महत्त्व राम नाम प्राकृतिक चिकित्सा में राम नाम तत्व का विशेष महत्वपूर्ण योगदान माना गया है । क्योंकि व्यक्ति जिस परमात्म सत्ता से जुड़ा है । वह परमात्मा सत्ता ही सभी पंच तत्वों को संचालित करता है सभी पंचतत्व में वह निवास करता है । यदि हम उस महत्त्व से नहीं जुड़ेंगे तो निश्चित रूप से शरीर तो हमारा स्वस्थ हो जाएगा, पर आंतरिक आनंद उल्लास कि कहीं ना कहीं कमी रह जाएगी जिसके कारण शरीर में बीमारियां पनपती रहेंगी और हम पूरी तरह से ठीक नहीं हो पाएंगे । इसलिए महत्त्व प्रकृतिक चिकित्सा का आधार भी है सृष्टि का भी आधार है। जिस प्रकार पाणी प्राण के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं होता उसी प्रकार महत्त्व के बिना पंच तत्वों का कोई भी महत्व नहीं रह जाता इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता क्योंकि पंच तत्वों का क्रियान्वित करने की शक्ति जो है, उस महत्त्व में है जिसे परमपिता परमात्मा सच्चिदानंद ब्रह्म अनेक रूप में जाना जाता है । वह सर्वशक्तिमान ईश्वर ही राम नाम के

रूप में विद्यमान है जो हमारे शरीर स्वास्थ्य के साथ–साथ जीवन की उन्नति के लिए भी सहायक है वह परमात्मा सत्ता हमारे जीवन को चैतन्य अवस्था प्रदान कर उसे चेतना में निवास करने के साथ–साथ उसे इस समाज में एक विकसित सभ्य और सुशील मानव के रूप में उसे मानवता प्रदान कर उसे देवत्व की राह पर चलने का सौभाग्य प्रदान किया है।

प्राकृतिक चिकित्सा में राम नाम तत्व तत्व महात्मा गांधी जी ने दिया महात्मा गांधी जी हमेशा राम नाम के जब को सर्वसम्मति के साथ लोगों के पास जनमानस बीच रखा । क्योंकि प्रकृति उस परमपिता परमात्मा का ही आंगन है, जिसके गोद में हम पलते बड़े होते है। यहीं से धरती माता से उपयोग अन्य को ग्रहण करते और सी अन्य से अपने जीवन की प्रक्रिया को संचालित करते हैं इसी के साथ हमारा दायित्व बनता है। जिस प्रकृति में हम निवास करते हैं। जहां से अन्न ग्रहण करते हैं, जहां का जल को ग्रहण करते हैं जिस प्रकृति में है या प्रकृति की गोद में हम सोते हैं उस धरती माता के प्रति जो भी हमारे कर्तव्य होते हैं उनका निर्वहन करते हुए उस परमपिता परमात्मा का नाम जपते हुए जीवन जीना चाहिए। सभी धर्म ग्रंथों में उपासना विधान अलग–अलग बताया गया है किंतु सभी उस अदृश्य समान रूप से सभी जगह व्याप्त परमात्मा की उपासना करते हैं। उसके नाम अलग–अलग हो सकते हैं परंतु भावनाएं एक ही होती हैं मंजिल एक ही होती है। सब ग्रंथों में अलग–अलग उपासनाओं के माध्यम से ऐसी परमपिता परमात्मा का भजन कीर्तन जब स्मरण आदि के रूपों में उसे पूजन करते हैं और उसी के सानिध्य में अपने जीवन व्यतीत करते हैं । और सभी प्रकार के रोगों से वह मुक्त रहते हैं इसलिए उनका जीवन प्रसनचित और आनंद में ही व्यतीत होता है, महापुरुषों के चरणों में बैठकर जीवन का अनुभव लेकर लोगों का मन ह्रदय सबकुछ पवित्र और पावन हो जाता है इसलिए कहा गया है, संत ह्रदय नवनीत समाना सभी सज्जनों का ह्रदय नवनीत के समान होता है। इसलिए उनके पास में बैठने से व्यक्ति में शांति उत्साह उल्लास आनंद का अनुभव होता है। इसलिए सभी धर्म ग्रंथों में पूजा का उपासना का विधान अच्छे ढंग से अलग–अलग तरीकों से भी बताया गया है।

इसीलिए दिन की शुरुआत सभी धर्म ग्रंथों में सुबह प्रार्थना उपासना के माध्यम से बताया गया है । सभी मनुष्य अपने अपने समाज अपने अपने धर्म अपने अपने सिद्धांतों विश्वास और मतों के अनुसार उस परमपिता परमात्मा को याद करके उनके नाम का जप करके उनकी उपासना करके दिन की शुरुआत करते हैं, तभी उनका जीवन स्वस्थ भी रहता है , राम नाम का आश्रय लेने से सभी प्रकार के रोग ठीक तो होते ही होते हैं। तथा जपने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी परिष्कार होता है । क्योंकि राम नाम उस परमपिता परमात्मा का ही नाम है क्योंकि जिसके जपने से डाकू रत्नाकर जिसे बाल्मीकि बन जाते हैं। और उसी परमपिता परमात्मा को याद करें उनकी शरण में जाने वाले अंगुलिमाल भी आनंद आचार्य जैसे भक्त बन जाते हैं । ना जाने कितनों का जीवन उसी परमपिता परमात्मा की छत्रछाया में रहने उनके जप करने से बदल गया है।

यदि चिकित्सा शास्त्र से महतत्व को निकाल दिया जाए तो निश्चित रूप से केवल भौतिकवादी जीवन रह जाता है। जिसके कारण व्यक्ति वर्तमान समय में अनेकों प्रकार से रोगों से ग्रसित होता हुआ चला जा रहा

है। प्रार्थना द्वारा ईश्वर का आश्रय लेने से रोग शोक संताप दुख विपत्ति सभी प्रकार से मुक्ति मिल जाती है। और जो कुछ इस संसार में व्यक्ति के जीवन में नकारात्मक घटित होने वाला होता है। वह उस परमपिता परमात्मा की कृपा से दूर हो जाता है। उस परमात्मा की अनुकंपा से ही व्यक्ति का जीवन उसका समाज उसका राष्ट्र उन्नति शील बनता है। तथा परिवार में संपन्नता संस्कार सहिष्णुता उत्पन्न होती है । उन्ही के घर में ईश्वर भी विराजमान करते हैं । जिस घर में ईश्वर का निवास होता है वहां क्लेश रोग दोष इन सभी का सदा ही नाश हो जाता है। इसलिए सच्चे और शुद्ध और पवित्र मन से उस परमात्मा का भजन कीर्तन जब हमेशा करते रहना चाहिए उसके साथ साथ में भी हम कोई भी कर्म करते हैं। तो वह कर्म हमारे उन्नतशील जीवन को प्रगतिशील बनाने में सहायता प्रदान करता है। क्योंकि प्रार्थना द्वारा मन के कल मस्का साए सब दूर हो जाते हैं। चित्र शुद्ध हो जाता है भावनाएं पवित्र हो जाती हैं विचार शुद्ध हो जाते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व बदल जाता है। उसका व्यवहार उसका आचरण पूरी तरह से बदल कर एक सात्विक प्रवृत्ति की ओर बढ़ने लगता है। जिससे स्थाई सुख शांति की प्राप्ति होती है। जैसा कहा गया है ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मयो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन
सोष्नुते सर्वान् कामान। (उपनिषद)

वह ब्रह्म सत्य है ज्ञान से अनंत है। वह हृदय की गुफा में निवास करता है। जो प्राणी उसे जान लेता है। उसकी संपूर्ण कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। उस ईश्वर की प्रार्थना की जाए तो निश्चित रूप से व्यक्ति के जीवन में खुशियां उत्पन्न होती हैं मनुष्य का आंतरिक जीवन पूरी तरह से सफल होता है। प्रत्येक मनुष्य के अंतर्मन की दशा अलग–अलग होती है। लेकिन फिर भी एक साधारण नीति को अपनाया जा सकता है । इसके लिए निम्नलिखित जीत को अपनाना चाहिए प्रार्थना का सर्वोत्तम समय प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त को माना गया है। साथ ही साथ और से समय वार रात्रि में सोने से पहले सुबह की प्रार्थना में भगवान से उस दिन के बारे में अच्छे कामों की कल्पना करनी चाहिए इस बात की प्रार्थना की जानी चाहिए कि उसका सारा दिन अच्छा सकारात्मक सदस्यों के साथ व्यतीत हो तथा जब शाम को सोने से पूर्व भगवान से फिर प्रार्थना करनी चाहिए। कि आज के दिन जो भी हमसे गलतियां जो भी हमारे जीवन में बुराइयां उत्पन्न हुई वह हमेशा के लिए दूर हो अगले दिन जो भी आएगा वह सबसे अच्छा विदित होगा इन्हीं भावनाओं के साथ बुरे कर्मों को त्याग कर अच्छे कर्मों को अपनाते हुए अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। सुबह और शाम उपासना साधना आराधना करनी चाहिए उपासना भगवान के पास में बैठना साधना अपने बुरे विचार बुरी संगत को कर्म या फिर जो हमारे अंदर बुराइयां हैं । उनको साथ लेना उनको हटाकर अच्छाइयों को अपने जीवन में धारण करना ही साधना है । आराधना गरीब असहाय पीड़ित लोगों की हम सेवा कर सकते हैं तो उनकी सेवा करना ही आराधना है। इस प्रकार से हम अपने जीवन को आगे बढ़ाते हैं तो निश्चित रूप से हमारा जीवन हमारा शरीर पूरी तरह से स्वस्थ बना रहेगा क्योंकि ईश्वर की उपासना भी अध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति कराने में सहायक है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति ईश्वर उपासना और अध्यात्म के मार्ग पर

चलने आध्यात्मिक जीवन जीने तथा ईश्वर की भगत भजन आदि करने से प्राप्त होती है प्रार्थना हमारे मुख से नहीं हमारे हृदय से होनी चाहिए व्यक्ति के हृदय के निर्मल होते हैं । तो भगवान खुद भक्तों के घर आते हैं । जैसा कहा गया है

निर्मल मन हो तो रघुनायक शबरी के घर जाते। श्याम सूर्य की बांह पकड़ साग विदुर घर खाते हैं।

प्रार्थना द्वारा रोग निवारण

प्रार्थना द्वारा गंभीर से गंभीर रोगों को भी दूर किया जा सकता है जब कोई रोगी या उसका हितेषी रोग को दूर करने के लिए प्रार्थना करता है तब प्रार्थना के सूचना अनु रोगी के शरीर की कोशिकाओं में प्रवेश कर उसे स्वास्थ्य प्रदान करें करते हैं। गांधीजी राम नाम और उससे उत्पन्न पंचमहाभूत तो को विशुद्ध प्राकृत चिकित्सा का साधन मानते थे जबकि बाकी सभी प्राकृतिक चिकित्सक केवल पांच तत्वों को ही स्वीकार करते थे गांधीजी बार–बार कहा करते थे। कि राम नाम रोगी के लिए अचूक चिकित्सा है। राम नाम के जप करने से रोगी निश्चित रूप से ठीक हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा का केंद्र बिंदु है क्योंकि मानव का केंद्र बिंदु वह परमात्मा है । तो उस परमात्मा सत्ता को जब व्यक्ति अपने इष्ट देव के नाम से जपता है तो उससे आरोग्यता प्राप्त होती है जैसा रामचरितमानस में कहा गया है। मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वास ,मंत्र का जाप करने से निश्चित रूप से प्राणी को दीर्घायु की प्राप्ति होती है तथा स्वास्थ्य की भी प्राप्त होती है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पंचमहाभूतो से चिकित्सा तो अवश्य होती है लेकिन उस चिकित्सा को सफल बनाने में महतत्त्व अत्यंत उपयोगी है यदि महतत्त्व को नहीं अपनाया गया तो निश्चित रूप से पंचतत्व अपना काम करेंगे लेकिन मन व्यक्ति का संतुष्ट नहीं होगा स्वस्थ नहीं होगा तो निश्चित रूप से मानसिक बीमारियां उसे घेरे ही रहेंगी जब तक मनुष्य के जीवन में मानसिक बीमारियां रहेंगे तब तक स्वास्थ्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता जब तक हम उन पंच तत्वों का ज्ञान अच्छे से प्राप्त ना करें प्राकृतिक चिकित्सा मे पंच तत्वों की उत्पत्ति एवं इन तत्वों को प्राप्त करने के साधनों के बारे में भी चर्चा की गई है साथ ही साथ महत्व का भी वर्णन किया गया है। क्योंकि महत्त्व के बिना चिकित्सा पूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि चिकित्सा केवल शरीर मात्र की नहीं होती बल्कि आत्मा की भी होती है। जिसके लिए महत्त्व का ज्ञान भी होना अत्यंत आवश्यक है तभी प्राकृतिक चिकित्सा सफल मानी जाएगी।

2.5 स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा

स्वास्थ्य जीवन की अनमोल निधि है संपूर्ण मानव जीवन स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है इसीलिए प्रथम सुख है सुंदर काया के नाम से बताया गया है बिना स्वास्थ्य के जीवन निरश हो जाता है ।स्वस्थ मनुष्य ही संसार में रहकर सभी कार्यों का संपादन सुचारू रूप से कर सकते हैं और जीवन का आनंद भी उठा सकते हैं। क्योंकि संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति तभी संभव है जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक रूप से पूरी तरह से स्वस्थ है यह दुआ किसी प्रकार से अस्वस्थ रहता है तो उसका जीवन कहीं ना कहीं अपने लक्ष्य की प्राप्ति में वह दूर हो जाता है स्वस्थ रहना मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार भी है। परमपिता परमात्मा ने हर प्राणी को ऐसे साधन देकर भेजा है कि वह अपने जीवन को निरोग और स्वस्थ बना करके जीवन व्यतीत कर सके परंतु हम देखते हैं कि भौतिकवादी जिंदगी में लोग अपने विकास के चक्कर में इतना आगे बढ़ते चले जा रहे हैं जिससे प्रकृति का दोहन भी करते जा रहे हैं इसके कारण मनुष्य की प्राणशक्ति तो कमजोर होती जा रही है साथ ही साथ अनेक ऐसी बीमारियां बढ़ती चली जा रही है।

अप्राक्रतिक जीने के कारण गलत खानपान बढ़ता गया जिसके कारण शरीर में विजातीय तत्वों के साथ–साथ अन्य मलो का इकट्ठा होना शुरू हो गया और वह इतने इकट्ठे हो गई जिसके कारण शरीर रोगों का हिस्सा तो हो गया और मनुष्य का जीवन सारा दुखमय हो गया का प्रकृति हत्या के कारण आज विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोगों की बाढ़ सी आ गई है। स्वस्थ होने के लिए प्राकृतिक जीवन अपनानी होगी प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति से ही स्वस्थ प्रसन्नता की प्राप्ति हो सकती है

स्वास्थ्य की अवधारणा

जबसे व्यक्ति का जन्म हुआ तब से स्वास्थ्य प्रकृति की देन मानी गई है। देव दुर्लभ मानव शरीर को स्वास्थ्य रखने में प्रकृति का अहम रोल माना गया है । क्योंकि बिना स्वास्थ्य प्राणी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति के लिए उसे स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। इसलिए बताया गया है कर्म ज्ञान और भक्ति की उपासना तभी संभव है जब मानव स्वस्थ रूप से परिपूर्ण होगा आजकल शारीरिक मानसिक भोग विलास के कारण इतनी विसंगतियां उत्पन्न होती जा रही हैं कि व्यक्ति की आकृ ति तो स्वयं रहती है लेकिन उसकी प्रकृति बदल जाती है। उसके व्यवहार नकारात्मक हो गया जिसके कारण मनुष्य इस समाज में त्राहि–त्राहि करने लगा जीवन की अभिलाषा प्राकृतिक आहार विहार के ना होने के कारण नकारात्मक चिंतन से मानसिक तनाव विकार भी उत्पन्न होने लगे शरीर को कष्ट बढ़ता जा रहा है जिससे व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र दूखी होता जा रहा है। क्योंकि राष्ट्र की समृद्धि वहां के युवा वहां के रहने वाले प्राणियों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है जिस देश की जनता स्वस्थ सुखी संपन्न है वह राष्ट्र सुखी संपन्न होगा वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि निश्चित रूप से उसके जीवन में प्रसन्नता उत्पन्न होने लगेगी अपने खान–पान रहन–सहन एवं विचारों पर संयम रखें तो प्रकृति के नियम पर चले तो उसका संपूर्ण जीवन स्वास्थ्य बना रह सकता है। स्वास्थ्य जीवन जीने के लिए हमें कुछ नियमों

व सूत्रों को जानना अति आवश्यक है। स्वस्थ रहने के लिए आयुर्वेद से लेकर के उपनिषदों, पुराणों,योग आदि सभी ग्रंथों में जीवन जीने की कला के महत्वपूर्ण सूत्र बतलाए गए हैं। जिनको अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को स्वास्थ्य संयमित प्रसन्नता पूर्वक कर सकता है इसलिए प्रत्येक मानव का प्रथम अधिकार है। स्वस्थ रहना यदि हम स्वस्थ के नियमों को जान लें तो निश्चित रूप से हमारा जीवन हमारा समाज हमारा परिवार हमारा राष्ट्र और उत्तम शिखर तक पहुंच सकता है। स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

स्वास्थ का अर्थ

स्वास्थ का सामान्य अर्थ है स्व स्थित रहना, अपने आप में स्थित रहना, जिस व्यक्ति के विचार उसके कारण उसके गुण उसकी आदतें उसके अधिकार में है, उसके नियंत्रण में है उसका चित्त शांत व निर्मल है। जिसकी वृत्तियां विरुद्ध हो गई है, उसका मन अपने कर्म, अपने कर्तव्य, अपने समाज, अपने राष्ट्र, अपने देश के प्रति ईमानदार, जिम्मेदारी के साथ संबंधित है वही व्यक्ति मूल रूप से स्वस्थ है। स्वास्थ्य एक ऐसा शब्द है जिसका उपयोग प्रत्येक मानव दिन प्रति दिन की जिंदगी में करता रहा है । जिसका अर्थ है अलग–अलग रूपों में समझ सकते हैं । कुछ लोगों का विचार है कि शरीर का सुचारू रूप से कार्य करना ही स्वस्थ है, जो अपने कर्तव्य के प्रति निरंतर लगन शील रहते हैं वही स्वस्थ हैं लेकिन कुछ का कहना है, रोग का आक्रमण ना होना तथा उपचार के लिए किसी चिकित्सक की सलाह ना लेनी पड़े तो ऐसे व्यक्ति के स्वास्थ्य को हम अच्छा समझ सकेंगे यह मानेंगे कि व्यक्ति मूल रूप से स्वास्थ्य भी है, स्वस्थ्य शब्द स्वास्थ्य से बना है जो व्यक्ति के स्वस्थ होने के गुण व विशेषताओं को प्रकट करता है, स्वास्थ्य शब्द स्वास्थ्य से मिलकर बना है जिसका अर्थ है, स्वयं में स्थित रहना यहां ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने आप में नियंत्रित रहता है। उसे क्रोध नहीं आता, उसे आलस नहीं आता वह अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान है। मानव शरीर एक ऐसा भौतिक संरचना है जिसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती शरीर के सभी अंग प्रत्यंग एकरूपता और सामंजस्य के साथ कार्य करते हैं। व्यक्ति स्वस्थ तब तक बना रहता है जब तक उसकी जीवनी शक्ति मूल रूप से कार्य करती रहती है। जब उसके जीवनी शक्ति में ह्रॉस आता है। तो निश्चित रूप से वह पूरी तरह से बीमार पड़ने लगता है। शरीर के सभी अंगों की मरम्मत उसकी क्षतिपूर्ति उसकी जीवन शैली पर निर्भर करता है मानव शरीर के प्रत्येक अंग में आश्चर्यजनक एकरूपता है। जब अंगों की समरूपता में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है जीवन शैली में विकृतियां उत्पन्न हो जाती है। उसकी आदतों में उसकी विचारों में नकारात्मकता आ जाती है। वक्त के साथ तालमेल नहीं बैठता है वहां आलस्य, प्रमाद, काम ,क्रोध, लोभ के साथ मिलकर अपने जीवन में रोग उत्पन्न होने लगते हैं। जिस काम के करने में किसी प्रकार की तकलीफ ना हो श्रम से जो मन को ना डालें मन में काम करने के प्रति उत्साह बना रहे स्वास्थ्य स्वास्थ्य की भाषाओं की दृष्टि से देखा जाए तो अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएं दिया हैं। क्योंकि स्वास्थ्य जीवन का सबसे अनमोल रत्न है इसी रत्न के आधार पर व्यक्ति के जीवन में प्रखरता, मर्यादा ,खुशहाली ,समृद्धि सब कुछ प्राप्त होते हैं स्वास्थ्य ऐसा कल्पवृक्ष है, ऐसी कामधेनु है, जिससे प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में मनोवांछित फलों की प्राप्ति कर सकता है। मन से

ही व्यक्ति अपने जीवन की सभी सफलताओं की भी प्राप्त करता है । प्रत्येक मानव को स्वस्थ का सही अर्थ एवं स्वस्थ जीवन शैली की विशेषताओं का सही–सही ज्ञान होना चाहिए । जिससे स्वस्थ जीवन के सापेक्ष में विधिवत करे तो प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग करके अपना स्वास्थ्य और सामान्य जीवन यापन करते हुए जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करे।

स्वास्थ्य की परिभाषाएँ–

महर्षि चरक के अनुसारः–

त्रय उपस्तम्भा आहारः स्वप्नोब्रह्मचर्यमिति ।

स्वस्थ शरीर के तीन उपस्तम्भ माने गये हैं आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य । स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ है शरीर एवं मस्तिष्क का ऐसी अवस्था में होना जिससे वह सभी कार्य सुचारू रूप से कर सके।

डॉ० हेनरी लिंडलार के अनुसार– स्वास्थ्य उन तत्त्वों एवं शक्तियों का एक सामान्य एवं समन्वित तंत्र है जो मानव अस्तित्त्व को गठित करने वाले भौतिक मानसिक एवं नैतिक सतह पर व्यक्ति से संबंधित प्रकृति के निर्माण कार्य सिद्धांत के अनुरूप है

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक रूप से क्रियाशील है वही व्यक्ति स्वस्थ है।

कारलायल के अनुसार एक स्वस्थ मनुष्य अपने स्वास्थ्य के विषय में जानकारी नहीं रख सकता क्योंकि स्वस्थ ही जीवन है।

जे० एस० विलियम्स के अनुसार– स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है, जो व्यक्ति को अधिक समय तक जीवित रहने तथा सर्वोत्तम प्रकार से क्रियाशीलता के योग्य बनाता है।

वेब्सटर के अनुसार स्वस्थ शरीर, मन या आत्मा में स्वस्थता तथा निरोगता की अवस्था है यह शारीरिक रोग अथवा दर्द का अभाव है।

महात्मा गाँधी के अनुसार– मैं जितना ज्यादा विचार करता हूँ उतना ही ज्यादा महसूस करता हूँ कि ज्ञान के साथ हृदय से लिया हुआ रामनाम ही, सारी बीमारियों की रामबाण दवा है। रामनाम द्वारा शारीरिक, मानसिक और नैतिक सभी व्याधियाँ दूर हो जाती है । ईश्वरीय नियम पालने से ही शरीर निरोग रह सकता

है– शैतानी नियम पालने से नहीं। जहाँ सच्चा आरोग्य है वहीं सच्चा सुख है और इसके लिये हमें स्वादेन्द्रिय जीभ को जीतना ही जरूरी है।

प्रैक्लीन पी० एडमज के अनुसार– स्वास्थ्य वह वस्तु है जिससे मनुष्य संसार के सुख भोगते हुए सदैव आनन्दित रहता है।

बर्टहेट ई०दृ हमें स्वास्थ्य रोग के संदर्भ में न परिभाषित करके प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का सामंजस्य रूप से विकास के संदर्भ में परिभाषित करना चाहिए। क्योंकि अन्ततोगत्वा यह एक व्यक्ति की सम्पूर्ण क्षमता जैविकीय, मनोवैज्ञानिक या सामाजिक के संतुलित स्थिति का द्योतक है, तथा वैयक्तिक स्वास्थ्य के संदर्भ में परिवार तथा सामुदायिक स्वास्थ्य के प्रत्यय को भी सम्मिलित करना चाहिए।

वेन्डेल फिलिप्स के अनुसार स्वास्थ्य का निवास मेहनत में है और श्रम के अतिरिक्त वहाँ तक पहुँचने का कोई दूसरा राजमार्ग नहीं है। जल्दी सोना और प्रातः उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान और बुद्धिवान बनाता है।

पी० साईरस के अनुसार– अच्छा स्वास्थ्य एवं अच्छी समझ जीवन के दो सर्वोत्तम वरदान है।

यजुर्वेद (12/76) के अनुसार

शत वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वोरुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदकृत ।।

अर्थात्– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रमुख साधन मनुष्य का शरीर है इसीलिए उचित आहार, संयमित विहार और आचरण में पथ्य का ध्यान रखकर अपना आरोग्य स्थिर रखनी चाहिए। रोग रहित शरीर ही सर्व सुखों का मूल है।

ऋग्वेद के अनुसार परमात्मा ने इस संसार में सभी को दीर्घायु प्रदान की है। किन्तु मनुष्य अनुचित आहार विहार द्वारा आयु–क्षय कर लेता है, इसलिए नियमपूर्वक जीवन जीते हुए पूर्ण आयु प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है।

आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य की अवधारणा

स्वास्थ्य और आयुर्वेद का गहन संबंध है क्योंकि आयुर्वेद स्वास्थ्य पर आधारित है आयुर्वेद का अर्थ ही है उनका ज्ञान इसमें स्वास्थ्य से संबंधित सभी समस्याओं का निवारण व ज्ञान प्राप्त किया जाता है। आयुर्वेद में भी एक ही बात कही गई है की स्वास्थ्य व्यक्ति का रहना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि आहार–विहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य इसकी प्रक्रिया आयुर्वेद में आती हैं आयुर्वेद व्यक्ति के स्वास्थ्य से संबंधित सभी प्रकार की जानकारियों को उपलब्ध कराता है इसलिए कहा गया है

"समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियाः ।
प्रसन्नत्मेन्द्रयमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।। सुश्रुत सू0 15/41

अतः जिस पुरुष के सभी त्रिदोष वात, पित्त ,कफ तथा सभी धातु ,मल तथा अग्निया समान रूप से कार्य करती हैं उसे ही स्वस्थ कहा जाता है जिसमें व्यक्ति की मल क्रिया भी समुचित रूप से कार्य करती है आत्मा, मन और इन्द्रिय प्रसन्न रहते हैं ऐसी अवस्था को स्वास्थ्य कहा गया है। जिस मनुष्य के तीनों दोष वात, पित्त, कफ तथा अग्निया 13 प्रकार की कही गई हैं इनमें सप्तधातु अग्नि होती हैं पांच भूत अग्नि होती है और एक जठराग्नि होती हैं इनमें भोजन पाचन से शरीर की पुष्टि होने के साथ–साथ रक्त मांस में अस्थि मज्जा और शुक्र सभी पुष्ट होते हैं । जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है। इस स्वस्थ को बनाए रखने में दोष, धातु, और अग्निया मुख्य रूप से अपना कार्य करती हैं।

स्वास्थ्य की आवश्यकता

संसार के सारे कार्य मानव के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है जब व्यक्ति शारीरिक मानसिक सामाजिक आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होता है तो वह छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े कार्य को आसानी से कर लेता है और छोटी से छोटी बड़ी से बड़ी सफलता को भी प्राप्त कर लेता है। इस संसार का समस्त कार्य व्यक्ति के स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है जीवन और संसार के सुख तभी प्राप्त होंगे जब व्यक्ति समुचित रूप से स्वस्थ होगा यदि व्यक्ति रोगी है तो दूसरों पर बोझ है स्वस्थ व्यक्ति ही अपना व दूसरों का कल्याण भी कर सकता है और दूसरों का मार्गदर्शन भी कर सकता है और दूसरों की सहायता भी कर सकता है इसलिए स्वास्थ्य व्यक्ति ही परिवार समाज व राष्ट्र की सच्ची संपत्ति भी मानी गई है । सबसे बड़ा सुख निरोगी काया को माना गया है यदि व्यक्ति का निरोगी है तो वह सुखी है धन दौलत होने से कोई लाभ नहीं व्यक्ति के पास करोड़ों की संपत्ति है फिर भी उसका महत्व नहीं क्योंकि व्यक्ति यदि बीमार है तो वह संपत्ति किसी काम की नहीं। आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार स्वस्थ इस संसार में कीमती से कीमती सुंदर से सुंदर व बलवान से बलवान सौंदर्य सालियों का सौंदर्य का रहस्य महान वीरों की वीरता का रहस्य इस अलौकिक

दृष्टि से हो सकता है। परंतु अध्यात्म उद्देश्य से अपने लक्ष्य की साधना के लिए अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मनुष्य को स्वस्थ रहना अत्यंत आवश्यक है। स्वस्थ शरीर की नितांत आवश्यकता इसलिए भी होती है क्योंकि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य उस के संदर्भ में एक दूसरे के पूरक होते हैं इसलिए जिस भांती मन को अपने बस में करना अति आवश्यक होता है। उसका शरीर को नियंत्रित करना भी आवश्यक है आरोग्य के अभाव में संसार की भौतिक व आध्यात्मिक शक्तियों से विमुख हो सकता है सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती इसलिए रोगी की रक्षा हमारी प्राथमिक आवश्यकता मानी गई है। मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए अपने जीवन को सुख मय बनाए रखने के लिए स्वस्थ को अपनाना चाहिए आयुर्वेद का मूल उद्देश्य भी यही है स्वास्थ्य व्यक्ति की स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना हम इस उद्देश्य को लेकर चलते हैं तो निश्चित रूप से व्यक्ति को धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति आसानी से हो जाती है।

स्वास्थ्य के अंग एवं प्रकार

यदि हम विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार जानकारी प्राप्त करें तो मुख्य रूप से तीन अंग बताए गए हैं। **शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य** किंतु वर्तमान समय में योग का अध्ययन तथा भारतीय संस्कृति के वेद पुराणों उपनिषदों में बताए गए स्वास्थ्य से संबंधित दृष्टिकोण को देखते हुए चौथे आयाम को भी जोड़ा गया है। योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा चौथे अंग को विशेष महत्व देती है।

वह **अध्यात्मिक स्वास्थ्य अध्यात्मिक** स्वास्थ्य व्यक्ति को भौतिकवादी जिंदगी से दूर हटा कर उसे अध्यात्म भरी दुनिया की ओर ले जा करके उसे स्वास्थ्य के मार्ग प्रशस्त करती है।

शारीरिक स्वास्थ्य जिसमें व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है। उसके शरीर के सभी अंग प्रत्यंग सभी तंत्र पाचन, तंत्र स्वसन, तंत्र रक्त परिसंचरण, तंत्र उत्सर्जन तंत्र तथा सभी प्रकार की क्रिया अपना सुचारू रूप से कार्य करती है। तो वह शारीरिक स्वास्थ्य कहलाता है।

मानसिक स्वास्थ्य जिसमें व्यक्ति सभी प्रकार की चिंताएं तनाव, क्रोध, काम, क्रोध लोभ इस प्रकार की मानसिक दोष जैसी परिस्थितियों से विरक्त रहता है। तो निश्चित रूप से उसे मानसिक स्वास्थ्य कहा जाता है। मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए ध्यान, त्राटक जैसी साधना ही बताई गई हैं।

तीसरा स्वास्थ्य की बात की जाए तो **सामाजिक स्वास्थ्य** आता है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है जहां खेलता जहां पढ़ाई करता जहां जीवनयापन के सभी प्रकार के गुणों को सीखता है। व्यवहार को सीखता है। उसे सामाजिक स्वास्थ्य का जाता है। जिसमें व्यक्ति समाज में प्रसन्नता पूर्वक इज्जत मान सम्मान के साथ

जीवित करता है वह सामाजिक स्वास्थ्य को प्राप्त होता है। सामाजिक स्वास्थ्य लोगों की सेवा उदारता दया करने के गुणों से संपन्न होती है। अंत में चौथे स्वास्थ्य की बात की जाए तो वह आध्यात्मिक स्वास्थ्य अध्यात्मिक स्वास्थ्य में अध्यात्म के मार्ग की ओर ले जाती है । अध्यात्म का अर्थ है जो हमें आत्मा की ओर प्रेरित करें उसे अध्यात्म कहा जाता है। व्यक्ति बाल्यावस्था किशोरावस्था तथा वृद्धावस्था को जब पूरी तरह से आता है। अंतिम अवस्था में पहुंचकर राम नाम का जप करते हुए ईश्वर उस परमात्मा की भक्ति में लीन हो करके उस परमात्मा के प्रति समर्पित भाव से अपना जीवन व्यतीत करता है उसे आध्यात्मिक स्वास्थ्य कहा जाता है। जिससे व्यक्ति इस संसार में सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। इसलिए चौथे स्वास्थ्य को सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक प्रकार के स्वास्थ्य के अंग बताए गए हैं।

स्वास्थ्य शरीर के लक्षण

स्वस्थ शरीर उसे कहा जाएगा जिसमें किसी प्रकार का कोई दर्द पीड़ा पराभव हो ना हो वह पूरी तरह से स्वस्थ हो किसी प्रकार का कोई रोक ना हो किसी प्रकार की कोई पीड़ा ना हो, वह शांत चित्त अपना जीवन जीए उसका हर कार्य सरलता और सफलता की ओर ले जाए । प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार वही व्यक्ति निरोगी कहलाने योग्य है, जिसका शरीर सभी प्रकार के विजातीय द्रव्यों से सर्वथा मुक्त रहता हो। जिसकी समस्त इंद्रियों अंग प्रत्यंग सभी सुचारू रूप से अपना अपना समय समय के अनुसार संपूर्ण रूप से कार्य करते हो, साथ ही साथ शरीर मन और आत्मा तीनों से वह प्रसन्न हो उसे ही स्वस्थ कहा जाएगा।

डॉक्टर लुई कुने के अनुसार

पूर्ण निरोगी मनुष्य वह है जिसके संपूर्ण अंग प्रत्यंग सभी साम्यवस्था में हो और बिना किसी कष्ट या भार या प्रयास के अनुसार अपना अपना कार्य करते हो तथा अवयवों का रंग रूप अपने कार्य संचालन के योग्य और सुंदर हो वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है।

एक स्वस्थ मनुष्य के नेत्रों में निर्मलता और शांति विराजमान रहती है, और उसकी उसके चेहरे पर एक अलौकिक दिव्य चमक भी रहती है। उसका उत्तम पाचन स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण है। मल त्याग सरलता से हो रहा हो तथा शरीर से विजातीय द्रव्य सरलता से निकल रहे हो शरीर में किसी प्रकार की दुर्घटना हो ऐसे मनुष्य पूरी तरह से स्वस्थ रहते हैं। और जो हमेशा निरंतर जप ध्यान की अवस्था में रहते हो हमेशा पूजा, उपासना, साधना, संयम, सेवा से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो ऐसे प्रसन्न चित्र वाले व्यक्ति स्वास्थ्य के अधिकारी होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को स्वस्थ कहा जा सकता है। स्वस्थ मनुष्य के निम्नलिखित लक्षण है

- प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में जागरण करने पर शरीर में स्फूर्ति उल्लास आनंद एवं पूरे दिन ताजगी का अनुभव होना चाहिए । शरीर में किसी प्रकार की आधी और व्याधि संबंधित कोई वेदना ना हो या किसी प्रकार से कोई पीड़ा ना हो, त्वचा मुलायम, चिकनी, लचीली ,स्वच्छ हो शरीर पर किसी प्रकार के कोई फोड़े ,फुंसी ना हो।
- जिसके शरीर की त्वचा चिकनी, लचकदार, मुलायम, स्वच्छ हो और गीली ना हो।
- सभी धातुए अच्छे से कार्य करती हो। साथ ही साथ ऋतु में जाड़ा गर्मी और बरसात के मौसम को सहज ही सहन करने की क्षमता जिसमें विकसित हो वही स्वस्थ्य रहता है।
- स्वस्थ्य व्यक्ति के मुख्य मंडल पर चमक होनी चाहिए झुरिया ना हो।
- मुख साफ हो ,आंखों की बनावट अच्छी हो, आंख नाक साफ हो, किसी प्रकार की गंदगी ना लगी हो, बदबू ना आए तथा होंठ फटे हुए ना हो,आंखें चमकीली साफ हो।
- जीभ चिकनी मुलायम हो, समतल हो और साफ हो किसी प्रकार से कोई बदबू ना आए, दांत मोती के समान स्वच्छ साफ और चमकदार और मजबूत हो जिन्हें खादिर, तुलसी, नीम वर्तमान समय से आयुर्वेदिक ओषधि युक्त दातों की मंजन से साफ करे यदि सुलभ हो तो खादिर, तुलसी, नीम की दातून से प्रतिदिन साफ करते रहें।
- मुख का स्वाद अच्छा बना रहे बार–बार किसी प्रकार से मुंह में कफ ना आए ।
- खांसी ना आए, गला साफ , आवाज अच्छी निकले शरीर की नसें उभरी हुई ना हो।
- शरीर का प्रत्येक अंग अच्छा शानदार सुडोल और सुचारू रूप से कार्य करने वाला हो, नाखून गुलाबी हो एवं कटे हुए और साफ हो।
- कमर पतली हो छाती चौड़ी हो तथा पेट ना निकला हुआ हो सिर पर घने 10 बाल और मुलायम बाल हो माताओं की लंबे घने काले बाल हो गर्दन गोल सीधी ना हो ना बहुत लंबी हो ना नीचे घुसी टाइप से हो
- सांस की गति साधारण हो बिना किसी स्पष्ट शब्द के निर्बंध को सोते समय किसी प्रकार से मुख आंख ना खुला। हो खर्राटे ना आते हैं ।
- शरीर निद्रा से समय प्रगाढ़ निद्रा में विश्राम करें । लंबी गहरी निद्रा हो, गलत सपना न आए भोजन उपरांत पेट में किसी प्रकार से गुल्म ना बने गैस ना बने उल्टी ना हो तथा गुड़गुड़ाहट ना हो।
- पेट भारी–भारी ना लगे आलसी का अनुभव ना हो पाचन हो पाचन क्रिया ठीक हो।

- कार्य करने की गति सामान्य हो किसी प्रकार से ना ज्यादा बीपी हाई हो ना लो हो सामान्य अवस्था में हो शत–प्रतिशत ऐसे लोग निरोगी होते हैं साथ ही साथ जो व्यक्ति काम के समय अपना काम करते हैं
- विश्राम के समय विश्राम आनंद लेने के समय आनंद लेते हैं। खेलते समय खेलते हो जो सहनशील हो सख्त काम से निश्चय हो काम को देखकर घबराता ना हो। आलस्य ना आता हो प्रमाद ना हो निर्भीक प्रतिज्ञा और आत्मविश्वासी हो।
- चेहरे पर प्रसन्नता हो अच्छे शब्दों का बोलने वाला हो मधुर भाषी हो। खाना खाने के पश्चात अच्छे से निद्रा आए ठीक से मलों का त्याग हो किसी प्रकार से कोई शरीर से दुर्गंध ना आए।
- अधिक प्यास लगे ना अधिक पानी पिए सामान्य शुद्ध जल का पान करके अपनी प्यास को शांत करना चाहिए।
- निश्चित समय पर सच्ची और खुलकर धूप में जो प्राकृतिक आहार से शांत हो जाए ऐसे संतोषप्रद खाद्य पदार्थों का सेवन करें सात्विक विचार रखे, सात्विक भोजन करें प्रकृति में अनुसरण में रहे।
- आलस्य को त्यागकर अध्यात्म आदि के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को पवित्रता प्रखरता मर्यादा सत्ता के रास्ते पर ले जाकर के धैर्यवान और आशावादी हो विपत्ति से घबराने वाला ना हो प्रकृति जीवन शैली में अभिरुचि हो संकल्प के प्रति आत्म विश्वासी, ईश्वर पर भरोसा रखने वाला हो और संतोषप्रद जीवन व्यतीत करने वाला हो ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति ही स्वास्थ्य का अधिकारी होता है। यह अच्छे स्वास्थ्य वर्धक मानव के जीवन में स्वास्थ्य लक्षण देखे जा सकते हैं।

स्वस्थ जीवन की मूलभूत नियम

यहां पर कुछ स्वास्थ्य से संबंधित मूलभूत नियमों की चर्चा की गई है स्वास्थ्य जीवन के लिए व्यक्ति का मन आत्मा शरीर पूरी तरह से स्वच्छ निर्मल पवित्र होना अति आवश्यक है। यदि स्वास्थ्य अच्छा है तो व्यक्ति सुखी होगा, संपन्न होगा उसके घर में कोई निर्धनता नहीं होगी ,वह पूरी तरह से उत्साही, कर्तव्यनिष्ठ और आत्मशक्ति से पूरी तरह से सराबोर होगा यहां पर कुछ मूलभूत नियमों की चर्चा कर रहे हैं जिनका यदि व्यक्ति सदैव पालन करता है तो उसका स्वास्थ्य उत्तम बना रहेगा ,रोग नहीं होंगे वह दीर्घायु जीवन जीते भी अपनी जीवन लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से कर लेगा आयुर्वेद में मूल रूप से तृतीय और रिया के माध्यम से बतलाए भी गए हैं।

1.ब्रह्म मुहूर्त में जागरण

स्वस्थ जीवन का मूलभूत प्रथम नियम है कि प्राणी को प्रातः काल 4:00 बजे के समय जागरण करके अपने आराध्य का बिस्तर पर ही स्मरण कर धरती माता को प्रणाम कर गए अपनी दिनचर्या की शुरुआत करनी चाहिए प्रातः काल जागरण करने से व्यक्ति की आयु में वृद्धि होती है उसमें निरोग्यता आती है उसमें प्राण

ऊर्जा का संचार बना रहता है प्राण शक्ति की कमी कभी नहीं होती है क्योंकि ब्रह्म मुहूर्त में उठने से ऑक्सीजन का लेवल बहुत ही अच्छा रहता है साथ ही साथ हमारे रामायण, महाभारत ,उपनिषदों ,वेदो में भी प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त की चर्चा की गई है जो स्वर्णिम जीवन के लिए एक वरदान के रूप में भी साबित होती है इसलिए प्रातकाल व्यक्ति को ब्रह्म मुहूर्त में जागरण करके अपने दिनचर्या की शुरुआत करनी चाहिए।

ब्रह्म मुहूर्त में जागरण करने से देवत्व का वरदान मिलता है देवी, देवताओं का आशीर्वाद व्यक्ति को प्राप्त होता है उनका संरक्षण प्राप्त होता है क्योंकि देवताओं को प्रातः काल का समय प्रिय माना गया है।

2.उचित भोजन

स्वस्थ जीवन में आहार, विहार की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी गई है योग ग्रंथों में भी आहार को प्रत्याहार के रूप में स्वस्थ जीवन के लिए अधिक उपयोगी बताया गया है। आहार स्वस्थ रहने का एक महत्वपूर्ण साधन भी कहा जाता है। कि व्यक्ति जैसा अन्न को ग्रहण करता है उसकी मानस प्रकृति उसके मनोमय कोश का निर्माण भी अन्नमय कोश के आधार पर ही निर्भर करता है। मानव जैसा अन्न खाता है। वैसे ही व्यक्ति के मन का भी निर्माण होता है। क्योंकि भोजन शरीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्तर को भी प्रभावित करता है। भोजन करने से व्यक्तित्व की आत्मा, मन, इंद्रिया तृप्त होती है। इसलिए सात्विक भोजन पवित्र भगवान को भोग लगाकर ग्रहण करना चाहिए गीता में भी बताया गया है। सबसे पहले उस परमपिता परमात्मा को भोग लगाकर अन्य को अर्पण करके फिर उसको प्रसाद के रूप में ग्रहण करने से घर में प्रसन्नता पवित्रता शांति का वातावरण बना रहता है घर में मां लक्ष्मी तथा देवताओं का आशीर्वाद बना रहता है और निर्धनता बीमारी गरीबी सब दूर होती है इसलिए व्यक्ति को सु मधुर स्निग्ध सुरुचिपूर्ण आहार को ही ग्रहण करना चाहिए।आहार के संबंध में आयुर्वेद में हितकारी मितकारी और ऋतु के अनुसार आहार ग्रहण करने की बात कही गई है।

3.संतुलित आहार

संतुलित आहार को भी ग्रहण करके अपने जीवन को स्वास्थ्य बनाया जा सकता है जिसमें प्रत्येक दिन भोजन के साथ सलाद लेना चाहिए साथ ही साथ हरी सब्जियां का उपयोग विधि अपने भोजन में करना चाहिए जिससे रक्त की शुद्धि होती है। मौसमी फलों का सेवन करने से विटामिनों की पूर्ति होती है। भोजन ताजा ही खाना चाहिए बासी, तला हुआ, तीखा, नमकीन, दाहकर या मांसाहारी भोजन का उपयोग नहीं करना चाहिए। गर्मियों में रस से उत्पन्न होने वाले फलों सब्जियों तथा भोजन का ग्रहण करना चाहिए जाडे के दिनों में गर्म, शरीर को उष्मा प्रदान करने वाले आहार को ग्रहण करना चाहिए। साथ ही साथ व्यक्ति को अपने क्षमता के अनुसार उचित जल का पान भी करते रहना चाहिए।

4.अंकुरित आहार

अंकुरित आहार का सेवन स्वास्थ्य जीवन के संदर्भ में अंकुरित आहार का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है हमारे शरीर में आवश्यक खनिज पदार्थों की पूर्ति अंकुरित आहार के माध्यम से होती है जिसमें व्यक्ति को मूंगफली, चना, मूंग, अजवाइन इत्यादि को जल में भिगोकर अंकुरण करके उनको प्रातः काल योग व्यायाम करने के बाद खाना चाहिए जिससे शरीर में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण, विटामिंस इनका प्रतिदिन पूर्ति होती रहती है अंकुरित आहार से व्यक्ति को कमजोरी, दमा, अस्थमा ,हाई बीपी ,लो बीपी, गैस, कब्ज आदि की समस्याओं से भी निदान मिलता है इसलिए अंकुरित आहार स्वस्थ जीवन के लिए एक रामबाण के रूप में भी माना जाता है।

5.शरीर की शुद्धि

व्यक्ति को स्वस्थ जीवन जीने के साथ–साथ अपने शरीर की शुद्धि का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकिजहां गंदगी जमा हो जाती है वहीं से विजाती तत्वों के माध्यम से रोग भी उत्पन्न होने लगते हैं इसलिए व्यक्ति को समय–समय पर अपने शरीर की शुद्धि करते रहना चाहिए शरीर की शुद्धि के अंतर्गत व्यक्ति को अपने नाखून, अपनी त्वचा, अपने बालों का भी रखरखाव, देखभाल समय समय के अनुसार करते रहना चाहिए साथ ही साथ आंतरिक शुद्धि के लिए व्यक्ति को योग ग्रंथों में बताई गई शुद्धि क्रियाओं का उपयोग करके अपने आंतरिक अंगों की सफाई का भी विशेष ध्यान रखते हुए समय–समय पर आंतरिक शुद्धि का उपयोग करते रहना चाहिए। घर की सफाई तुम आसानी से कर लेते हैं अंदर की सफाई नहीं करते जिसके कारण आंतरिक जमा हुई गंदगी के कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं इसलिए व्यक्ति

धौति, वस्ति, नेति, नौली त्राटक और कपालभाति का उपयोग करके शारीरिक सफाई को विशेष रूप से कर सकते हैं।

- **धौति** के अंतर्गत हम अंत धौति, दंत धौति ,हृदय धौति और मूल शोधन का विशेष रूप से शुद्ध करते हैं। जिसमें अपने आहार नाल अमाशय, गला, दांत कान, मुख जिह्वा आदि की सफाई की जाती है।
- **वस्ति** के अंतर्गत छोटी तथा बड़ी आत और गुदा भाग की मूल रूप से सफाई की जाती है। जिससे कूर्म प्राण सक्रिय होता है। और हमारे उत्सर्जन तंत्र को अच्छे ढंग से संचालित करने का काम भी करता है। और अपान वायु की क्रूरता दूर होती है।
- **नेति** के अंतर्गत स्वसन प्रदेश तथा मस्तिष्क प्रदेश की शुद्धि की जाती है। जिससे आंखों की दृष्टि बढ़ती है। नाक, गला, कान आदि से संबंधित रोग दूर होते हैं। सिर दर्द की समस्याएं दूर होती है। बुद्धि विकास होता है। और व्यक्ति की स्मरण शक्ति बढ़ती है। तथा स्वसन से संबंधित समस्याएं भी दूर होती हैं।
- **नौलि** इस क्रिया से छोटी तथा बड़ी आंख से संबंधित विकृतियां दूर होती हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। तथा पाचन क्रिया तीव्र होती है। और जिन व्यक्तियों को भूख नहीं लगती है उनको अच्छी भूख

लगती है और इस क्रिया से वात पित्त कफ निर्दोषों में साम्यावस्था स्थापित ही होती है। इसलिए नौलि क्रिया शट क्रियाओं में सबसे श्रेष्ठ भी मानी गई है।

- **त्राटक** आंखों के विकारों को दूर करने में त्राटक क्रिया सबसे महत्वपूर्ण मानी गई है। जिसमें किसी एक बिंदु पर मन को एकाग्र भी किया जाता है। इसमें गाय के घी से दीपक जलाकर या सूर्य पर त्राटक करके अपने आंखों से संबंधित विकारों को दूर किया जा सकता है। जिसमें दूर दृष्टि दोष निकट दृष्टि दोष आंखो का दुखना आंखों से पीड़ा अंधापन सभी समस्याएं त्राटक के माध्यम से दूर होती हैं। इसके आध्यात्मिक लाभों में यह भी बताया गया है। कि त्राटक से दिव्य दृष्टि की भी प्राप्ति होती है।
- **कपालभाति** शट क्रियाओं में अंतिम क्रिया कपालभाती को माना गया है। कपालभाति का अर्थ है कि मस्तिष्क प्रदेश को स्वच्छ करना सफाई करना अर्थात हमारे विचारों की सफाई करना। जब हम कपालभाति का प्रयोग करते हैं तो हमारे मस्तिष्क प्रदेश की शुद्धि होती है। इस क्रिया से हमारे हाइपोथैलेमस की शुद्धि और हमारी विचारों की शुद्धि होती है। जिससे हमारे विचार स्वच्छ पवित्र बनते हैं जिसके माध्यम से हमारे मन, विचार ,अंतःकरण पूरी तरह से निर्मल भी हो जाता है।

6.प्राणायाम का अभ्यास

प्राणायाम का अभ्यास स्वस्थ जीवन के लिए प्राणायाम एक महत्वपूर्ण योगिक क्रिया मानी गई है। क्योंकि प्राणों की कमी से ही व्यक्ति में कमजोरी ,हताशा ,निराशा उत्पन्न होती है। प्राणायाम करने से व्यक्ति के फेफड़े व शारीरिक आंतरिक सभी अंग मजबूत होते हैं व्यक्ति में प्राण शक्ति का विस्तार होता है। उसके चेहरे पर चमक आती है और उसका जीवन दीर्घायु की ओर बढ़ता है।

7.प्रात काल भ्रमण

प्रात काल भ्रमण स्वस्थ जीवन के लिए प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म मुहूर्त में जागरण करके प्रातः काल भ्रमण करना चाहिए प्रातः काल की ठंडी ठंडी वायु को ग्रहण करना चाहिए इसे प्राकृतिक चिकित्सा में पवन स्नान के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि प्रातकाल वायु में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक होती है। वह ऑक्सीजन की मात्रा हमारे जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण गैस मानी जाती है। ऑक्सीजन हमारी प्राणवायु को कहते हैं। और हम सब प्रातः काल में ग्रहण करते हैं जिससे ऑक्सीजन का लेवल हमारे शरीर में भरता है। और हम निरंतर स्वास्थ्य की ओर बढ़ते हैं। हमारे जीवन से सभी प्रकार के रोग धीरे–धीरे दूर हो जाते हैं।

8.चाय,नशीले व मादक द्रव्यों का त्याग

चाय कॉफी तथा मादक द्रव्य व नशीले पदार्थों का त्याग करना स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि स्वास्थ्य भरी जीवन में नशीले पदार्थ, शराब ,पान, पुड़िया, तंबाकू ,चाय ,कॉफी आदि हमारे शरीर को धीरे–धीरे जहर प्रदान कर उसे रोग ग्रस्त बनाकर उसे नष्ट कर देते हैं। इसलिए स्वास्थ्य जीवन के

लिए सबसे उपयोगी है। कि व्यक्ति को सभी प्रकार के नशीले पदार्थ मादक द्रव्य का त्याग कर देना चाहिए। किसी भी प्रकार के व्यसन को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

9.तेल मालिश

शरीर स्वास्थ्य के लिए प्रातः काल धूप का सेवन करने के साथ–साथ में तेल मालिश भी करना चाहिए तेल मालिश करने से हमारे शरीर की त्वचा मुलायम स्वस्थ और निरोग बनती हैं।

10.सूर्य व धूप स्नान का सेवन

सर्दी के दिनों में धूप स्नान करना चाहिए धूप स्नान करने से हमारे अनेकों रोग दूर होते हैं बैक्टीरिया ,जीवाणु सब सूर्य प्रकाश से नष्ट हो जाते हैं। सूर्य के प्रकाश में सात रंग भी होते हैं। जिससे हमारे शरीर में सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं। और विटामिन डी भी सूर्य के प्रकाश से मिलती हैं।

लंबी गहरी सांस स्वसन क्रिया अच्छी हो तो व्यक्ति का जीवन दीर्घकालीन बनता है। इसलिए बताया गया है। कि व्यक्ति को धीरे–धीरे लंबी गहरी श्वास लेना चाहिए तथा छोड़ना चाहिए लंबी गहरी सांस लेने से हमारे अस्थमा दमा और स्वसन से संबंधित जो समस्याएं होती वह दूर होती है। हमारी थायमस ग्रंथी भी हमारी गहरे स्वसन के माध्यम से सक्रिय होती हैं।

11.उपासना, साधना, आराधना की साधना

गायत्री परिवार में आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने व्यक्ति की दिनचर्या को सात्विक और आध्यात्मिक बनाने के लिए उपासना साधना आराधना तीन साधनाएं बताए हैं व्यक्ति को अपने जीवन की शुरुआत इन्हीं साधनों के माध्यम से करनी चाहिए

- ✓ **उपासना** भगवान के पास बैठना अच्छे विचारों के पास बैठना अच्छे लोगों के पास बैठना, जब हम अच्छे लोगों को अच्छे विचारों के पास बैठते हैं तो हमारे अंदर भी वह अच्छाइयां उत्पन्न होने लगती है और हम श्रेष्ठ मार्ग की ओर बढ़ने लगते हैं।
- ✓ **साधना** अपने मन इंद्रिय अंतः करण को साथ लेना गलत विचारों को ना आने देना ,विचारों को ना आने देना हमेशा अपने विचारों को अपनी आदतों को सच्चे और अच्छे पवित्र मार्ग की ओर ले जाता ही साधना है।
- ✓ **आराधना** जिसमें हम अपने जीवन में जो भी प्राप्ति करते हैं उसका एक अंश हम समाज को दें

12.सकारात्मक सोच

सकारात्मक सोच भी हमारे जीवन को कहीं ना कहीं हमारे स्वस्थ जीवन की ओर ले जाने का भी कार्य करती हैं जब हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक होता है तो वैसे ही हमारे जीवन की क्रियाएं बनने लगती है **आचार्य श्रीराम शर्मा** जी ने कहा है कि

जो जैसा सोचता है करता है वह वैसा ही बन जाता है

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को सकारात्मक शुद्ध और पवित्र सोच और दृष्टिकोण के साथ अपने जीवन को जीना चाहिए।

13.योगाभ्यास और व्यायाम

स्वस्थ जीवन के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक से डेढ़ घंटे अपने जीवन को निरोग बनाने के लिए योगाभ्यास और व्यायाम करना चाहिए जिसमें आसन, प्राणायाम ,मुद्रा, बंद आदि का उपयोग करके अपने शरीर के अंगों को मजबूत कर सकते हैं शरीर को निरोग बना सकते हैं साथ ही साथ खेल का भी आयोजन करके हम अपने जीवन को आनंददायक बना सकते हैं मनोविज्ञान के लिए व्यक्ति को खेल, योग ,संगीत, स्वाध्याय आदि की क्रिया अपनानी चाहिए।

14.स्वाध्याय एवं सत्संग

स्वस्थ जीवन के लिए हमारे वैदिक परंपरा में स्वाध्याय और सत्संग की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है क्योंकि **रामचरितमानस में तुलसीदास** ने कहा है

बिन सत्संग विवेक न होई राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।

बिना सत्संग के व्यक्ति में विवेक नहीं हो सकता जिस व्यक्ति में विवेक बुद्धि नहीं होगी उस व्यक्ति का जीवन निश्चित रूप से अपने जीवन को अच्छे से प्रगति की ओर नहीं ले जा पाएगा। इसलिए स्वाध्याय सत्संग की महिमा बहुत ही महत्वपूर्ण बताई गई है। जो हमारे स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभकारी है।

15.सकारात्मक व्यवहार

स्वस्थ जीवन के लिए हमारा व्यवहार हमारे सामाजिक स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना गया है इसलिए हमेशा अपना व्यवहार सकारात्मक रखना चाहिए हंस मिलकर के लोगों से अच्छे से रहना चाहिए लोगों को प्यार सम्मान सहकार भरपूर देना चाहिए और उस समाज को अच्छे राह पर ले जाने का प्रयास करना चाहिए।

16.पर्याप्त नींद

जीवन के लिए पर्याप्त नींद का होना भी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि निद्रा की कमी से हमारे शरीर में थकावट बनी रहती है और हमारा शरीर जब थकावट ग्रस्त रहेगा तो निश्चित रूप से मान कर चलिए हम स्वास्थ्य नहीं हो पाएंगे। क्योंकि निद्रा हमारे मन शरीर तथा आंतरिक क्रियाओं को विश्राम पहन कर के उन्हें जीवंत बनाए रखने का प्रयास करते हैं। इसलिए निद्रा हमारे जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए व्यक्ति को जल्दी सोना और जल्दी जागने की आदत डाल कर के शयन की प्रक्रिया को अपनाना चाहिए।

रोग की अवधारणा

रोग की अवधारणा शरीर में जब किसी प्रकार का कष्ट है। तनाव तकलीफ तथा हमारे शरीर में जब स्वाभाविक रूप से काम करने की प्रक्रिया में कमी आ जाती है। हमारे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक क्षमताओं में ह्रास होने लगता है। तब निश्चित रूप से हम उसे रोग और बीमार मानने लगते हैं। स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था को रोग के नाम से भी जाना जाता है। जब हमारा खान–पान अनियमित हो जाता है गलत हो जाता है। प्रकृति के विरुद्ध हो जाता है समाज के विरुद्ध हो जाता है। शरीर के विरुद्ध हो जाता है। हमारा आहार–विहार दूषित हो जाता है। हमारा चिंतन चरित्र पूरी तरह से निष्क्रिय और विकृत हो जाता है। तब हमारे शरीर में धीरे–धीरे करके शारीरिक व मानसिक विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने लगते हैं। और यही विजातीय द्रव्य आयुर्वेद में मल के नाम से जाने जाते हैं। यही मल हमारे शरीर में विकार संचित करके शरीर को रोग ग्रस्त बना देते हैं। बड़े से बड़े रोग उत्पन्न कर देते हैं। यह शरीर में जब एकत्र होने लगते हैं तो हमारा शरीर धीरे धीरे विषाक्त होने लगता है । और हमारे शरीर में से रोग उत्पन्न हो जाते हैं और शारीरिक मानसिक क्षमता कमजोर हो जाती है। प्राण वायु में कमी आने लगती है। व्यक्ति धीरे–धीरे करके असहाय और पीड़ित हो जाता है इसे ही रोग के नाम से जाना जाता है। रोग शब्द सुनते ही व्यक्ति के मनों में हलचल उत्पन्न हो जाती है। मन में कहीं ना कहीं व्यक्ति परेशान होने लगता है। उसे अपने व्यक्तियों का डर भी सताने लगता है। लेकिन रोग से लड़ने की जरूरत नहीं है। वस्तुतः प्रकृतिक चिकित्सा में लोगों को तीव्र लोगों को हमारे मित्र के रूप में भी माना गया है। क्योंकि तीव्र लोग जब हमारे शरीर में आते हैं । तो हम निश्चित रूप से हमारे शरीर की पूरी तरह से सफाई करके छोटे–बड़े सभी प्रकार के रोगों से शरीर को मुक्त कर देते हैं। और रोगों का शरीर में आना निश्चित रूप से एक संदेश भी लेकर आते हैं। या संदेश उस व्यक्ति के लिए है कि अब संभल जाओ शरीर में इस प्रकार के आपके व्यवहार से विश उत्पन्न हो रहा है। अब नहीं संभले तो निश्चित रूप से आप मुसीबत में पड़ जाएंगे या संदेश लेकर शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग निश्चित रूप से एक चेतावनी देते हैं।

क्योंकि जब हम प्रकृति का दोहन करते हैं प्रकृति का अनुसरण नहीं करते हैं। तब प्रकृति हमारे शरीर में दंड के रूप में रोगों को उत्पन्न कर व्यक्ति को सजग रहने की चेतावनी भी देती है इसलिए व्यक्ति को हमेशा रोगों से डरने की जरूरत नहीं है होती उन्हें हमेशा डटकर सामना करने तथा रोगों को स्वागत कर उन्हें सम्मान पूर्वक उन्हें विदा करने का साहस रखते हुए व्यक्ति को जीवन जीना चाहिए ।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने रोग प्रकृति की वह प्रक्रिया है जिसमें शरीर की सफाई होती है रोग हमारा मित्र है और हमें यह बताता है कि अपने शरीर के साथ बहुत अन्याय कर रहे हो उस अन्याय से आप दूर रहिए। या प्रकृति का संकेत मात्र है जो आपको बताता है कि आपको जब अपनी गलतियों से सावधान हो जाना चाहिए। शरीर में विषाक्त पदार्थ प्रकृतिक जीवन शैली के माध्यम से प्राकृतिक साधनों के माध्यम से दूर कर देना चाहिए।

रोग बिना कारण के नहीं उत्पन्न होते क्योंकि रोग तभी उत्पन्न होते हैं जब शारीरिक मानसिक और सामाजिक स्थितियां हमारे शरीर के विपरीत हो जाती हैं तब रोग उत्पन्न होते हैं । जब रोग उत्पन्न होते हैं । तब सर्वप्रथम या मालूम कीजिए शरीर में किन–किन कारणों से रोग उत्पन्न हो रहे हैं, क्यों आप बीमार पड़े, किस कारण आप बीमार पड़े, यह रोग आया तो क्यों आया, किसकी कमी से आया कौन से ऐसे नियम के हमने अवहेलना कर दी इसके कारण या रोग उत्पन्न हुआ है। रोग का वास्तविक कारण हम समझ लेते हैं । तो उसकी चिकित्सा बहुत ही आसान हो जाती है। क्योंकि रोग के कारण कीटाणु नहीं विजाती द्रव्य है इसलिए विजाति द्रव्य को समझना आसान हो जाता है । क्योंकि विजाति द्रव्य हमारे व्यवहार हमारे खान–पान हमारी आदतों से ही उत्पन्न होते हैं।

रोग प्राणी के लिए एक आस्वाभाविक शारीरिक, मानसिक , सामाजिक अवस्था है। जब वह अपने जीवन में असावधानी से या गलत तरीके से प्रकृति के विरुद्ध कार्य करने लगता है। प्रकृति के विरुद्ध जीवन जीने लगता है। तो उसके शरीर में खानपान से रहन–सहन से उसके दोष, विचारों से शरीर में विजाती द्रव्यों की मात्रा अधिक से अधिक बढ़ने लगती है । और बढ़ कर के वह शरीर में तरह–तरह के विष उत्पन्न करती है और विष उत्पन्न होने से व्यक्ति के शरीर में तरह तरह के रोग पनपने लगते हैं, और वातावरण में पाए जाने वाले जितने भी हानिकारक विषाणु होते हैं उन पर भी नियंत्रण नहीं कर पाता उनके आक्रमण होने से शरीर का पोषण और शरीर की सफाई नहीं रह जाती है । जिसके कारण प्राणी के शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास होने लगता है । जीवनी शक्ति की कमी आने लगती है और प्राणी में तरह तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं , और यह रोग मनुष्य के जीवन में निरंतर बने रहने के कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अतः इन रोगों को यदि ठीक करना है तो प्रकृति के शरण में जाकर प्रकृतिक भोजन प्रकृतिक रहन–सहन प्राकृतिक जीवन चर्या अपना कर इन रोगों को सदा प्राणी दूर कर सकता है , और अपने जीवन को निरोग और प्रसन्नता पूर्व रख सकता है जिससे उसे दीर्घ जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

रोग का अर्थ

मानव की प्रगति के साथ–साथ उसके विकास प्रक्रिया के साथ–साथ शारीरिक विकास , मानसिक विकास, सामाजिक विकास होने पर व्यक्ति के जीवन में जब विभिन्न प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न होने लगी। तब प्रकृति और व्यक्ति विकाश की प्रकृति के साथ रोग शब्द भी बदलता गया। प्रारंभ में रोग का कारण देवी शक्तियों प्राकृतिक आपदाओं को माना जाता था । जब देवी शक्तियां किन्ही कारणों से कुपित हो जाती थी किसी प्रकार से व्यक्तियों से रुष्ट हो जाती थी, तो वह रोगों का प्रादुर्भाव करती थी। लेकिन यह ज्ञान की वृद्धि तथा औषधी शास्त्र के विशेष उपकरण के साथ इसके प्रत्येक पहलू में अंतर पाया गया। प्रकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद एलोपैथी, होम्योपैथी,, यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में रोग का कारण पृथक पृथक माना

जाता है। विभिन्न भारतीय परंपरा में भी बताया है यह शरीर रोगों का मंदिर के समान है। वर्तमान समय में अनेकों प्रकार की बीमारियां बढ़ती चली जा रही है। प्राचीन समय में मनुष्य प्राकृतिक जीवन जीने से बहुत कम बीमार होता था उसे कभी सर्दी, जुखाम, खांसी, बुखार जैसी सामान्य बीमारियां होती थी परंतु वर्तमान समय में गलत खान पान, रहन सहन, होने से दिनोंदिन अधिक से अधिक लाइलाज बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। आज की वर्तमान पीढ़ी भौतिकवादी अधिक से अधिक अप्राकृतिक जीवन को जीने के कारण, दूषित वातावरण में रहने के कारण, गलत आहार–विहार करने के कारण, प्रत्येक जनमानस छोटे बड़े रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है प्राचीन समय में मनुष्य की आयु 100 वर्ष तक मानी गई है ऋषि मुनि हमारे 100 वर्ष तक जीते थे जिसे

जीवेम शरद शतम के नाम से बताया किंतु वर्तमान समय में गलत खान–पान गलत रहन–सहन होने के कारण शरीर में जब विजातीय द्रव्य जमा हो जाते हैं। तो हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित होने लगा। जो शरीर में तरह–तरह के दर्द पीड़ा उत्पन्न होने लगे जिसे हम रोग कहते हैं।

रोग के संदर्भ में कुछ जानने योग्य बातें

रोग क्या है आइए सबसे पहले हम रोग के बारे में जानकारी तो ले ले क्योंकि रोग का नाम आते ही हमारे अंदर एक भय और डर उत्पन्न हो जाता है। रोग उसके कारण क्या है कैसे बनता है। लोग आइए रोक के संदर्भ में हम कुछ बान जानकारी प्राप्त करते हैं। जब व्यक्ति अपने अस्वाभाविक स्थिति में जब प्रकृति का दोहन करता है। तो हम उसे रोग की अवस्था मानते हैं जब शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा उत्पन्न होती है तरह–तरह के दर्द ,कमजोरियां उत्पन्न होती हैं। हमारी मानसिक शक्ति का ह्रास होता है। शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है । तब हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर हो जाती है। तो उसे हम रोग के नाम से जानते हैं जब शरीर में रोग उत्पन्न होता है तो निश्चित रूप से हम शरीर के द्वारा कोई काम नहीं कर पाते हमारे शरीर की गंदगी और स्वास के द्वारा शरीर के अन्य अंगों तक चली जाती है। यदि कभी साधारण अंगों और मार्गों से शरीर का मल पदार्थ हमारी शरीर से नहीं निकल पाता तो प्रकृति मजबूर होकर उसे हमारे शरीर से निकालने के लिए अपने तरीके को अपनाती है । वह तरीका शरीर में रोगों के रूप में उत्पन्न होता है यदि मान लीजिए जिस कमरे में गंदगी जमा हो जाती है । मकड़ी जाले लगा लेती है उनकी सफाई ना की जाए तो धूल पढ़ने के कारण वहां पर अधिक से अधिक गंदगी जमा हो जाती है । और वही उनको धीरे–धीरे कमजोर बना देती है उसी तरह जब हमारे शरीर में विषाक्त पदार्थ जमा होने लगते हैं। और जमा होने के कारण निकास नहीं हो पाता तो वही हमारे शरीर में रोग का कारण बन जाते हैं । रोगों के माध्यम से उस गंदगी को साफ करने के लिए रोगों को उत्पन्न करती है रोग किसी प्रकार से कोई डरावनी स्थिति नहीं है एक शरीर शुद्धि के लिए मनुष्य को चेतावनी प्रकृति के द्वारा दी जाती है । प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में रोग के कारण और लक्षण 1 माना जाता है । रोग शरीर में संक्रमण का दूसरा नाम है कि मनुष्य में विषाक्त पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में भर गए हैं इस अवस्था में प्रकृति संदेश देती है कि मनुष्य

को जीवन जीने के लिए इनको दूर करना अति आवश्यक है। इनका निष्कासन प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से किया जाए।

रोग की परिभाषाएं

रोग के संबंध में अनेकों विद्वानों ने और चिकित्सकों ने अपने अपने अनुसार अनेकों परिभाषाएं दी जो भारतीय चिकित्सक तथा विदेशी चिकित्सकों के अनुसार निम्नलिखित हैं।

- **बेवस्टर शब्दकोष के अनुसार–** रोग एक असुविधा, एक दशा है , जिसमें शारीरिक स्वास्थ्य गंभीर रूप से प्रभावित होता है, विघटित होता है, या व्यतिक्रमित होता है, स्वास्थ्य की दशा से गमन, मानव शरीर में बदलाव जिससे महत्वपूर्ण कार्य प्रकाशित होते हैं।
- **ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार–** रोग शरीर के या शरीर के किसी अंग की वह दशा है जिसमें इसके कार्य बाधित होते हैं या व्यतिक्रमित होते हैं।
- **डॉ. हेनरी लिंडलार, एम.डी. के अनुसार–** रोग उन तत्वों एवं शक्तियों का एक असामान्य या असमन्वित कंपन है जो मानव अस्तित्व को गठित करने वाले भौतिक, मानसिक एवं नैतिक में से किसी एक या अधिक धरातलों पर व्यक्ति से सम्बद्ध प्रकृति के विनाशकारी सिद्धान्त के अनुरूप है।
- **विलियम हॉवर्ड, एम.डी. के अनुसार–** प्रत्येक रोग शरीर में संचित विष को सहन की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम है।"
- **डॉ. जेस्मीमसर गेहमन के अनुसार–** "स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था को रोग कहते हैं।" प्रो० जीसेफ स्मिथ, एम.डी. के अनुसार– दवाओं से रोग अच्छा नहीं होता, केवल दबता है।
- रोग हमेशा प्रकृति अच्छा करती है।"
- **लुई कारनारो के अनुसार–** "जब शरीर अस्वस्थ होता है, तब उसे आराम चाहिए न कि भोजन और दवाईयाँ ।"
- **विलियम ओसलर के अनुसार–** "प्रकृति जिसे आरोग्य नहीं कर सकती उसे कोई भी आरोग्य नहीं कर सकता।"
- **हिपोक्रेटस के अनुसार–** "प्रकृति रोग मिटाती है. डॉक्टर नहीं।"
- **'लुई कूने के अनुसार–** शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य के जमा होने का ही नाम रोग है।"
- **डॉ. टॉमस सिडेनहम के अनुसार–** "प्रत्येक रोग रोगी के शरीर में स्वास्थ्य को वापस लाने की प्राकृतिक चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।"

- **पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार–** "रोग प्रकृति की वह प्रक्रिया है, जिससे शरीर की सफाई होती है। शरीर से मल और रोगों के हटाने के प्रयत्न को रोग कहते हैं।"
- होसिया बैलूकृ "बीमारी प्रकृति के साथ किये हुए अत्याचार का परिणाम है।

रोग के कारण

विभिन्न शास्त्रों चिकित्सकों तथा विद्वानों के मत के अनुसार रोग के कारण अलग–अलग बताए गए हैं किंतु प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्यों को माना गया है। विजातीय द्रव्य जो हमारे शरीर में खानपान रहन–सहन के पश्चात कुछ हमारे शरीर में विसंगतियां उत्पन्न होती हैं उन्हीं का दुष्परिणाम ही रोग हैं क्योंकि प्रत्येक कार्य के पीछे कुछ ना कुछ इस कारण अवश्य होता है। यदि रोग हुआ है तो कुछ तो कारण रहा होगा रोग होने के पीछे भी कोई ना कारण अवश्य ही रहता है ।ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रोग का कारण ग्रह नक्षत्रों को माना गया है ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव से व्यक्ति मानसिक परिस्थितियां बिगड़ जाती हैं तो रोग हो जाता है। तांत्रिक दृष्टि से देखा जाए तो भूत प्रेत मानसिक अवसाद जो होते हैं उन्हीं को रोग कहा जाता है मनोवैज्ञानिक अवस्था है। आयुर्वेद में रोग का कारण त्रिदोष की असामव्यवस्था, कुपित होने को माना है आयुर्वेद में कहा है कि सब रोगों का एक ही कारण एक ही दोष है जो है विजातीय द्रव्य विषाक्त पदार्थ ऋषि चरक ने कहा है कि सभी रोगों का कारण कुपित सड़ा हुआ मल शरीर में एकत्र हो जाता है । उसी से त्रिदोष कुपित होते हैं और यही अवस्था रोग का कारण है । जो आहार बिहार के गलत सेवन से उत्पन्न होता है जिसे आधुनिक चिकित्सा कहते हैं अधिकांश रोगों का कारण जीवाणु और विषाणु को मानते हैं ।

आयुर्वेद में कहा गया है कि जब व्यक्ति की जठराग्नि मंद होती है तब शरीर में आम रस रह जाता है। उसे ही शरीर में दोष के नाम से जाना जाता है। जिसे भी विजातिय द्रव्य ही कहा जाता है। वही सब रोगों का मूल कारण है। आयुर्वेद में ही अधिक भोजन करने से भी विभिन्न प्रकार के रोग की उत्पति होने की बात भी कही गई है। **अतिभोजनं रोग मूलं** अधिक जो व्यक्ति भोजन करते हैं , उनके शरीर में भी रोग का मूल कारण अतिधिक भोजन को भी माना गया है। परंतु प्राकृतिक चिकित्साकर्मियों का मत है इन विद्वानों से भिन्न है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्य को माना हैं। विजातीय द्रव्य शरीर में काई रास्तों से पहुंचते हैं। तथा विचारों के माध्यम से भी विजातीय द्रव्य हमारे शरीर में प्रवेश कर हमारे शरीर को रोगरस्थ बना देते हैं । पर्यावरण प्रदुषण के करण फेफड़ों में पर्याप्त अवश्यक्ता के अनुसार वायु ना मिलने के कारण विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं। इस प्रकार अश्वाभाविक भोजन से शरीर में पाचन शक्ति कामजोर होती है जब व्यक्ती का खान पान की गड़बड़ियां होती हैं, अवश्यक्ता से अधिक खाना खा लेते हैं,

या अधिक चटपटा मिर्च मसाला खाते हैं , दाहकारक भोजन कर लेते हैं ,तब हमारे शरीर में अत्यधिक विजातीय द्रव्य उत्पादन होता है जिसके कारण शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

योग वशिष्ठ में रोग के प्रमुख दो कारण बताए गए हैं। आधि और व्याधि आधि जो हमारे शारीरिक देश से अलग होते हैं। यह मानसिक रोगों की श्रेणी में आते हैं। जिस अवस्था में व्यक्ति के अंदर बेचैनियां, घबराहट जडता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, द्वेष, ईर्ष्या ,जलन जैसी विचारधारा उत्पन्न होती हैं। तब मानसिक स्थिति गड़बड़ा जाती है। इसे आधि के नाम से या मानसिक रोग के नाम से जाना जाता है।

व्याधि व्याधि शारीरिक रोगों को कहा गया है। जिस अवस्था में शरीर के बाह्य व आंतरिक अंगों में बीमारियां उत्पन्न होती है, रोग उत्पन्न होते हैं । उनकी कार्य करने की क्षमता में कमी आती है। तो उसे व्याधि कहा गया है।

भारतीय संस्कृति में भारतीय परंपरा में रोग कई कारण बताए गए हैं। जिसमें चित्त की वृत्तियों को रोग का दुख का मूल कारण बताया गया है।

महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों को ही रोग का मूल कारण माना है। जब व्यक्ति की मनोवृति या व्यवहार के कारण दुषित आहार विहार के कारण दुषित विचार के कारण जब काम, क्रोध, लोभ, मोह इन प्रकार के मानसिक तनाव चिंताएं उत्पन्न होती है तब व्यक्ति रोगों से ग्रसित हो जाता है। तथा जब व्यक्ति ब्रह्मचारी संयम, सेवा, सहिष्णुता ,परिश्रम ,व्यायाम, उंचित निद्रा का पालन नहीं कर पाता है तब उसके जीवन में रोग उत्पन्न होते हैं।

अन्य रोग के कारण जब व्यक्ति अप्रकृतिक तरीके से अपने जीवन शैली अपना रहन–सहन अपना खानपान अपना विचार व्यवहार बदलाब करता है तब उसके जीवन में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। डॉक्टर लिस्ट एक स्थान पर लिखा है बहुतों की धारणा है, कि रोग और अकाल मृत्यु भगवान की दया और प्रेम के परिणाम है। लेकिन ऐसी धारणा निश्चित रूप से गलत है क्योंकि व्यक्ति का जीवन उसके व्यवहार उसके आचार उसके रहन–सहन पर ही निर्भर करता है। क्योंकि जो सांसारिक दुख रोग हैं उनका मुख्य कारण हम लोग प्रकृति के नियमों का दोहन जो किया है उसी का परिणाम है।

1.**आहार से संबंधित बुरी आदतें** वर्तमान समय में आहार से संबंधित लोगों में बहुत बुरी आदतें बढ़ती जा रही हैं। घर का बना हुआ प्राकृतिक दाल, चावल, सब्जी, रोटी, सलाद इन को छोड़कर पिज़्ज़ा, बर्गर,समोसे, कचोरी, सैंडविच न जाने तरह–तरह के अप्राकृतिक भोजन खाना प्रारंभ कर दिया और वह रोगों से ग्रसित होता चला गया।

2. **आलस्य** रोगों में सबसे बड़ा एक मूल कारण आलसी को भी माना गया है। क्योंकि जब व्यक्ति आलस्य करता है, तब वह शारीरिक मानसिक रूप से पूरी तरह से असहाय हो जाता है। और उसके कार्य करने की क्षमता में ह्रास आ जाता है जिससे उसके अंग प्रत्यंग काम करना धीरे–धीरे बंद कर देते हैं, और वहीं से

रोग उत्पन्न होने लगते हैं। प्रकृति के पंच तत्वों का कम उपयोग करना वर्तमान समय में व्यक्ति अप्रकृतिक जीवन जीने के कारण प्रकृति से दूर होता चला गया प्रकृति से मिलने वाले अनुदानों को भुलाता चला गया और एसी , कूलर , फ्रिज में जमा किए हुए भोजन को ग्रहण करने लगा जिसके कारण भी रोग उत्पन्न होने लगे ।

3.अनियमित भोग विलास अनियमित भोग विलास इंद्रियशक्ति का दुरुपयोग करने के कारण भी व्यक्ति के अंदर शारीरिक व मानसिक विकृतियां उत्पन्न होने लगी तरह–तरह के खानपान नशा, दारु शराब करने के कारण भोग विलास इच्छाशक्ति अधिक से अधिक बढ़ती गई। जिसके कारण व्यक्ति उस परमपिता परमात्मा को भुला दिया और अपने राक्षसी प्रवृत्ति के कारण गंदी प्रवृत्ति के कारण कहीं ना कहीं भोग विलास भरी दुनिया को अधिक से अधिक जीने के कारणवष होता चला गया। नकारात्मक विचार धारणा भी मानसिक विचार और नकारात्मक चिंतन जैसे ईर्ष्या ,द्वेष ,क्रोध ,लोभ, मोह जैसी प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं उनके कारण विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगे।

4. विजातीय द्रव्य रोग का दूसरा प्रमुख कारण जब शरीर की सही तरीके से आंतरिक सुद्धि नहीं हो पाती तब शरीर में खाए गए पदार्थों से उत्पन्न मल पदार्थ का निष्कासन शरीर से सही से नहीं हो पाता तथा शरीर की गतिविधियां सही से संचालित नहीं हो पाती शरीर योग व्यायाम को प्राप्त नहीं होता। तब हमारे शरीर में मल जमा होने लगते हैं। और उन्हीं के कारण शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्यों के सिद्धांत के नाम से भी जाना गया है।

5.जीवनी शक्ति का ह्रास

जीवनी शक्ति वह शक्ति है जो शरीर के रोगों से लड़ती है। शरीर को पोषण करती है शरीर को ऊर्जा प्रदान करती है । तथा शरीर में उत्पन्न होने वाली कमी कमजोरियों को दूर करती है। जब गलत आदतों गलत खान–पान गलत रहन–सहन गलत विचारधारा व्यक्ति के जीवन में उत्पन्न होती है। तथा उसमें स्वाध्याय सत्संग सेवा की कमी आती है। तो उसके जीवन में जीवनी शक्ति की कमी उत्पन्न होने लगती है और जीवनी शक्ति की कमी से रोगों की उत्पत्ति होने लगती है। ये रोगों का तीसरा प्रमुख कारण भी माना गया है और दुर्लभ व्यक्तियों में प्राय रोग उत्पन्न होते देखे गए हैं। क्योंकि दुबल व्यक्ति के जीवन में जीवनी शक्ति की कमी होती है शक्ति शरीर में फोड़े फुंसी अधिक से अधिक उत्पन्न होते हैं ।और वही रोग का मूल कारण हैं। जिनसे उसका सौंदर्य उसका आकर्षण भी नष्ट हो जाता है भूख मर जाती है

जीवनी शक्ति की कमी से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं

6.शक्ति से अधिक शारीरिक कार्य करना

7.रात में अधिक जागरण करना और रात्रि में देर से खाना खाना।

चिंता और मानसिक व्याधियों प्राकृतिक औषधियों का सेवन करना।

संस्कारों की कमी भारतीय संस्कृति में संस्कार परंपरा को सुखी संपन्न और अच्छे जीवन के लिए एक आधार भी माना गया था परंतु भौतिकवादी जीवन जीने के कारण विदेशी परंपरा का अनुसरण करने के कारण आज भारतीय संस्कृति में संस्कारों की कमी देखने को मिलती है। जिस देश में राम, भरत, शत्रुघ्न,लक्ष्मण जैसे भाई हुआ करते थे, पांच पांडव जैसे भाई हुआ करते थे। उनका जीवन उनका मान मर्यादा मां सीता की पवित्रता अखंडता भगवान रामचंद्र की मर्यादा आज भी दुनिया में अमर है। यह सब संस्कारों पर निर्भर करती थी अंत समय में लोगों के जीवन में संस्कारों की कमी के कारण विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगे और उनका व्यवहार उनका आचरण सब पूरी तरह से बदलता चला गया तो कहीं ना कहीं वंश परंपरा में संस्कारों की कमी भी एक रोगों का मूल कारण भी माना गया है।

8. **आकस्मिक दुर्घटना** जब दुर्घटना घट जाती हैं अकस्मात चोट लग जाती है मोटर गाड़ी या दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण पेड़ पहाड़ पर्वत का ऊंचाई से गिरने के कारण व्यक्ति घायल हो जाता है तो रोगों की उत्पत्ति होती है क्योंकि कहीं ना कहीं एक रोग का कारण भी माना जाता है।

रोगों के प्रकार स्वास्थ्य की दृष्टि से रोग के तीन प्रकार माने गए हैं शारीरिक मानसिक और सामाजिक साथ ही साथ जब व्यक्ति कहीं ना कहीं अध्यात्म आदि दुनिया को जीता है मरने के बाद ही संसार से उसे उस परमात्मा की सत्ता में विलीन होना है वह अध्यात्म का मार्ग अछूता रह जाता है तो कहीं ना कहीं उसकी जब कमी होती है तो मनुष्य को इस संसार में भटक कर रहना पड़ता है इसलिए प्रकारों में रोग के चार प्रकार बताए गए हैं शारीरिक मानसिक, सामाजिक ,आध्यत्मिक।

शारीरिक रोग उसे कहा जाता है जिसमें व्यक्ति की जीवनी शक्ति का ह्रास होता है। उसमें कफ की प्रवृति बढ़ जाती है वात पित्त कफ तीनों प्रकुपित हो जाते हैं जठराग्नि मंद हो जाती है । रक्त का संचार नहीं होता है । स्वसन क्रिया की विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। उत्सर्जन तंत्र, पाचन तंत्र ,स्वतंत्र और तंत्रिका तंत्र में विकृतियां उत्पन्न होती हैं, तो उसे शारीरिक रोग कहा जाता है। यह रोग मुख्य रूप से गलत आहार खान–पान के कारण होता है। जिसमें ज्वर ,हैजा ,दस्त ,चेचक, दमा, कैंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं। साथ ही साथ चोट आदि दुर्घटना होने पर भिन्न प्रकार की शारीरिक पीड़ा होती हैं यह शारीरिक रोग की श्रेणी में आते हैं।

यह शरीर में तीव्र और जीण रोग के रूप में उत्पन्न होते हैं।

- ✓ **1.तीव्र रोग** वे रोग होते हैं जो तेजी से आते हैं उन्हें तीव्र रोग कहते हैं जैसे हैजा,चक्कर, जुखाम आने के पश्चात एक–दो दिन में ही ठीक हो जाते हैं यह बच्चों युवाओं में अधिक से अधिक उत्पन्न होते हैं जो जीवनी शक्ति के प्रबल होते ही विजातीय द्रव्यों का निष्कासन कर जल्दी ही ठीक हो जाते हैं।
- ✓ **2. जीण रोग** वे रोग होते हैं जो शरीर में मल उदय तथा विजातीय द्रव्यों के धीरे धीरे जमा होने के कारण दीर्घकाल तक बने रहते हैं। जिनके उपचार में समय तो लगता है लेकिन उनकी भी

धीरे–धीरे छुट्टी कर दी जाती है । जिन लोगों को लंबे समय तक शरीर में मूल पदार्थ विषाक्त पदार्थों के जमा होने के कारण उत्पन्न होते हैं। उनके उपचार में समय भी लगता है।

2.6 विजातीय द्रव्य का सिद्धान्त

प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्य को मुख्य रूप से सभी रोगों का मूल कारण माना गया है। जब शरीर में विजातीय द्रव्य आवश्यकता से अधिक बढ़ जाते हैं। तब शरीर में पीढ़ा होने लगते हैं। तो शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। यह विजातीय द्रव्य हमारे आहार–विहार खान–पान रहन–सहन अप्राकृतिक जीवन चर्या से उत्पन्न होते हैं। अप्रकृति खानपान व जीवनचर्या के परिणाम स्वरूप हमारे शरीर में विजातीय द्रव्य बढ़ जाते हैं उनका निष्कासन हमारे शरीर के मल मार्गो के द्वारा स्वता नहीं निकल पाते और वह शरीर में इकट्ठा होकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने लगते हैं । इन मल पदार्थों को यह विजातीय द्रव्य को आयुर्वेद में त्रिदोष के नाम से भी जाना गया है। क्योंकि यही मल पदार्थ हमारे शरीर में धातुओं को भी दूषित करते हैं। दूषित पदार्थ मल, मूत्र, पसीना, दूषित वायु, सांस रक्त, मांस उन सभी को प्रभावित करते हैं। शरीर में रोग उत्पन्न होकर शरीर को रोग ग्रस्त बना लेते हैं। मन संचय या विजातीय द्रव्य जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाते हैं। तब यह अपने निष्कासन का कोई ना कोई रूप धारण करके शरीर में उत्पन्न होते हैं। जिसे हम रोग के नाम से जानते हैं। शरीर में यह मल पदार्थ विजातीय द्रव्य 4 मार्गो से शरीर से बाहर निकलते हैं। दूषित वायु के माध्यम से, मूत्र मार्ग से तरल रूप से , त्वचा मार्ग से तरल पसीने के रूप में तथा मल भाग से ठोस मल पदार्थ के रूप में शरीर से बाहर निकलते हैं । गुर्दे, फेफड़े ,आंखों से भी विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलते हैं । हम जानते हैं कि हमारा शरीर विभिन्न निर्मित छोटी–छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना है । प्रत्येक कोशिका को जीवित रखने के लिए बाहर से भोजन की आवश्यकता अवश्य रूप से होती है। उस भोजन से ही हमें शरीर में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिंस, खनिज लवण सभी प्रकार के पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। तभी हमारा शरीर जीवित रहता है । और सभी अच्छे से काम करते हैं । इसलिए प्रत्येक को जीवित रखने के लिए भोजन अति आवश्यक है । भोजन को ग्रहण करने के पश्चात वह रस में परिवर्तित हो जाता है। उसके बाद वह सप्त धातुओं में परिवर्तित होकर शरीर को बलिष्ठ बनाता है। पोषण के पश्चात शरीर में अपशिष्ट पदार्थो बनते हैं । उन्ही पदार्थों से शरीर के विभिन्न भागों में जो जमा कचरा के रूप में मल होता है वह धीरे–धीरे शरीर को भी साफ करने लगता है। वही विजातीय द्रव्य के रूप में उत्पन्न होकर रोगों को उत्पन्न करता है। ऐसे विजातीय द्रव्य ठोस, तरल ,गैस के माध्यम से शरीर से बाहर निकलते हैं।

भोजन के साथ साथ शरीर में ऑक्सीजन प्राण वायु की भी जरूरत होती है । क्योंकि प्राणवायु के माध्यम से ही व्यक्ति को जीवन की प्राप्ति होती है । शरीर को वायु के माध्यम से ऑक्सीजन की प्राप्त होती है।

तथा शरीर से विभिन्न प्रकार से पाचन के पश्चात कार्बन डाइऑक्साइड उत्पन्न होती है । उसका निकलना अति आवश्यक होता है। इसी प्रकार यह भी सत्य है कि कोशिका स्वयं जीवन लीला समाप्त करते हैं। अतः विषैले तत्व को भी निकालना अति आवश्यक है। सफाई करने वाले अंग अवयवों को हमेशा समय समय पर शुद्धि क्रिया के द्वारा शुद्ध करते रहना चाहिए।

अनुपयुक्त जीवन शैली के द्वारा विजातीय पदार्थ शरीर में संचय होने लगते हैं और सामान्य कार्य में अवरोध उत्पन्न करके शरीर को रोगग्रस्त बना देते हैं। शरीर में भी विजातीय पदार्थों से रोगों का प्रारंभ होता है। यही रोग कहीं ना कहीं उनको पीढ़ा पराभव की तरफ ले जाने का कार्य करते हैं । ऐसे में विजातीय द्रव्यों का निष्कासन अति आवश्यक है । प्राकृतिक चिकित्सा में विजातिय द्रव्य को निकालने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया गया हैं। प्राक्रतिक चिकित्सा के माध्यम से मल पदार्थों को निकाला जाता है ।यहां विजातीय द्रव्य पेट में एकत्र होते हैं। इसका जमाव सिर तरफ जमा होकर शुरू होकर विकार दूर तक बढ़ने लगता है । जैसे जैसे सिर हाथ पैरों की ओर बढ़ते हैं। तब इनकी प्रक्रिया धीरे–धीरे कम हो जाती है । शरीर के ऊपरी भाग की ओर जाने लगता है । इस प्रकार अपना मार्ग गर्दन के भाग की ओर ले जाता है । पहले यह भाग बड़ा होता है। और फिर आगे चलकर या पिंड के रूप में सूजन अंग के रूप में अंगो को महसूस होने लगते हैं। अनुभव होने लगता है। त्वचा का रंग बदलने लगता है शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न प्रकार की पीड़ाएं भी उत्पन्न होने लगती है। जलन उत्पन्न होने लगती है। एक प्रकार से शरीर में अपरिवर्तनीय बदलाव होने लगते हैं। जो कहीं ना कहीं भी विजातीय द्रव्यों के माध्यम से होते हैं। विजातीय पदार्थ शरीर में धीरे–धीरे संचित होता है। और शरीर में बदलाव भी धीरे–धीरे होता है। जिसके कारण रोग का प्रारंभ में यह स्पष्ट रूप से परिचित नहीं होता शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। जब वह अनुभव करने लगता है। कि उसे भूख में कमी आने लगी है । थकावट आने लगी है। उसे कमजोरी महसूस होता है ।उसेमानसिक अशांति है। निश्चित रूप से आ जाता है । कि कहीं ना कहीं रोग उत्पन्न हो रहे हैं

इस से यह स्पष्ट होता है कि शरीर में रोगों का मूल कारण दोष संचय है। जब शरीर में विजातीय पदार्थ शरीर में एकत्र हो जाते हैं । तब उसका निष्कासन अच्छे से नहीं हो पाता है । और शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग पनपने लगते हैं । इस स्थिति में भी विजातीय द्रव्यों का शरीर से निकलना अति आवश्यक है। इन विजातीय द्रव्यों का निष्कासन शरीर से मल निष्कासन यंत्रों के द्वारा बाहर नहीं निकल पाता । तब उस विजातीय द्रव्य को निकालने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा या रोगी को एकत्र एवं प्राकृतिक जीवन यापन करके उन दोषों को शरीर से निकालना चाहिए। जिसके लिए उपवास, युक्त आहार विहार , प्राकृतिक जीवन शैली , मिट्टी चिकित्सा, तेल , मालिश , एनिमा तथा योग की विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को अपनाकर शरीर के मल को पूरी तरह शरीर से निकालकर शरीर को रोगों से मुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार शरीर में विजातीय द्रव्य की अनुपस्थिति रहने पर ही शरीर स्वस्थ रहता है। विजातीय द्रव्य का सिद्धांत हमें इस बात को स्पष्ट करता है कि हमें शरीर में विजातीय द्रव्य को संचित नहीं होने देना चाहिए।

उसको हमेशा समय–समय पर शरीर शुद्धि, योगाभ्यास, व्यायाम, खेल आदि के माध्यम से निकालते रहना चाहिए। यह केवल प्राकृतिक जीवन यापन से ही संभव हो सकता है। क्योंकि प्रकृति जीवनशैली को हम अपना कर ही स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं । आप्रकृतिक जीवन हमें रोगी तरफ रह जाती है जबकि प्राकृतिक जीवन हमें जीवनी शक्ति को बढ़ाकर हमको ने जीवन की तरफ ले जाती है। जिससे हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती हैं और हम दीर्घायु प्राप्त होते हैं।

विजातीय द्रव्य का अर्थ ,शरीर में जब विजातीय द्रव्य आवश्यकता से अधिक संचय होने की स्थिति बनी रहती है। तब उसे भी विजातीय द्रव्य कहा जाता है। विजातीय द्रव्य जैसा कि नाम से ही पता चलता है। जो शरीर की स्थिति उसकी जाति का ना हो अर्थात जो भी जाती है। जो शरीर को स्वस्थ रखने में उन्हें पोषण प्रदान करने में जो शरीर का रक्त मांस को दूषित करके शरीर का अंग का निर्माण नहीं करते हैं। उसे भी विजातीय द्रव्य कहा जाता है। जो शरीर को पोषण नहीं दे सकते जो शरीर को समय–समय पर नुकसान पहुंचाने का एक कारण भी बनते हैं। उन्हीं दोषों को भी विजातीय द्रव्य कहा जाता है। आयुर्वेद में भी विजातीय द्रव्य को त्रिदोष के नाम से भी जाना गया है। जो धातुओं को दूषित करते हैं कई नाम हैं। जैसे रोग, मल , संचित द्रव्य, विशद पदार्थ, दूषित पदार्थ शरीर में उत्पन्न जहर, विकृत आदि आयुर्वेद में भी द्रव्य को दोष कहते हैं इस दोषों को ही रोग का कारण माना गया है।

- भाग्य भट्ट के अनुसार

  दोष एवहि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् । – वाग्भट्ट

- महर्षि चरक के अनुसार

  सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।।

अर्थात सभी रोग का कारण कुपित सड़ा हुआ मल और दोष ही है जब शरीर में दोषों का प्रकोप बढ़ जाता है ,रोग उत्पन्न होते हैं इसका मुख्य कारण अति आहार–विहार गलत खानपान व अप्राकृतिक जीवन शैली ही है।

प्राणी के शरीर में जो अनावश्यक चीजें जैसे मल ,पसीना, कफ, दूषित सांस, दूषित रक्त ,दूषित मास, दूषित वायु उत्पन्न होती है। जो शरीर को विषाक्त व दूषित करते हैं । शरीर का विनाश करते हैं । शरीर के लिए अनुपयोगी माने गए हैं। उसे ही दो दोष कहा गया है । विजातीय द्रव्य के संदर्भ में

लुई कुने ने कहा है कि विजातीय द्रव्य बिल्कुल बेकार चीज़ है । और शरीर को उसकी कोई आवश्यकता नहीं । यह शरीर को रोग ग्रस्त करता है। शरीर को हानि पहुंचाता है । इसका शरीर से निष्कासन अति आवश्यक है। जाति धर्म के प्रभाव से व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

शरीर में जब भी विजातीय द्रव्य बने रहते हैं। तब शरीर बहुत ही बोझ कारक प्रतीत होता है। जैसे जैसे शरीर से विजातीय द्रव्य निकलने लगते हैं। दूर होने लगते हैं। वैसे वैसे शरीर में बहुत ही शांति महसूस

होती है। व्यक्ति के मन में प्रसन्नता का भाव प्रखरता विचारों में शुद्धता विजातीय द्रव्यों के निष्कासन के पश्चात अधिक शान्ति मिलती है।

जब विजातीय द्रव्य बढ़ जाते हैं उनके प्रभाव से शरीर में विभिन्न प्रकार की गैस से बनने लगती हैं। जिससे शरीर का तापमान बढ़ जाता है। जिससे हम सामान्य भाषा में बुखार ज्वर के नाम से जानते हैं । यह तब उत्पन्न होता है। जब शरीर या पेट साफ नहीं होता खुलकर पेशाब नहीं होती शरीर से पसीना प्रॉपर रूप से नहीं निकलता ऐसी स्थिति में उदर के रोग, फेफड़ों का रोग, हृदय का रोग स्वता ही बनने लगते हैं । और हमारे आंतरिक और बाह्य अवयव धीरे–धीरे कार्य करना कम करने लगते हैं । जिससे शरीर में कमजोरी उत्पन्न होती है।

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार

प्राणी के जीवन में रोगों का मुख्य कारण शारीरिक अशुद्धि को माना गया है । और यह शारीरिक अशुद्धि विजाती द्रव्यों के जमा होने के कारण होती है। आहार–विहार दूषित बना लेते हैं। और जिह्वा तथा भोगेंन्द्रीय की तरफ के लिए तरह–तरह के हम अनावश्यक कर्म करने लगते हैं। अनावश्यक खानपान को हम अपने जीवन में लागू करने लगते हैं। तब हमारे शरीर के अंगों पर अधिक भार पड़ता है जब अमाशय का कार्यभार बढ़ जाता है तो खाए हुए भोजन हमारे मलाशय में पहुंच जाता है । और वहां शीघ्र ही सड़ने लगता है। उसके सड़ने से भिन्न प्रकार की हमारे शरीर में गैस से उत्पन्न होती हैं । जो शरीर को दूषित करती हैं। और यही रोग का मूल कारण है क्योंकि वह रक्त वाहिनी नसों के द्वारा समस्त शरीर में संचरण करता है। और अपनी उस गंदगी को जगह जगह पहुंचा कर पूरे शरीर को विषाक्त बना देता है। और इस विषाक्त से हमारे शरीर में जीव कोशिकाएं टूटने फूटने लगती हैं। उसकी जीवनशैली उसकी प्राणवायु कमजोर होने लगती है। और शरीर पूरी तरह से बीमार होकर बिस्तर पर पड़ा रहता है। इसी प्रकार के विभिन्न अवयव जैसे यकृत, गुर्दा, फेफड़ा जो कार्य प्रतिदिन की जिंदगी में करते हैं उनकी कार्यप्रणाली में भी पूरी तरह से कमजोरी आ जाती है। उनमें यूरिक एसिड के मिल जाते हैं। और मिलने से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

विजातीय द्रव्य का कारण

विजातीय द्रव्य, दोष के रूप में जानते हैं। इसका बहुत सारे कारण हो सकते हैं । जैसे सर्वप्रथम कारण है

- **.व्यक्ति का आहार विहार**

  जब व्यक्ति का आहार विहार ठीक नहीं होता उसका खानपान गलत हो जाता है। वह नेचुरल चीजों को नहीं खाता वह अप्राकृतिक भोजन करता है । तो निश्चित रूप से उसके शरीर में बहुत सारे

रोग उत्पन्न हो जाते हैं । वर्तमान समय में कोका कोला, पिज्जा, ड्रिंक्स सैंडविच तथा विभिन्न प्रकार के फास्ट फूड खाने की वजह से विजातीय द्रव्य सबसे अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं।

- दूसरा कारण है कि जब व्यक्ति चटपटा तीखा मिर्च मसाले तना बना अम्लीय पदार्थों को अधिग्रहण करता है। तब शरीर में विषाक्त पदार्थ तेजी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। और शरीर से निष्कासन ना हो पाने के कारण वह पूरी तरह से रोगों को उत्पन्न करके शरीर को विषाक्त बना देता है । विजातीय द्रव्यों की उत्पत्ति हमारे शरीर में होती रहती है। लेकिन इस कार्य में रुकावट आने लगती है। या बाहर से विजातीय द्रव्य शरीर से प्रवेश करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त भी और भी बहुत सारे कारण हैं । जिनके कारण शरीर में विजातीय द्रव्य उत्पन्न होते हैं आइए हम विजातीय द्रव्यों के निम्नलिखित कुछ कारणों पर प्रकाश डालते हैं।

➢ स्वास के द्वारा

स्वास के द्वारा हवा में उड़ते रहने वाले छोटे–छोटे कीटाणु, धूल कण, धुआं, दुर्गंध, हानिकारक गैस तथा सूक्ष्म कीटाणु जब हमारे शरीर में प्रविष्ट कर जाते हैं। इससे विजातिय द्रव्य शरीर में उत्पन्न होने लगते हैं

➢ मुंह के द्वारा

मुंह के द्वारा जल या अन्य खाद्य पदार्थ में मिश्रित कीटाणु और गंदगी आदि शरीर में जब प्रवेश कर जाती है। तो शरीर में विजातीय द्रव्य की वृद्धि करते हैं।

➢ विषैले जंतुओं के काटने से

जब व्यक्ति के शरीर में कोई विषैले जीव जंतु सांप, बिच्छू मच्छर ,कीट, पतंग आदि डंक मारते हैं। तो उनके विष के प्रभाव से शरीर में विजातीय द्रव्य में वृद्धि होने लगती है। विषैली दवाइयों के प्रयोग से जब व्यक्ति अपने जीवन में स्वस्थ बनाए रखने के लिए विषाक्त दवाइयां , इंजेक्शन आदि का उपयोग करता है। तो शरीर में विजातीय द्रव्य बढ़ने लगते हैं यह विषैले द्रव्य हमारे शरीर में विजातीय द्रव्य के रूप में संचित होते रहते हैं।

➢ नशीले पदार्थों के सेवन के द्वारा

जब व्यक्ति मादक पदार्थों जैसे तंबाकू गुटका, चरस, भांग, सिगरेट, अफीम शराब, दारू आदि का सेवन करता है। तब शरीर में भी विजातिय द्रव्य की मात्रा में वृद्धि होने लगती है।

➢ घर परिवार की स्थिति व संस्कार

जिन घर परिवारों में माता–पिता के द्वारा बच्चों में अच्छे संस्कार दिए जाते हैं । उनके घर का वातावरण सकारात्मक होता है। तब उस परिवार में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखने के कारण वहां के बच्चे अधिक स्वास्थ्य पाए जाते हैं। किंतु जिन घर परिवारों में संस्कार परंपरा अच्छी नहीं होती वहां का रहन–सहन गंदा वातावरण गंदा रहता है और वहां के बच्चों की स्थिति बहुत ही गंदी होती है तो वहां निश्चित रूप से विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में बढ़ने लगते हैं कूणे के अनुसार बच्चे अपने माता–पिता से विजातीय तब लेकर पैदा होते हैं माता–पिता जब विजातिय द्रव्य से अधिक ग्रसित होते हैं। तब वे विजातिय द्रव्य पीढ़ी दर पीढ़ी बच्चों में अनुवांशिकता के रूप में भी उत्पन्न होते हैं। माता–पिता की तरह बच्चे भी व्यवहार करने लगते हैं। जब माता–पिता का शरीर पूरी तरह से रोगग्रस्त होता है तो कहीं ना कि उसका प्रभाव भी बच्चों पर अधिक पड़ता है। और शरीर में और परिवार में लोगों की कहीं ना कहीं पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिति बनी रहती है।अप्राकृतिक जीवन शैली जो व्यक्ति अप्रकृतिक जीवन शैली को अपनाते हैं। उनके शरीर में भी विजातिय द्रव्य की मात्रा धीरे–धीरे करके बढ़ने लगती है और 1 दिन इतनी बढ़ जाती है। कि पूरा शरीर बीमार हो जाता है। उनका इलाज बड़े–बड़े हॉस्पिटल में होता है। जिसके कारण उनके शरीर में एलोपैथिक दवाइयों के कारण उनके शरीर में और भी अधिक मात्रा में विजातिय द्रव्य आ जाते हैं।

- **भोजन संबंधी गलत आदतें**

जिन व्यक्तियों का भोजन खाने का समय गलत होता है। तथा खाने में तरह–तरह की चीजें लेते हैं। तथा प्राकृतिक भोजन लेते हैं जो विरुद्ध आहार का अधिक सेवन करते हैं। विरुद्ध आहार के अधिक सेवन से शरीर में भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। और इन्हीं गलत आदतों के कारण विजातिय द्रव्य शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं जब व्यक्ति खाद पदार्थों में भी सभी ताजे ,पक्के और खट्टे फल विशेषकर नींबू ,दूध का मट्ठा ,हरी साग सब्जी सब्जियां, छिलके, मूली ,प्याज, शहद, मीठा दही ,गन्ना ,गाजर, चना ,अंकुरित, सलाद आदि करता है इनके प्रभाव से विजातिय द्रव्य दूर भी होते हैं।

- **अनियमित भोग विलास**

जब प्रकृति के विरुद्ध व्यक्ति अधिक से अधिक भोग विलास जीवन जीने लगता है। तब उसके आहार–विहार रहन–सहन खानपान तथा जीवन में बहुत सारी विकृतियां उत्पन्न होती हैं। जिसके कारण उसके शरीर में अधिक से अधिक मात्रा में विजातीय द्रव्य बढ़ने लगते हैं । और शरीर शारीरिक मानसिक रूप से पूरी तरह से रोग ग्रस्त हो जाता है।

- **जब व्यक्ति अधिक आलस्य** करता है।

तब शरीर में रोग उत्पन्न होने लगते हैं। क्योंकि आलस्य करने से शरीर के अंग अवयवों में कहीं ना कहीं उनके कार्यों में कमी आ जाती है। तब शरीर के जब अंग कार्य नहीं करते उनकी क्रियाशीलता स्थिर बनी रहती है। तब उनमें रक्त की कमी तथा उनमें ऊर्जा की कमी महसूस होती है। और वह अंग भी अपना काम करना धीरे धीरे कम करने लगते हैं । जिससे शरीर में कमजोरी आने लगती है । और व्यक्ति रोगों से ग्रसित हो जाता है। इसलिए आलस भी विजातीय द्रव्यों को एकत्र करने में एक प्रमुख कारण है।

- **जीवनी शक्ति की कमी से**

व्यक्ति के शरीर में शारीरिक व मानसिक विभिन्न प्रकार की विक्रीक्तियां आने लगती हैं। और इन्हीं विकृतियों के कारण शरीर लोगों को ग्रस्त हो जाता है।

- **आवश्यकता से अधिक शारीरिक श्रम करना**

जो व्यक्ति आवश्यकता से अधिक शारीरिक श्रम करते हैं। तो उनके शरीर में उतनी ही ऊर्जा की आवश्यकता भी होती है। किंतु जब किन्ही कारणों से ऊर्जा की पूर्ति नहीं होती है। तब हमारे शरीर में मल पदार्थ ही कठोर होकर सड़ने लगते हैं। और मल पदार्थों के कारण भी हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

- **रात में देर तक जागना**

जो व्यक्ति रात्रि में देर तक जागरण करते हैं। तब उनके शरीर में एसिड मात्रा बढ़ जाती है। और बड़ी भी एसिडिक मात्रा से कारण शरीर में बहुत सारे रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर में अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है। ब्लड अम्लीय हो जाता है। जिसके कारण हमारे शरीर को ग्रस्त हो जाता है । जो कहीं ना कहीं भी प्रकार की बीमारियों का उत्पन्न करता है।

- **चिंता व मानसिक व्याधियां**

चिंता और मानसिक व्याधियों के कारण शरीर की शासन प्रणाली, मस्तिष्क प्रणाली, विचार प्रणाली पूरी तरह से विकृत हो जाती है। और जब व्यक्ति की मानसिक स्थिति कमजोर हो जाती है। तो निश्चित रूप से शरीर के अंगो का मस्तिक से कनेक्शन कम हो जाता है। और कनेक्शन कम होने का कारण शरीर को इससे प्रॉपर सूचना प्राप्त नहीं होती और हमारा शरीर बीमार हो जाता है।

- **अप्राकृतिक औषधियों का सेवन करना**

जो व्यक्ति औषधियां, अफीम, गांजा, तंबाकू ,मदिरा का अधिक सेवन करते हैं । उनके शरीर में बहुत सारे रोग होते हैं । जो शरीर की स्थिति से बहुत हानिकारक होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है।

➢ व्यायाम की कमी

जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करता योगाभ्यास नहीं करता योग नहीं करता तो निश्चित रूप से उसके आंख, नाक, गला सभी प्रकार के आंतरिक भागों की सफाई नहीं हो पाती है। और आंतरिक भागों की सफाई ना होने के कारण उन्से भी विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे किडनी ,फेफड़े ,गर्दन पर कहीं ना कहीं कोई ना कोई रोग उत्पन्न होने लगते हैं। जो मुख्य रूप से व्यान की कमी के कारण और शुद्धि क्रिया की कमी के कारण उत्पन्न होते हैं।

- विजातीय द्रव्य के शरीर में उत्पन्न लक्षण नींद ना आना
- कमर में दर्द सिर में भारीपन
- मन में चिड़चिड़ापन
- पेट में गुड़गुड़ाहट का होना
- क्रोध से शरीर का तापमान बढ़ जाना
- शरीर के अवयवों से दुर्गंध आना
- शरीर का काला पड़ जाना पेट अच्छे से साफ ना होना।
- शरीर में हमेशा खांसी सर्दी जुखाम बना रहना
- ज्वर बना रहना मुंह का स्वाद बदल जाना
- हाथ पैरों में दर्द महसूस होना
- शरीर में जकड़न चुभन जैसी दर्द का उत्पन्न होना
- शरीर में हमेशा कमजोरी बनी रहना
- हृदय में भारी कंपन उत्पन्न होना
- बालों का झड़ने लगना
- नाखूनों का पीला पड़ जाना
- आंखों का पीला पड़ जाना आदि

2.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न – 1. स्वास्थ्य के आयाम में शामिल नहीं है?

अ.शारीरिक ब. मानसिक स. सामाजिक द. वैज्ञानिक

प्रश्न – 2 वैदिक परंपराओं में मूलतः रोग के कितने प्रकार माने गये है?

अ. 2 ब. 3 स. 7 द. 10

प्रश्न– 3.शारीरिक रोगों को क्या कहा जाता है?

अ. व्याधि ब. आधि स. तनाव, द. क्रोध

प्रश्न– 4. मन में चिंता तनाव दुख परेशानी यह रोग की किस श्रेणी में आते हैं ?

अ.शारीरिक ब. मानसिक स. सामाजिक द. आध्यात्मिक

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. आयुर्वेद के अनुसार सभी दोष समान हो , सभी अग्निया सामान हो सभी धातुएं समान हो, शारीर से मलों का का निष्कासन सुचारू रूप से होता हो, जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्नचित हो वही स्वस्थ व्यक्ति कहलाता है।

प्रश्न–6. स्वास्थ्य का मुख्य आधार प्राकृतिक जगत को माना जाता है।

2.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई के अंतर्गत हमने स्वास्थ्य के संदर्भ में जानकारी प्राप्त की स्वास्थ्य क्या है। स्वास्थ्य क्या–क्या लाभ होते हैं स्वास्थ्य क्या–क्या हमारे जीवन में परिवर्तन आते हैं। स्वास्थ्य के बिना हम यदि रोगी होते हैं तो रोग किस कारण हमारे जीवन में कैसी–कैसी विसंगतियां उत्पन्न हो जाती हैं इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम या जान चुके हैं रोग के कारण व रोग के प्रकार क्या हैं। आदि की विस्तृत जानकारी आपको इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात मिल जाएगी प्राकृतिक चिकित्सा में स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा पर विस्तृत चर्चा की गई है जो निम्नलिखित बिंदुओं को दर्शाता है । स्वास्थ्य एक प्रकार से जो व्यक्ति अपने जीवन में अपने शरीर अपनी अपनी आत्मा अपनी इंद्रियों के रस में रहता है। स्वा में स्थित रहता है। वह स्वस्थ्य उस व्यक्ति को ही कहा जाएगा। उसी को उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। जो व्यक्ति संसार में अपना परिवार , समाज , विश्व का कल्याण चाहता है सभी का हित देखता है। सभी की सेवा सहायता करता है। जीवन में चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करता है। वह स्वास्थ्य को प्राप्त होता है स्वास्थ्य के चार अंग बताए गए हैं ।शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य , सामाजिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के रूप में जाना गया है। स्वास्थ्य जीवन के लिए व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में

प्रकृति के साथ आहार–विहार जीवन को अपनाना चाहिए। शरीर की सफाई करनी चाहिए सफाई करने के कारण होते हैं व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। स्वास्थ्य जीवन की परिवर्तित अवस्था को रोग भी कहते हैं। जब व्यक्ति के जीवन में शारीरिक, मानसिक ,सामाजिक और आध्यात्मिक रोग उत्पन्न होती हैं। तो निश्चित रूप से मान के चलिए उसका जीवन पूरी तरह से रोगग्रस्त हो जाता है। और रोग होने के कारण उसकी जीवनी शक्ति में कमी होने लगता है।

रोगों की उत्पत्ति निश्चित रूप से अप्राकृतिक जीवन शैली या अप्राकृतिक जीवन शैली को ना अपनाने के कारण, संस्कार परंपरा को ना मानने के कारण ,आकस्मिक दुर्घटना आदि होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। रोग की दो अवस्थाएं भी बतलाई गई थी। जो तीव्र और जीर्ण रोग के रूप में हमने पढ़ा और साथ ही साथ योग वशिष्ठ में आधी और व्याधि नामक रोग जो बताए गए थे उनके बारे में हमने विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

2.09 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 **द. वैज्ञानिक** प्रश्न –2 **अ. 2** प्रश्न –3 **अ. व्याधि** प्रश्न –4 **ब. मानसिक**

प्रश्न–5. **सत्य** प्रश्न–6. **सत्य**

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विजातीय द्रव्य के उत्पन्न होने के कारण बताइए।
2. विजातीय द्रव्य क्या है? अपने शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा बताइए
4. रोग से क्या समझते हैं आप अपने शब्दों में लिखिए
5. स्वास्थ्य जीवन शैली क्या है स्वस्थ जीवन शैली पर निबंध लिखिए।
6. रोग का मुख्य कारण विजातीय द्रव्य है अपने शब्दों में लिखिए
7. स्वास्थ्य की परिवर्तित अवस्था को रोग कहते हैं अपने शब्दों में लिखिए

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा– डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना, भाषा भवन, हालनगंज, मथुरा
- आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान– अरुण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान– डॉ. राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर।
- प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली– डॉ. लुई कूने, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।
- प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार– डॉ. हेनरी लिंडलार, एम.डी. ।
- जीवेम शरदः शतम्– पं श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- चिकित्सा उपचार के विविध आयाम– प. श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- वेदों के दिव्य संदेश– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री तपोभूमि, मथुरा
- प्राकृतिक चिकित्सा– उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी उत्तराखंड भारत।
- जल चिकित्सा –उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी उत्तराखंड भारत।

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- ✓ प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग डॉक्टर नगेंद्र कुमार नीरज
- ✓ आसन प्राणायाम मुद्रा बंद स्वामी सत्यानंद सरस्वती
- ✓ योग वशिष्ठ गीता प्रेस गोरखपुर
- ✓ The complete handbook of Nature cure doctor HK bakhru.

इकाई – 3 रोग की तीव्र व जीर्ण अवस्थाएं, जीवनीशक्ति बढ़ाने के उपाय

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 रोग की अवधारणा

- ➢ 3.3. 1 तीव्र रोग की अवधारणा

- 3.3. 2 तीव्र रोग की परिभाषाएँ
- 3.3. 3 तीव्र रोग अवस्थाएँ
- 3.3. 4 तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र
- 3.3. 5 तीव्र रोग की पहचान व लक्षण
- 3.3.6 तीव्र रोग के कारण
- 3.3. 7 तीव्र रोगों का प्रकृतोपचार

3.4 जीर्ण रोग की अवधारणा

- 3.4.1 जीर्ण रोग का कारण
- 3.4.2 जीर्ण रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

3.5 जीवनी शक्ति

- 3.5.1जीवनीशक्ति बढ़ाने के उपाय
- 3.5.2जीवनी शक्ति को विकास में सहायक अन्य उपाय

3.6 अभ्यास प्रश्न

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 निबंधात्मक प्रश्न–

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत हम शारीरिक, मानसिक रोगों के अंतर्गत रोग की अवस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे । जिसमें तीव्र रोग क्या है? कैसे होते हैं? कब आते हैं? जीर्ण रोग क्या है? उनकी क्या क्या

विशेषताएं हैं? कैसे होते हैं? क्यों आते हैं? और शरीर में रहकर क्या क्या हानियां उत्पन्न करते हैं? और किस प्रकार से शरीर को पूरी तरह से कमजोर करके रख देते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में इन रोगों को कैसे दूर किया जा सकता है? वह चाहे रोग हो या तीव्ररोग हो जो शारीरिक, मानसिक रूप से शरीर में पनपते हैं। उनके क्या–क्या लक्षण हैं? उनको कैसे कैसे दूर किया जा सकता है? इसकी जानकारी विस्तार पूर्वक इस इकाई के अंतर्गत प्राप्त करेंगे। जीवनी शक्ति के विकास के बारे में जानेंगे।

जीवनी शक्ति क्या है जीवनी शक्ति के विकास के उपाय के बारे में भी जान सकेंगे जिससे हम तीव्र रोग और जीर्ण रोगों को दूर कर एक स्वस्थ शरीर की रचना कर सकें।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अंतर्गत हम शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग के प्रकारों को जा सकेंगे।
- तीव्र रोग व जीर्ण रोग क्या है? उनके बारे में समझ सकेंगे।
- तीव्र रोग की परिभाषाएं रोग की अवस्थाएं व तीव्र रोगों के लिए प्राकृतिक उपचार के बारे में जा सकेंगे।
- जीर्णरोग के कौन–कौन से कारण हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं?
- जीर्णरोग के संदर्भ में प्राकृतिक चिकित्सा कौन सी की जा सकती है?
- जीर्णरोग और तीव्र रोग से हम पूरी तरह से अवगत हो जाएंगे।
- जीवनी शक्ति के बारे में जानेंगे।
- जीवनी शक्ति के विकास के उपाय के बारे में भी जान सकेंगे।

3.3 रोग की अवधारणा

रोग के प्रकार मुख्य रूप से रोगों के दो प्रकार बताए गए हैं । प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार तीव्र रोग और जीर्ण रोग व्याधियों के रूप में और शारीरिक लक्षण के रूप में जो प्रकट होते हैं ।आचार्य श्रीराम शर्मा ने रोग के दो प्रकार बताए हैं किसी घटना आग लगने से, पेड़ से गिरने से या किसी प्रकार से एक्सीडेंट होने से समस्या लापरवाही से शरीर में जो कोई रोग या चोट लगती है। वह एक रोग का कारण है। दूसरा जब शरीर में भी विजातीय द्रव्यों की मात्रा अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं। उनका निष्कासन नहीं हो पाता है।

तब उत्पन्न होते हैं। इसलिए आचार्य श्रीराम शर्मा के साथ प्राकृतिक चिकित्सकों ने भी रोग को दो भागों में बांटा है

1. तीव्र रोग
2. जीर्णरोग

3.3.1 तीव्र रोग की अवधारणा

तीव्र रोग

तीव्र रोग वे रोग होते हैं जो शरीर में बहुत ही तेजी से उत्पन्न होते हैं जिनकी गति बहुत तेज होती है । उसे तीव्र रोग कहते हैं। जैसे दस्त, हैजा , वायरल फीवर , इंफेक्शन आदि। यह रोग जितनी तेजी से आते हैं, उससे कहीं अधिक तेजी से शरीर की उपचार करके उतनी ही जल्दी चले भी जाते हैं। तीव्र रोग अपना उपचार स्वयं कर लेते हैं। जब शरीर में किसी भाग में अधिक मल एकत्र हो जाता है । या विजातीय द्रव्य उपस्थित हो जाते हैं। तो उनका निष्कासन धीरे–धीरे ना होकर तीव्र रोगों के माध्यम से होता है। जो कुछ ही दिन रह कर उस विजातीय द्रव्य को शरीर के मल के रूप में बाहर निकालकर चले जाते हैं। एक प्रकार से तीव्र रोग हमारी हेल्प करने के लिए आते हैं। हमारे हेल्पर के रूप में आते हैं । और शरीर को स्वस्थ बना कर चले जाते हैं। इसलिए तीव्र रोग हमारे शत्रु नहीं मित्र के समान माने गए हैं। जब यह शरीर से चले जाते हैं तो शरीर बहुत ही स्वच्छ निर्मल और मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। जिनकी जीवनी शक्ति प्रबल और अधिक होती है। उन्हें ही तीव्र रोग कहा जाता है। इसलिए तीव्र रोग विशेष रूप से छोटे बच्चों युवाओं और विशेष रूप से लोगों के भी शरीर में पनपते हैं। जब शरीर से मल निष्कासन पूर्ण नहीं होता उनके सामने विभिन्न प्रकार की बाधाएं आने लगती हैं । कोशिकाओं के द्वारा शारीरिक मल दूर नहीं होता तब तीव्र के विभिन्न लक्षण दिखने लगते हैं । शरीर को शुद्ध करने के लिए रोग निर्मूल करने के लिए हमें कई प्रकार के व्रत करने भी चाहिए। हमारे शरीर में उत्पन्न हुए हैं तो उनका निष्कासन बहुत ही जरूरी है तीव्र रोग का स्वागत करना चाहिए ना कि उन्हें विभिन्न प्रकार की दवाइयों इंजेक्शन चिकित्सा उपचार से नहीं दबाना चाहिए। तीव्र रोगों के रोगी को चारपाई पर नहीं पड़े रहना चाहिए बल्कि उससे थोड़ा बहुत वर्क करते रहना चाहिए प्राकृतिक चिकित्सा में तीव्र रोगियों को मुख्य रूप से उपवास चिकित्सा करानी चाहिए। इस बात का संकेत है कि शरीर में जीवनी शक्ति का ही कार्य है। जिसकी जीवनी शक्ति कमजोर होती है। उनके अंदर ही तीव्र रोग धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगते हैं। विजातीय द्रव्य शरीर के अंदर हल्की हल्की मात्रा में थोड़ा–थोड़ा करके जमा होने लगते हैं। और जीर्ण रोग में वही फिर परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार तीव्र रोगों का होना रोगी के लिए एक शुभ संकेत माना गया है। इसलिए उसे मित्र बताया गया है । और सभी विजातीय द्रव्य को वह विभिन्न रोगों जैसे जुखाम सर्दी , गर्मी , चेचक, खाज खुजली, वमन,

मूर्छा आदि दर्द एवं सूजन के माध्यम से निकलकर शरीर को पूर्ण रूप से स्वस्थ बना देते हैं। इसलिए तीव्र लोगों को हमारे शरीर के लिए एक मित्र के समान माना गया है।

3.3.2 तीव्र रोग की परिभाषाएं

डॉ हेनरी लिंडलर के अनुसार –

सभी प्रकार के तीव्र रोग कोशिकाओं में श्रेष्ठ पदार्थ एवं श्वेत कणों के संग्रहीत होने से होते हैं। जब श्वेत कण काम हो जाते है, जिससे कि वे रोग जीवाणु से साहस पूर्ण लड़ सकें और जीवाणु भक्षण की भूमिका निभाई एवं स्वयं ही जीवाणु द्वारा पोषित किए जा कर विघटित कर दिए जाते हैं । और शरीर से निकल जाते हैं।

डॉक्टर राकेश जिंदल के अनुसार

तीव्र शब्द का अर्थ है तेज तेज गति अर्थात जो रोग शरीर में बहुत ही अल्प समय में तीव्र गति से आए उनको तीव्र रोग कहा गया है जैसे सर्दी ,जुखाम बुखार ,जकड़न , दस्त, हैजा आदि।

डॉ नागेंद्र कुमार नीरज के अनुसार

शरीर की जब जीवनी शक्ति प्रबल होने की स्थिति में होती है तब शरीर की मेटाबॉलिज्म क्रिया तेजी से बाहर निकलकर रोगों को दूर करने का प्रयास करती है। इस स्थिति में तीव्र रोग इस स्थिति को तीव्र रोग कहते हैं। जैसे बुखार, दर्द , सर्दी , खांसी , वमन, पित्त , फोड़ा आदि के लक्षण प्रस्तुत होते हैं।

श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार

जब शरीर में भी विजातीय द्रव्य धीरे–धीरे जमा होने लगते हैं। और उनका निष्कासन नहीं हो पता है। इस दौरान विजाती द्रव्यों का प्रभाव शरीर में बढ़ने लगता है। तब उन प्रभाव को कम करने के लिए शरीर प्राकृतिक चिकित्सा या प्रकृति की सहायता से उन रोगों को दूर करने का काम करती है। और शरीर में बहुत ही तेज गति से कुछ शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं जो शरीर को ठीक कर देते हैं।

3.3.3 तीव्र रोगी की अवस्थाएं

प्राकृतिक चिकित्सकों ने तीव्र रोग की अनेकों अवस्थाएं बतलाई हैं । जिनमें प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा लिंडलर ने अपनी पुस्तक नेचर की ओर में तीव्र रोगों की मुल पांच अवस्थाएं बताई हैं

प्रथम अवस्था को रोग की तैयारी की अवस्था के रूप में जान सकते हैं। शरीर में उनके प्रभाव से किसी भी भाग में मलके भर जाने से बहुत ही तेज उत्तेजना उत्पन्न होती है । फिर वह संचित मल के रूप में क्रियाओं को धीरे–धीरे और कभी–कभी जल्दी–जल्दी भी होने लगती हैं । जिनसे रोग अपना एक खास रूप धारण कर लेते हैं। ये अवस्था कुछ मिनटों से लेकर कई वर्षों में पूरी हो सकती है। इस अवस्था और अवधि में रोग उत्पन्न करने में सहायक मल विष तथा रोगाणु उत्पन्न होकर एकत्र हो जाते हैं। और धीरे–धीरे शरीर को रोग ग्रस्त बना लेते हैं।

दूसरी अवस्था में रोग का मूल रूप अधिक भयंकर होता है। इस अवस्था में व्यक्ति को शारीरिक कष्ट कहीं अधिक मात्रा में पड़ जाते हैं। उसके मानसिक तनाव, चिंता , अवसाद, यह सब उत्पन्न होने के साथ–साथ शरीर में सूजन आदि का बढ़ जाना और रोगी को चारपाई पर अपने आप को पीड़ा का अनुभव होने जैसा लगता है। जिनसे रोग बन जाती है। घाव हो जाता है । शरीर में पस और रक्त बहने लगता है। जैसा कि फोड़ा होने की दशा में भयानक रूप उत्पन्न कर लेता है। पसीना तथा यूरिन में विषाक्त पदार्थ मिलने लगते हैं। सांस से दुर्गंध आने लगती है दस्त होने में उसे परेशानी होने लगती है। मल निष्कासन के साथ निकल जाता है। स्वाभाविक ही होता है कि जिसके शारीरिक और भी अधिक शिथिल हो जाता है। मस्तिष्क काम नहीं करता रोगी की यह सबसे जोखिम की घड़ी होती है। तथा जीवनी शक्ति की परीक्षा का समय है। यदि जीवनी शक्ति इस अवस्था में आकर हार गई या फेल हो गई कामयाब ना हुई तो रोगी का अंत हो जाता है। अर्थात मृत्यु हो जाती है । यदि जीवनी शक्ति प्रबल हुई तो संचित मल को निष्कासित करने में सफल होकर संकट की स्थिति और इस संकट की घड़ी को पार कर जाती है। और रोगी को रोग मुक्त कर देती है कुशल प्राकृतिक चिकित्सा इसी घटना में जीवनी शक्ति को उचित उपचार द्वारा सहायता पहुंचा कर भागीदार बनता है। और शरीर से रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

3.3.4 तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र

तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों में यह एक प्रमुख सिद्धांतों के अंतर्गत भी आता है कि तीव्ररोग शत्रु नहीं मित्र होते हैं। यह युक्ति बहुत ही सही साबित होती है। क्योंकि जब हमारा शरीर पूरी तरह से मनुष्य रोगों से ग्रस्त हो जाता है। उस स्थिति में तीव्र रोग छोटे–मोटे रोगों को, विजातीय द्रव्यों को, टॉक्सिस मैटर को, विषाक्त पदार्थों को शरीर से निकाल कर उनको दूर करके शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए आते हैं। इसलिए तीव्ररोग को दवाइयों से उपचार ना करके उनको सत्कार पूर्वक स्वागत करके उनको शरीर से निकाल देना चाहिए। जिससे शरीर के विजातीय द्रव्यों को शरीर के विभिन्न अंगों से पूरी तरह से निकाल कर शरीर से रोगों को दूर कर सके। शरीर में सर्वाधिक विजातिय द्रव्यों से दूसरे शब्दों में मल दूषित पदार्थ

फॉरेन मैटर जिन्हे आदि के नाम से जाना जाता है। जिसको हमारे शरीर के मल मार्ग ,रोंमकूप, गुर्दे ,गुदा , प्रजनन अंग त्वचा, आंख , नाक, कान, मुंह , इन सब से प्रतिदिन निकलते रहते हैं । इसी कारण उस मल को बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल पाता है। तो वह शरीर में विभिन्न प्रकार के छोटे से बड़े रोग उत्पन्न करने लगते हैं। जब एक जगह जमा हो जाते हैं जमा होने के पश्चात उनकी जब संख्या बढ़ जाती है । तब वह एक विस्फोट का कार्य करके बाहर निकलने का अपना मार्ग खोजते हैं। उसी मार्ग को उसी खोजे गए दिशा निर्देश को तीव्ररोग के नाम से भी जाना जाता है। इसको समझ लेने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य को रोग होना इतना आवश्यक नहीं है ।

दूसरे शब्दों में कहें तो रोग हमारे शत्रु नहीं मित्र होते हैं जो हमें स्वस्थ बनाए रखने के लिए हमारे शरीर की गंदगी को दूर करने के लिए हमारी जीवनी शक्ति को बढ़ाने के लिए हमारे अगों की सुरक्षा करने के लिए हमारे शरीर में उत्पन्न होते हैं । एक सरल उदाहरण के माध्यम से आप समझ भी सकते हैं । जैसे मान लीजिए कि आप प्राकृतिक तत्वों में जल से चिकित्सा करनी है तो इस कार्य को वह वमन अथवा दर्द का रोग निवारक बनकर रोगों को दूर करेगी। विपरीत परिस्थिति में अनेक रोग उत्पन्न कर सकती है। साथ में पानी की प्यास भी उत्पन्न हो सकती है। उसे मस्तिष्क के विकार को साफ करना है। तो जुखाम होगा यदि हाथ पैरों में या घुटनों में या रक्त में किसी प्रकार से कोई समस्या है। तो उसको निश्चित रूप से दस्त के माध्यम से बाहर निकलने का प्रयास करेगी। हमारे शरीर में संबंधित किसी प्रकार का कोई रोग हो गया है । तो वहां के रूप में बाहर निकालने का प्रयास करती है जैसा कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों में होता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों में रोगों को समझ कर उसे लड़ा नहीं जाता। क्योंकि रोग स्वयं कोई चीज नहीं होती। जिन के साथ लड़ाई की जाए। सिंपल सी बात है , रोगों का संगठन संगठन को तोड़ देते हैं उनको निकाल देते हैं। मिटा देते हैं तो निश्चित रूप से हमारा शरीर स्वस्थ हो जाता है। और जैसे–जैसे भी विजातीय द्रव्यों का हमारे शरीर में अभाव होता चला जाता है । वैसे–वैसे रोगों से मुक्त होकर स्वास्थ्य को प्राप्त होता है। स्वास्थ्य निर्माण की कोशिका हमारे शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करती हैं यदि शरीर की सफाई के लिए होने वाले प्राकृतिक के प्रयत्न के रूप में होते हैं । तो उनके कारण लोग मरते क्यों हैं ऐसा कभी कभी ऐसा प्रश्न मन में आता है ऐसा नहीं है की जब हमारे शरीर में जीवनी शक्ति बहुत कम रह जाती है। और इस स्थिति में शरीर की स्थिति द्रव्य की मात्रा बहुत अधिक होती है या उपचार हानिकारक हुआ तो ऐसे समय में प्रकृति अपनी सफाई का कार्य करने में असफल हो जाती है। इसलिए लोगों को निश्चिंत रूप से इस परमपिता परमात्मा पर भरोसा करके विश्वास करके अपने जीवन को सकारात्मक दिशा में ले जाकर शरीर को स्वस्थ बना कर रखना चाहिए। कभी भी नकारात्मक विचार नहीं आने देना चाहिए। क्योंकि रोग कुछ नहीं सिर्फ और सिर्फ विजातीय द्रव्य होते हैं जिनको हम प्रकृति के माध्यम से उनको शरीर से निकाल देते हैं। हम नहीं निकाल पाते तो स्वयं निकाल देती है और जैसे ही निकल जाते हैं। हल्का हो जाता है। शरीर आनंदित हो जाता है हल्का हो जाता है और मन में एक प्रसन्नता का भाव भी उत्पन्न होता है। जो प्रकृति का एक वरदान भी है।

3.3.5 तीव्र रोग की पहचान व लक्षण

- तीव्र रोग हमारे समय में क्षण भर के लिए तेजी से आते हैं जिनकी समय सीमा एक दिन से लेकर 7 दिनों तक हो सकती है।
- तीव्र रोग उल्टी, दस्त ,जुखाम, बुखार, वायरल फीवर के माध्यम से ही आते हैं।
- तीव्र रोग खांसी, सर्दी के रूप में भी परिचित होते हैं ।
- तीव्र रोग शरीर में अचानक से आकर पूरे शरीर को हिला कर रख देते हैं।
- तीव्र रोग शरीर से विजातीय पदार्थों को बाहर निकलने का कार्य करते हैं
- तीव्र रोग शरीर के सभी अंग अवयवों को पुनः नया जीवन प्रदान करते हैं।
- तीव्र रोग शरीर की आंतरिक क्रियाकलापों को उत्तेजित कर उनके कार्यों में गति प्रदान करते हैं ।
- तीव्र रोगों को एंटीबायोटिक दवाइयां एलोपैथिक दवाइयां के माध्यम से नहीं दबाना चाहिए।
- तीव्र रोग स्वतः ही शरीर से समाप्त हो जाते हैं।
- तीव्र रोग शरीर को नया जीवन प्रदान करते हैं और जीवनी शक्ति की वृद्धि भी करते हैं।

3.3.6 तीव्र रोग के कारण

- तीव्र रोग प्राकृतिक जीवन के अभाव में उत्पन्न होते हैं ।
- तीव्र रोग गलत खान–पान गलत आहार विहार गलत तौर तरीके से उत्पन्न होते हैं ।
- तीव्र रोग शरीर से जब निकल नहीं पाते तब शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में इकट्ठे हो जाते हैं उनको निकालने के लिए वह स्वयं उत्पन्न होते हैं ।
- तीव्र रोग गलत खान–पान के कारण उत्पन्न होते हैं।
- तीव्र रोग फास्ट फूड, असमय भोजन, असमय दिनचर्या के कारण उत्पन्न होते हैं।
- तीव्र रोग शरीर में जब मल पदार्थ का निष्कासन सही से नहीं हो पता उस दौरान तीव्र रोग उनको निकालने के लिए उत्पन्न होते हैं जिसका मुख्य कारण है शरीर का प्रकृति के माध्यम से औपचारिक ना होना या शारीरिक योगाभ्यास की कमी का होना।

3.3.7 तीव्र रोगों का प्रकृतोपचार

तीव्र रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा उपचार

तीव्र रोग जो मानव जीवन में अचानक और एक समय में तीव्र गति से उत्पन्न होते हैं। जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर अपना प्रभाव डालकर शरीर को पूरी तरह से विषाक्त मुक्त करने का काम करते हैं। शरीर पर प्रतिक्षण हजारों की संख्या में रोगाणु, कीटाणु, बैक्टीरिया अपना प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं। जिनमें आंख, नाक,मुंह ,कान, मलद्वार जो शरीर के सूचना त्वचा से प्रवेश का शरीर को भी विषाक्त करने का भी प्रयास करते हैं। इनके प्रभाव से शरीर में नाना प्रकार के विषाक्त पदार्थ जमा हो जाते हैं। जो शरीर में रोग उत्पन्न करते हैं। प्रकृति में व्याप्त जीवनी शक्ति जो मानव को स्वस्थ बनाए रखने में बहुत मदद करती है। ईश्वर ने ऐसी जीवनी शक्ति से ओतप्रोत मानव को इन तीव्र रोगों से बचने के लिए मदद करते हैं। शरीर में होने वाले विभिन्न प्रकार के हारमोन स्राव, एंटीबैक्टीरियल, एंटीवायरस फैक्टर बहुत से रसायन पाए जाते हैं । जो शरीर में इन्फेक्शन और सूचना जीवो को नष्ट कर शरीर को रोगों से मुक्त कर देते हैं।

जब शरीर में तीव्र रोग उत्पन्न होते हैं। तब उनका इलाज हमें किसी प्रकार से एलोपैथिक दवाइयों के माध्यम से नहीं करना चाहिए एलोपैथिक की दवाइयां शरीर में उत्पन्न विषाक्त पदार्थों से उत्पन्न रोगों को कुछ समय के लिए दवा देती हैं । और दब जाने के पश्चात वह रोग धीरे–धीरे करके जीण रोग में परिवर्तित हो जाता है जिसके कारण अनेकों प्रकार की बीमारियां धीरे–धीरे फिर से उत्पन्न होने लगती हैं। इसलिए है जो दस्त, उल्टी के समय किसी प्रकार की दवाइयां लेकर उनको दबाना नहीं चाहिए। जिस प्रकार की हमारे शरीर में कोई भी हल चलें उत्पन्न होती हैं। तो हमें उपवास, आसन, तत्व शुद्धि के माध्यम से जल चिकित्सा के माध्यम से उपवास के माध्यम से उन रोगों को लड़ने के लिए छोड़ देना चाहिए जैसे जैसे हम खाली पेट रहते हैं। वैसे वैसे भूखा रहकर हम बीमारी और जीवाणुओं को पूरी तरह से नष्ट कर हम शरीर को स्वस्थ बना सकते हैं।

हर व्यक्ति के शरीर में विभिन्न प्रकार की ऐसी कोशिकाएं उत्पन्न होती है जो जीवाणुओं से कैंसर को दूर करने का प्रयास करते हैं। जिनकी सुरक्षा व्यवस्था सजग एवं सशक्त है। उसे कैंसर जैसी बीमारियां कभी नहीं हो सकती हवा पानी तथा भोजन द्वारा पेट में जब खतरनाक विषाक्त वायरस पदार्थ कीटाणु उनके टॉक्सिंस विषाक्त मल विजातीय द्रव्य चले जाते हैं। उस अवस्था में व्यक्ति को उल्टी दस्त है । जो शरीर में जकड़न बुखार, खांसी , सर्दी जैसी बीमारियां उत्पन्न होती है । और उस से यह सारी बीमारियां दूर हो जाती हैं । और शरीर स्वस्थ हो जाता है। पाचन तंत्र के अंदर संकुचित होकर यह विजातीय द्रव्य उदर के माध्यम से एंटीबॉडी था स्लेष्मा तत्व मिलकर कीटाणु और इस मैटर को बाहर निकालने के लिए प्रणाली की सहायता से जल में खुलकर सड़े पदार्थों को गुदा मार्ग से दस्त के माध्यम से बाहर निकाल देते हैं इस प्रकार दस्त जो एक तीव्र रोग है। सर्दी जुखाम बुखार यह सब एक प्रकार से तीव्र लोग हैं। जो अल्प समय

में आकर रोगों को दूर करते हैं। इनको दवाइयों से रोक देने या दवा देने से उनके विषाक्त पदार्थ रक्त में मिलकर नाना प्रकार के असाध्य लंबी बीमारियों को जन्म देते हैं । इस तरह सभी प्रकार के दर्द अंग विशेष में रक्त और स्नायु संचार में आए हुए अवरोध की सूचना देते हैं । जो अंग विशेष की मांसपेशियों में रक्त संचार को तेज कर देते हैं ताकि बाहरी रोगाणुओं को नष्ट किया जा सके यही कारण है कि दर्द वाले स्थान पर सूजन दस्त , वमन , फोड़ा ,फुंसी ,खांसी ,जुकाम ,बुखार सभी तीव्र ,रोग स्वत ही शरीर को स्वस्थ करने की प्रक्रिया का एक लक्षण है । इसलिए इन लक्षणों को दवाओं से दबाकर नहीं बल्कि उपवास के माध्यम से रसों उपवास जल उपवास और प्राकृतिक नियमों का पालन करके इन लोगों को शरीर से दूर करने का प्रयास करके शरीर को निरोग बनाना चाहिए। यही प्राकृतिक चिकित्सा सर्वोपरि है।

तीव्र रोगों का प्राकृतिक उपचार

सभी रोगों के प्राकृतिक उपचार एक समान होते हैं । प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों के उपचार के लिए पांच तत्वों का सहारा लिया जाता है। उन्हें पांच तत्वों के माध्यम से रोगों को दूर किया जाता है । इन सभी रोगों की चिकित्सा भी समान होती है। समान तीव्र रोग प्राकृतिक तरीकों से बड़ी सरलता के साथ ठीक हो जाते हैं। तथा कोई भी समझदार व्यक्ति इनका उपयोग आसानी से करके प्राकृतिक चिकित्सा के अनेक लाभों को ले सकता है। इस रोग के पहले चरण में व्यक्ति को कुछ लक्षण दिखाई देते हैं उन लक्षणों को समझ कर उनका निदान आसानी से कर सकता है । इनमें रोग का सही निदान होने की प्रतीक्षा आवश्यक नहीं है । प्राकृतिक उपचार के बिना रोगों को दूर नहीं किया जा सकता है। इसलिए तीव्र रोगों से रोग मुक्ति की संभावना का सर्वाधिक प्रतिशत निश्चित रहता है। इसके साथ ही यदि किसी प्रकार के दुष्परिणामों के संभावना नहीं दिखती है। इसका सबसे बड़ा लाभ या है कि वायु का सेवन करना चाहिए। उपवास, जल के विभिन्न प्रयोग जैसे स्नान, शंख प्रक्षालन, ज्वर में ठंडा टब स्नान या झरने का स्नान, गर्म पानी का स्नान, ठंडी लपेट ,गर्म पट्टी की लपेट, संपूर्ण शरीर की चादर लपेट, वैकल्पिक लपेट तथा इसके साथ–साथ में बहुत सारे प्राकृतिक चिकित्सा के छोटे–छोटे उपचारों को लेकर के व्यक्ति रोगों को दूर कर सकता है। एनिमा आदि के आवश्यकता अनुसार प्रयोग तथा सही मानसिक मनोवृति से बिना अधिक खर्च के ही किसी भी घर में इसका उपयोग आसानी से किया जा सकता है। रोगों से मुक्त हो जा सकते हैं यदि आरंभ में प्रकृति का उपचार सही ढंग से किया जाए तो निश्चित मान के चलिए कि शरीर तीव्र रोगों को ठीक करने के लिए पर्याप्त है । यदि प्रक्रिया अनुकूल नहीं है तो हम प्रकृति के विभिन्न तरीकों को अपना सकते हैं। और उनका अपना कर प्रकृति की सहायता लेकर अपने जीवन को निरोग बना सकते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार के अंतर्गत यदि देखा जाए तो जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, आकाश तत्वों की उपवास चिकित्सा और पृथ्वी तत्व की मृदा चिकित्सा आदि । पद्धतियों को अपनाकर हम शरीर के सभी रोगों को आसानी से ठीक कर शरीर को स्वस्थ और दीर्घायु जैसा प्राप्त कर सकते हैं। जो प्रकृति मां का एक वरदान है।

3.4 जीर्ण रोग की अवधारणा

जीर्ण रोग वह रोग होते हैं। जो शरीर में चिरकाल तक बने रहते हैं। यूं कहें तो जब शरीर में तीव्र रोग उत्पन्न होते हैं, उनको यदि किसी प्रकार से एलोपैथिक होम्योपैथिक दवाइयां के माध्यम से दबा दिया जाता है। तो वह दबे हुए रोग धीरे–धीरे अपना जमावड़ा अधिक मात्रा में जमा लेते हैं । और विषाक्त पदार्थों को अधिक मात्रा में शरीर में उत्पन्न करके उनका शरीर से निकलने नहीं दिया जाता है। ऐसी अवस्था में वे रोग धीरे–धीरे करके दीर्घ कल तक शरीर में बने रहते हैं। इन्हीं को ही जीर्ण रोग कहा गया है। जैसे उलटी, दस्त, खांसी, जुकाम, सर्दी, होने की दशा में उनका एलोपैथिक दवाइयां के माध्यम से दबाकर रख दिया जाता है तो वह दब जाते हैं। कफ शरीर से निकल नहीं पता, वात ,पित्त शरीर में दबे रहते हैं। ऐसी अवस्था में शरीर में विशाख पदार्थ धीरे–धीरे जमा हो जाते हैं। और यही विषक पदार्थ जब अपना बड़ा रूप ले लेते हैं । तब यह शरीर में अपना साम्राज्य स्थापित कर लेते हैं। तब इनको जीर्ण रोग के नाम से जाना जाता है । शरीर में जब जीवनी शक्ति का अभाव होने लगता है। और रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में तीव्र रोग प्रकृति के द्वारा शुद्ध नहीं हो पाती यो के शरीर से निकल नहीं पाते हैं। निकलने का बहुत प्रयास करते हैं। लेकिन जीवनी शक्ति के अभाव में वह शरीर से निकल नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में जीर्ण रोग उत्पन्न होते हैं। विकृत आहार, विहार के कारण शरीर में विषाक्त पदार्थ जब अपना प्रभाव अधिक मात्रा में डालने लगते हैं । ऐसी स्थिति में जीर्ण रोग बढ़ जाते हैं । और साथ ही साथ जब व्यक्ति अप्रकृतिक भोजन आहार बिहार करने लगता है। तब प्रकृति के अनुसार उसका शरीर कार्य नहीं करता है। जिसके कारण शरीर से निकलने वाले मल पदार्थ समय से नहीं निकाल पाते और शरीर में जमा होकर के शरीर का और जीवनी शक्ति का ह्रास करने लगते हैं। यदा–कदा दर्द ,ज्वर आदि के चिन्ह दिखाई देते हैं। तो ऐसी स्थिति में वह उन्हें दबाकर कुछ समय के लिए रोक देते हैं। जिसे कहते हैं कि रोग ठीक हो गया है। लेकिन रोग ठीक नहीं होता क्योंकि जब तक भी विजातिय द्रव्य शरीर से नहीं निकलेंगे तब तक रोग ठीक नहीं होता है । जीर्ण का अर्थ होता है। पुराना अर्थात जो रोग काफी पुराना हो जाता है। काफी दिनों से शरीर में दवा रहता है। जिससे ठीक होने में काफी समय लगता है। उसे जिन रोग के रूप में जाना जाता है। जैसे अग्निमांड, अपच, कैंसर, कब्ज मधुमेह, दुर्बलता, हड्डियों के रोग, जोड़ों की विकृतियां, आंत का उतरना, पेट की गड़बड़ी, मिर्गी, मोटापा, गुर्दे की पथरी ,स्वप्नदोष ,अनित्र, दाद ,खुजली, आंतों का रोग, बवासीर, नपुंसकता, स्नेही दुर्बलता, हृदय की वसा का बढ़ जाना, गुर्दे की पथरी, असमारी, अस्ति, हृदय शूल, अर्थराइटिस स्पॉन्डिलाइटिस, अर्थराइटिस पेनक्रियाज पेन, ब्रोंकाइटिस, अस्थमा, चिंता, तनाव, गुर्दे की पथरी, बवासीर, अल्सर यकृत की विकृतियां, हृदय से संबंधित रोग आदि इन रोगों के उपचार के लिए प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। क्योंकि तीव्र रोगों को हम आसानी से ठीक

कर सकते हैं। जबकि जीर्ण में रोगों को ठीक करने के लिए शारीरिक मेहनत, व्यायाम, शुद्ध आहार विहार ,उपवास खानपान, पूरी तरह से प्राकृतिक जीवन की कर इनको आसानी से हम ठीक कर सकते हैं। शरीर का उपचार कर सकते हैं। इन प्रकार के भी जाती द्रव्यों को निकाल कर हम जिन रोगों को भी दूर कर सकते हैं जो प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा संभव है।

3.4.1 जीर्ण रोग का कारण

जीर्णरोग के कारण जीर्ण रोग मानव के शरीर में प्राकृतिक जीवन शैली, आहार विहार, प्रकृति के नियमों का बार–बार उल्लंघन करने से उत्पन्न होते हैं। साथ ही साथ जब आहार में तले भुने विकृत खाद्य, मांस, मछली, खान–पान, गुटका, शराब, पान, पुड़िया, मादक द्रव्यों का सेवन तथा गलत बेमेल विरुद्ध आहार का सेवन करते हैं। तब आहार में जब खनिज लवणों जीवन तत्व की कमी आ जाती है । मानसिक तनाव, चिंता ,बहुत अधिक श्रम, रात्रि में देर तक जागना, बहुत अधिक उत्तेजना, विषाक्त चिंतन, नकारात्मक सोच, विषाक्त औषधीय, नकारात्मक विचार, अपर्याप्त नींद एवं विश्राम अधिक कामवासना में डूबे रहना अधिक भोग विलास करना, अधिक औषधीय का प्रयोग, दूषित खाद्य पदार्थों का प्रयोग शरीर द्वारा स्वत रोग मुक्त होने की नैसर्गिक प्रक्रिया तीव्र लोगों को दबाना, प्रकृति के नियमों का विरुद्ध चलना, प्रकृति के नियमों का अपमान करना, उनको पूरी तरह से निकलना यह सब विजातिय द्रव्यों का शरीर में इकट्ठा होने लगते हैं जिसके कारण से शरीर में जीर्णरोग उत्पन्न होते हैं। वह उत्पन्न होकर शरीर को दीर्घकालीन तक रोगों से ग्रसित कर देते हैं। विषाक्त तत्व जब इकट्ठा होने लगते हैं तब अस्थियों की संरचना में विकृतियां आ जाती हैं। मांसपेशियां तथा स्नायु पदों में कमजोर होने लगते हैं। व्यक्ति का स्वत आत्म नियंत्रण कम होने लगता है । नकारात्मकता बढ़ जाती है। स्नायु विकृति हो जाती है। मांसपेशियों में शीतलता आ जाती है। ह्रदय के काम करने की क्रिया कम हो जाती है। तब उसको डायबिटीज ,हाइपरटेंशन, मिर्गी इत्यादि से संबंधित रोग लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जिससे शरीर में जीवनी शक्ति अत्यधिक मात्रा में कमजोर होने लगती है। जीवनी शक्ति कमजोर होने से व्यक्ति में अनेको प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जो शरीर की आंतरिक संरचना आंतरिक अंगों को कमजोर कर देते हैं। उनकी क्रियाशीलता में कमी ला देते हैं। शरीर के तीव्र रोगों के रूप में सफाई नहीं होता है उनके परिणाम स्वरुप जीर्ण रोग होते हैं। जुकाम को दवा के सहारे बार–बार दबाना, दमा को बार–बार दबाना, खांसी को, सर्दी को, बुखार को बार–बार दवा से दबा देना जिसके कारण विजाती द्रव्य शरीर से निकल नहीं पाते और शरीर में जमा होकर के अपना रूप दीर्घकालिक और प्रचंड बना लेते हैं। अच्छे जीवनी शक्ति वाले माता–पिता भी जब संतानों की उत्पत्ति करते हैं। तो निश्चित रूप से हैं अच्छे जीवनी शक्ति वाले संतान भी उत्पन्न होती है।

जीर्णरोग में पीड़ा असहनीय होती है। वह धीरे–धीरे उत्पन्न होती है तीव्र रोग क्षण भर के लिए आते हैं । जबकि दीर्घ रोग 1 सप्ताह से लेकर के 1 साल, 2 साल, 5 साल , 10 साल तक भी चलते रहते हैं । वह व्यक्ति को धीरे–धीरे अंदर से कमजोर करके शरीर को खोखला कर के उसको मृत्यु तक पहुंचाने का भी कार्य करने लगते हैं। शरीर का जब रक्त शुद्ध और विकार हीन हो जाता है। तब कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है पर जब रक्त की जीवनदायिनी शक्ति छीन नहीं होती है। और वह मल युक्त नहीं होता है । तो अनेकों प्रकार के रोगों को दूर भी करता है । रक्त में विकार तभी उत्पन्न होता है । जब शरीर के विकार निकलने वाले मल, मूत्र, पसीना, स्वास आदि के द्वारा हमारे विकार शरीर से नहीं निकल पाते बचा हुआ विकार शरीर में उत्पन्न रहकर शरीर के अंगों की क्रियाशीलता को कम तो करता ही करता है । साथ में रक्त को भी गंदा करता है अवयवों की जो क्रियाशीलता है उसको पूरी तरह से कमजोर करके रोग उत्पन्न करके कष्ट, दुख का आगमन उत्पन्न करता है या प्रकृति की सूचना भी होती है । जो प्रकृति व्यक्ति को समय–समय पर देती रहती है। यदि सूचनाओं को हम जब अनदेखा कर देते हैं । शरीर में दर्द पीड़ा उत्पन्न होते हैं ऐसे व्यक्ति की अवस्था में मृत्यु हो जाती है । शब्दों में परमात्मा की एक आशीर्वाद की देन है । इसका स्वभाव ही रक्षा करना है। उसको यदि समय रहते पहचान लिया जाए और प्रकृति की सूचना को यदि समझ लिया जाए तो निश्चित रूप से उसे ध्यान देकर उसे शत्रु ना समझ कर उसे दबाने की अपेक्षा उसका उपचार करके उसको सत्त्कार पूर्वक शरीर से दूर करने का भी प्रयास करना चाहिए।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के शब्दों में

जब कोई रोग की सूचना को ठीक–ठीक नहीं समझ पाता या उसके लक्षणों को अच्छे से नहीं समझ पाता जिसके कारण रोग को दूर करने की बजाय उन्हें को दबाने का प्रयास करने लगता है ऐसी अवस्था में शरीर की जो जीवनी शक्ति है वह धीरे–धीरे मंद होकर कम हो जाती है जिसके कारण शरीर में जीर्ण रोग अपनी जड़े मजबूत करके जमाने लगती हैं यह सूचना हमारी जीवनी शक्ति का पोषक है इसी जीवनी शक्ति को हम आसन, प्राणायाम ,मुद्रा ,बंद ,खानपान, आहार–विहार,साधना, उपासना के माध्यम से हम उसे मजबूत करके जीर्णरोग से दूर कर सकते हैं जीवन में रोगों का मुख्य कारण व्यक्ति की असभ्य जीवन शैली सबसे महत्वपूर्ण कारण भी माना गया है इसलिए व्यक्ति को अपनी जीवन सात्विक, सदाचार ,संयम, पवित्रता, प्रखरता और मर्यादित रखना चाहिए जब व्यक्ति इन प्रकार के गुनो का अपने जीवन में धारण करता है तो वह शारीरिक ,मानसिक ,सामाजिक और आध्यात्मिक स्तर पर पूरी तरह से स्वस्थ रहता है जो प्रकृति मां का एक राजकुमार के रूप में स्वस्थ जीवन व्यतीत करके मानव संसार से मुक्त हो जाता है। स्वस्थ जीवन हमारा अधिकार है उस अधिकार की यदि उपेक्षा की जाए तो निश्चित ही व्यक्ति पूरी तरह से रोगों से ग्रसित हो जाएगा । इस प्रकार देखा जाता है कि सभी प्रकार के जो जीव रोग होते हैं उन सभी का मुख्य कारण एक ही है । वह है जीवनी शक्ति का कमजोर होना और यह जीवनी शक्ति की कमजोरी व्यक्ति की अप्राकृतिक जीवन शैली का होना, रहन–सहन, दूषित पदार्थ का सेवन करना, वर्तमान समय में भौतिकवादी जीवन को अधिक से अधिक अपनाना, जो जीर्ण रोगों का सबसे प्रमुख और चिंतित कारण भी माना गया है।

तीव्र रोग होने पर जब हम उनको दबा देते हैं तो उन्हीं का वह विकृत रूप बनकर के दीर्घकाल तक शरीर में जमा रहता है वह जीर्ण रोग कहलाता है।

3.4.2 जीर्ण रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा आचार्य के अनुसार यदि माना जाए तो रोग का मूल कारण विजाती द्रव्यों का संचयन को माना गया है यदि इन विजाती द्रव्यों को शरीर के सभी अंग प्रत्यङ्गो से निकाल दिया जाए तो निश्चित रूप से हमारा शरीर स्वस्थ हो जाएगा यदि जीवनी शक्ति को बढ़ा दिया जाए तब हमारा शरीर स्वस्थ हो जाएगा और व्यक्ति की यह जीवनी शक्ति की बढ़ोतरी और रोगों का उपचार प्रकृति के माध्यम से ही संभव है यदि व्यक्ति प्राकृतिक जीवन को अच्छे से जीने लगता है तब सभी प्रकार के जीर्ण रोगों का स्थाई व सही उपचार संभव हो जाता तीव्र रोगों के निरंतर दवाइयां द्वारा दबाते रहने से जीर्ण रोगों की स्थिति बहुत अधिक पैदा होती है तीव्र रोग को पूर्णता ठीक होने में 3 से 7 दिन लगते हैं और उसे औषधीय से दवा देने पर वह क्षण भर के लिए ठीक सा महसूस होता है लेकिन वह जीर्ण रोगों में परिवर्तित और रूपांतरित हो जाता है तब उसे ठीक होने में 5 से 20 दिन लग सकते हैं और अधिक जीर्ण रोग यदि बना रहा तो उसके उपचार की पद्धति महीना तक बनी रह सकती है परंतु प्राकृतिक चिकित्सा से अनजान और अज्ञान वष तीव्र रोगों को औषधीय से दवा देने पर जीर्ण रोग की रूपांतरित अवस्था को हम जल्द से जल्द ठीक भी कर सकते हैं डॉक्टर नागेंद्र कुमार नीरज के अनुसार तीव्र रोगों को औषधीय द्वारा बढ़ाने से व्यक्ति की जीवनी शक्ति काफी कमजोर हो जाती है इसलिए उनका प्राकृतिक तत्वों प्राकृतिक पदार्थ प्राकृतिक जीवन शैली को अपना कर ही उनको दूर किया जाना चाहिए।

रोगी की जो जीर्ण अवस्था है वह जीवन शक्ति की कमी का एक प्रतीक है । रोग की स्थिति अनुकूल सभी को ध्यान में रखते हुए रोगी को 10 से 40 दिनों या उसकी सामर्थ के अनुसार रोग के शरीर में रहने तक प्राकृतिक चिकित्सा दी जानी चाहिए । जिसमें मुख्य रूप से उपवास, निम्बू पानी शहद, फलों का रस सब्जियों का रस, देखकर उनकी जीवनी शक्ति को ध्यान में रखते हुए। रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए । इस दौरान रोगी की स्थिति व उसकी शक्ति के अनुसार मिट्टी स्नान, मिट्टी की पट्टी, से लेकर पेट की मालिश, एनिमा, सर्वांग गरम लपेट व ठंडे जल से स्नान आदि करने के साथ–साथ सूर्य स्नान आदि को बदल बदल कर प्रत्येक दिन अलग–अलग चिकित्सा करनी चाहिए इने चिकित्सा आदि से निश्चित रूप से रोगी को बचाया जा सकता है। चिकित्सा के दौरान ज्यादा से ज्यादा समय तक विश्राम करें । साथ ही साथ प्राकृतिक चिकित्सा में योग की चिकित्सा शरीरिक ,व्यायाम ,आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, की चिकित्सा को भी जोड़कर रोगी की जीवन शक्ति को मजबूत करके रोगों को दूर करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के समय विश्राम और मौन का विशेष महत्व

प्राकृतिक चिकित्सा के समय विश्राम और मौन का विशेष महत्व रहता है। इसका विशेष ध्यान देना चाहिए इससे रोग त्वरित गति से दूर होते हैं। हीलिंग की प्रक्रिया उपवास के दौरान सुबह धूप में 15 से 20 मिनट तक करनी चाहिए उपवास के पश्चात धीरे–धीरे रसाहार को भी देना चाहिए। कुछ दिन ऐसा हर एक के बाद उबली हुई सब्जियां व फलों को देना चाहिए। फिर धीरे–धीरे करके रोगी को हल्की और सुपाच्य अनाज से बनी खाद्य सामग्री को भी देना चाहिए। फिर रोटी, पापड़ी, सलाद धीरे–धीरे करके देना प्रारंभ कर देना चाहिए। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉक्टर हेनरी लिंडलर ने एमडी ने जिन रोग के प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत आहार उपवास स्नान वचन के अन्य प्रयोगों को भी बताया है । जिनका उचित श्वसन सामान्य शारीरिक व्यायाम, मनोवैज्ञानिक मानसिक व्यायाम, सुधारात्मक व्यायाम, तथा तांत्रिक उपचार के लिए विभिन्न प्रकार के योग क्रियाओ को भी बताया है । शारीरिक क्रियाओ को करके व्यक्ति अपने शरीर को रोगों से मुक्त कर सकता है। व्यक्ति को मानसिक अवस्था का भी ध्यान रखना चाहिए। व्यक्ति जप, ध्यान, ईश्वर उपासना को साथ–साथ में करते रहना चाहिए। ईश्वर उपासना से व्यक्ति में एक नई ताजी सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है । उसे परमात्मसत्ता का ध्यान रखते हुए हमारे मानसिक चिकित्सा भी होती है। इसलिए जो जीर्णरोग के प्राकृतिक उपचार के दौरान चिकित्सा की जाती है। उनकी चिकित्सा में विश्वासपूर्ण उसे परमात्मा का भी विशेष ध्यान रखते हुए अपने उपचार को सरल व सफल बनाया जा सकता है। उपासना, साधना, मर्यादित जीवन ,सदाचार ,संयम, परोपकार, दया, करुणा ऐसे यदि व्यक्ति गुनो को धारण करता है ।तो उसकी मानसिक स्थिति शुद्ध रहती है तो उसके शरीर के सभी रोग धीरे–धीरे दूर हो जाते हैं । जो प्रकृति का एक मूल सिद्धांतों में से भी आता है। कि प्राकृतिक चिकित्सा शरीर मन और आत्मा तीनों की चिकित्सा एक साथ करती है।

3.5 जीवनी शक्ति

मानव जीवन की प्रगति में सबसे महत्वपूर्ण उसका स्वास्थ्य को माना गया है। स्वस्थ जीवन के लिए जीवनी शक्ति को प्रमुख आधार बताया गया है। जीवनी शक्ति के आधार पर प्राणी स्वस्थ रहते हैं। जीवन जीते हैं जीवन की सभी प्रकार की क्रियाकलापों को करते हैं। और जीवनी शक्ति के आधार पर संपूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्त करके लोक कल्याण के मार्ग को अपनाकर जीवन को सेवा सत्कार कर्तव्य के अनुसार डालकर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी की जाती है।

जीवनी शक्ति को योग शास्त्रों में **प्राण वायु** प्राण तत्व के नाम से भी जाना गया है अलग–अलग विद्वानों ने जीवनी शक्ति को अपने–अपने ढंग से परिभाषित भी किया है। जो जीवन को चलाने में सहायक है । जो जीवन की रक्षा करती है जो जीवन की क्रियाकलापों को संजोकर के मानव जीवन को उसके लक्ष्य तक पहुंचाती है। मानव को स्वस्थ प्रदान करती है मानव को सुख समृद्धि जीवन जीने के लिए क्रियाशील करती

है ऐसी शक्ति को जीवनी शक्ति कहा गया है। योग ग्रंथों में हट प्रदीप का घर में सहायता शिव संहिता और हठयोगी ग्रंथों में जीवनी शक्ति को प्राणवायु के नाम से जाना गया है । जिसे अपनाकर के व्यक्ति प्राणायाम के माध्यम से अपनी जीवनी शक्ति का विस्तार भी कर सकता है। ऐसी ऊर्जा चेतन आत्मक सकती है। जो प्राणी को जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है जीवन को स्वास्थ्य प्रदान करती है जीवन को उन्नति शील बनाती है। उसे ही जीवनी शक्ति कहा गया है जिन व्यक्तियों के जीवनी शक्ति में कमी आ जाती है। उनके मन में निश्चित काम क्रोध लोभ मोह दम द्वेष ईर्ष्या जैसे अवगुण दुर्गुण बड़े लगते हैं इसलिए जीवनी शक्ति का विकास करना अति आवश्यक है। जीवनी शक्ति के अभाव में व्यक्ति में दौड़ लेता प्राणों की कमी शरीर में रोग दोष पनपने लगते हैं शरीर कमजोर होकर वृद्ध को प्राप्त हो जाता है । शरीर में विकृतियां बीमारियां उत्पन्न होने लगती हैं जीवनी शक्ति के अभाव में शरीर नीरस बन जाता है। और पूरी तरह से वह विकृतियों से गिर जाता है। इसलिए जीवनी शक्ति का विकास अत्यंत आवश्यक माना गया है। जिस व्यक्ति की जीवनी शक्ति की कमी नहीं होती है। जिनमें जीवनी शक्ति की मात्रा अधिक होती है उनमें उत्साह साहस धैर्य तत्व ज्ञान की प्राप्ति होती है। उनमें पवित्रता प्रखरता मर्यादा सच्चरित्र का इसने के साथ–साथ पराक्रम और उस और वीरता के गुण भी देखे जाते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति भी इसी जीवनी शक्ति की सहायता से प्राप्त की जाती है जीवनी शक्ति ही जीवन जीने की कला है जो व्यक्ति को उचित जीवन जीने के लिए आगे अग्रसर करती है इसलिए जीवनी शक्ति का विस्तार बहुत ही आवश्यक है । जीवनी शक्ति के विस्तार से उसके विकास से जीण रोग या तीव्र रोग सभी रोग दूर हो जाते हैं शरीर स्वास्थ्य के लिए जीवनी शक्ति अत्यंत आवश्यक मानी गई है। जीवनी शक्ति के अभाव में ही व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। शरीर के सभी क्रियाकलापों जीवनी शक्ति की कमी होने पर कार्य करना बंद कर देते हैं। तभी हार्ट अटैक हृदय शूल जोड़ों में दर्द पेट में दर्द आंतों का अल्सर विभिन्न प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियां भी उत्पन्न होती हैं। जीवनी शक्ति जीवन जीने की उर्जा है। ऊर्जा को व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक जीवन जीने से प्राप्त कर सकता है। प्रकृति माने अथाह भंडार के रूप में जीवनी शक्ति को प्रकृति में भर के रखा है कोई भी व्यक्ति प्रकृति के नियमों का पालन करके उस जीवनी शक्ति को प्राप्त कर सकता है । वह आहार के माध्यम से विचार के माध्यम से व्यवहार के माध्यम से और अपने वातावरण को शुद्ध करके जिमी शक्ति का विस्तार और विकास कर सकता है आइए हम जीवनी शक्ति के विकास और विस्तार के लिए उपायों की चर्चा करते हैं।

3.5.1 जीवनीशक्ति बढ़ाने के उपाय

आइए हम जीवनी शक्ति के विकास और विस्तार के लिए उपायों की चर्चा करते हैं।

- **प्रेम भाव**

जब हम प्रकृति में समस्त प्रकृति के प्रति एक प्रेम भाव मन में रखते हैं तब हमारे मन से ईर्ष्या द्वेष की भावना नहीं रहती है और सभी में उस परमात्मा सत्ता को देखते हुए आत्म सर्वभूतेषु की भावना रखकर मन को जब आगे बढ़ाते हैं तो निश्चित ही मन को बहुत शांति मिलती है और इससे हमारी जीवन शक्ति का भी विकास होता है।

- **सदाचार एवं संयम**

  जब हम सदाचारी की भावना से ओतप्रोत होते हैं और संयमित जीवन जीते हैं हम इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का जब हम सतत अभ्यास करते हैं तो निश्चित रूप से हमारे जीवन में जीवनी शक्ति का विस्तार होता है।

- **परोपकार की भावना**

  जब हम परोपकार की भावना रखते हैं दूसरों का उपकार करते हैं दूसरों के हित में अपना हित देखते हैं दूसरों के दुखों में हम भागीदारी होते हैं तो निश्चित रूप से वह परमपिता परमात्मा हमारे दुखों को भी कम करता है और हमारे अंदर उत्साह साहस जैसी भावनाओं का विकास होता है।

- **ईश्वर उपासना**

  ईश्वर की उपासना से भी जीवनी शक्ति का विस्तार होता है जब भी व्यक्ति अपने धर्म अपने समाज और अपनी संस्कृति के अनुसार अपने ईस्ट का ध्यान करता है जब करता है साधना करता है तो निश्चित रूप से उसके जीवन में सकारात्मक आती है और वही सकारात्मक मानव जीवन को को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान करती है।

- **आत्मविश्वास एवं आत्म संतोष**

  व्यक्ति के जीवन में जब आत्मविश्वास बढ़ता है और आत्म संतोष बढ़ता है तो निश्चित रूप से उसके जीवन में खुशियां, उत्साह, उल्लास बनने लगता है जो व्यक्ति के सकारात्मक जीवन को आगे बढ़ाने में प्रेरक है।

- योग व्यायाम साधना भारतीय संस्कृति में योग की परंपरा सबसे महत्वपूर्ण मानी गई है योग व्यायाम की शैली को अपना कर आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, ध्यान और समाधि जैसी विशिष्ट साधनाओं को करके व्यक्ति अपनी जीवनी शक्ति को विस्तारित करके मानव जीवन को पूर्णता तक पहुंचा सकता है।

- **सकारात्मक चिंतन**

  हमेशा सुखद अच्छे पवित्र चिंतन में अपने मन को संजोकर रखता है तब उसमें आशा, उत्साह, शुभ, सुंदर, प्रेम, करुणा, उदारता, सेवा,दया, ममता जैसे गुण विकसित होते हैं जो व्यक्ति को निश्चित

रूप से निरोग सुखी और उज्जवल भविष्य की ओर ले जाने में सहायक होते हैं ऐसे विचार रोगों से मुक्ति दिला करके शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त कराने में सहायक हैं।

- **चित्त प्रसादन के उपाय**

  महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में चित्त प्रसारण के उपाय बताएं हैं जिनको करने से निश्चित रूप से व्यक्ति की दिनचर्या उनकी मानसिकता उनका व्यवहार पूरी तरह से सकारात्मक होता है । और व्यक्ति मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के भाव से ओतप्रोत हो जाता है। जिससे उनकी जीवनी शक्ति का भी विस्तार होता है। जब मन प्रसन्न होता है । मन उत्साह से भरा होता है मन में दया करुणा के भाव भरे रहते हैं । तो व्यक्ति निश्चित रूप से इस संसार में किसी से कलह उत्पन्न नहीं करता वह एक पुण्य आत्मा की तरह निश्चल पवित्र मन से इस संसार में विचरण करता है। और वह हमेशा पॉजिटिविटी से भरा रहता है उसकी जीवनी शक्ति में हमेशा विकास होता है।

- **प्राणायाम**

  जब व्यक्ति योग के अंगों का आत्मसात करता है। जिनमें प्राणायाम व्यक्ति की जीवनी शक्ति का विस्तार करने में सबसे अहम भूमिका निभाता है। क्योंकि प्राणों से ही व्यक्ति के जीवन का विकास हुआ है। प्राणों से ही व्यक्ति का जीवन चलता है हठयोग ग्रंथों में प्राण और उप प्राण मुख्य रूप से 10 वायु के नाम से जानी जाती है। जिसमें प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान मुख्य रूप से प्राण की भूमिका निभाते हैं । प्राणायाम से व्यक्ति की जीवनी शक्ति का विस्तार होता है।

- **यम नियम और अष्टांग योग का पालन**

  जब व्यक्ति महर्षि पतंजलि के द्वारा बताए गए अष्टांग योग का पालन करता है। जिनमें हम अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह के साथ–साथ नियमों का भी पालन करता है। जिनमें षोच, संतोष, ,तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रनिधान करता है तो निश्चित रूप से व्यक्ति के मन में लोगों के प्रति सत्य बोलने की आदते बढ़ती हैं। हिंसात्मक प्रवृत्ति से मुक्त होता है। चोरी करने के भाव से मुक्त होता है अपरिग्रह नहीं बनता व सेवा भाव के साथ–साथ अपनी जीवन विचरण करता है। साथ ही साथ अपने शरीर एक मानसिक रूप से शुद्धि करता है संतोष से जीवन जीता है तप के साथ अपनी मेहनत करता है। कर्तव्य का पालन करता है और ईश्वर प्रणिधान, स्वाध्याय के माध्यम से ईश्वर की भक्ति भी करता है। इसलिए यम, नियम के पालन करने से भी व्यक्ति के जीवन में शक्ति का विकास होता है।

- **प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि**

व्यक्ति योग दर्शन के अनुसार अष्टांग योग के जो अंतरंग साधन बताए गए हैं। जिनमें धारणा, ध्यान समाधि के साथ–साथ प्रत्याहार की साधना करता है। तो व्यक्ति का आहार विहार भी शुद्ध होता है साथ ही प्रकृति के अनुरूप बनता है इससे व्यक्ति की जीवनी शक्ति का विस्तार होता है। धारणा, ध्यान और समाधि का जब पालन करता है तो उसकी धारणा अच्छी बनती है । ध्यान पुष्टि होती की ओर ले जाता है उसके मन में सकारात्मकता आती है । समाधि ,सेवा, अखंड आनंद की अनुभूति करके अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाने का प्रयास करता है।

- **विश्राम, नींद**

  जब व्यक्ति पूरी तरह से शारीरिक काम करने के पश्चात उसको शारीरिक, मानसिक थकान को दूर करने के लिए विश्राम, आराम और प्रॉपर नींद की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति पूरी तरह से स्वस्थ रहने के लिए पूरी तरह से नींद लेता है। और विश्राम करता है समय के अनुसार अपने जीवन को चलाता है। जिससे उसके जीवन में उत्साह, धैर्य ,यम, नियम के पालन से आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, स्वाध्याय समुचित रूप से करने के पश्चात व्यक्ति यदि अच्छे से प्रॉपर निद्रा भी लेता है मनोरंजन के लिए गेम खेलता है। प्रसन्न रहता है सात्विक आहार विहार का ख्याल रखता है तब उसके जीवन में सकारात्मकता आती है और उसका जीवनशक्ति का विकास होता है।

3.5.2 इसके साथ–साथ अन्य उपाय भी है जो जीवनी शक्ति को विकास में सहायक है

- व्यक्ति को हमेशा प्रातः काल जागना चाहिए ।
- स्वाध्याय करना चाहिए ।
- अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए।
- आस्तिकता भरा जीवन जीना चाहिए।
- परमात्मा सत्ता पर विश्वास करना चाहिए।
- शरीर मन व अंतकरण को शुद्ध रखना चाहिए।
- संतोष धैर्य बनाए रखना चाहिए ।
- बुरी संगत व दुर्गुणों से दूर रहना चाहिए।
- सभी जीवों के प्रति दया का भाव रखना चाहिए ।
- कुकर्मी लोगों का साथ छोड़कर ईश्वर के बने हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

- ज्ञानवान होना चाहिए ईर्ष्या द्वेष काम क्रोध व लोभ से मुक्त होना चाहिए।
- अनीति की राह को त्याग कर नीति पर चलना चाहिए ।
- अपराधिक प्रवृत्ति में रुचि नहीं रखना चाहिए।
- संवेदनशील और हृदयवान होना चाहिए सदैव प्रसन्न होना चाहिए।
- आत्म विश्वासी होना चाहिए समय, धन, इंद्रियों का सदुपयोग करना चाहिए।
- उपासना, साधना, आराधना में विशेष कर रुचि रखने चाहिए ।
- यम नियम के साथ–साथ ध्यान योग, मंत्रयोग, कर्म योग, लय योग और श्रेष्ठ जीवन के लिए अच्छाइयों से हमेशा जुड़े रहना चाहिए।
- यह सब की सब व्यक्ति को सकारात्मक जीवन जीने के लिए प्रेरित करती हैं।
- जिस व्यक्ति का जीवन सकारात्मक होता है और उसकी जीवनी शक्ति का विकास भी होता है।

3.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न – 1. तीव्र रोग कैसे उत्पन्न होते हैं ?

अ.गलत खानपान ब. गलत आहार विहार स. अनियमित जीवन द. सभी

प्रश्न – तीव्र रोग के लक्षण क्या है ?

अ. कैंसर ब. कब्ज स. सर्दी खांसी द. मधुमेह

प्रश्न– 3. मोटापा किस प्रकार का शारीरिक रोग के अंतर्गत आता है।

अ. जीर्ण रोग ब. तीव्र रोग स. अ ब दोनों द. कोई नहीं

प्रश्न– 4. जीवनी शक्ति कैसे बढ़ती है?

अ. प्रेम भाव ब. सदाचार संयम स. परोपकार सेवा द. उपरोक्त सभी

प्रश्न– 5. तीव्र रोगों की समय सीमा क्या होती है?

अ. 1 से 7 दिन ब. 90दिन स. 1 वर्ष द. 5 वर्ष

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–6. तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते हैं।

प्रश्न–7. जीर्ण रोगों के उपचार में समय बिल्कुल नहीं लगता।

3.7 सारांश

प्रकार इस इकाई के अंतर्गत हमने मानव जीवन को विकसित करने तथा रोगों के जो दो प्रकार बताए गए हैं जीर्ण रोग और तीव्र रोग इन दोनों रोगों को जाना इन के कारणों को जाना किन प्रकार से इनके उत्पन्न होने से व्यक्ति के जीवन में कैसे–कैसे रोग उत्पन्न होते हैं तीव्र रोगों को दूर करने के उपाय एवं जीर्ण रोगों को दूर करने के उपायों को प्राकृतिक तरीके से हमने जाना इसके साथ साथ में जीवनी शक्ति क्या है । जीवनी शक्ति का विकास कैसे होता है? जीवनी शक्ति को जीवन में कैसे बढ़ा सकते हैं। उसको अपनाने के लिए यम नियम के साथ–साथ में आध्यात्मिक जीवन शैली जीने के लिए कैसे प्रेरित किया जा सकता है ?कौन सी साधना को करके हम रोगों को दूर कर सकते हैं। उनके बारे में हमें जानकारी प्राप्त की। जो निम्न बिंदुओं पर आधारित है अप्राकृतिक खानपान प्राकृतिक जीवन शैली आहार–विहार के संदर्भ में जब दूषित विषैली दवाइयां विषाक्त खाद्य पदार्थ विरोध खाद्य पदार्थ जब हम खा लेते तो हमारे शरीर में विषाक्त विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने लगते हैं, जिनके कारण हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं शरीर में रोग जो होते हैं।

वह दो प्रकार के होते हैं एक तीव्र रोग और जीर्ण रोग जिस रोग से तेजी से आए क्षण भर के लिए आए कुछ पल भर के लिए आए जिनका समय सीमा 1 दिन से लेकर 1 सप्ताह तक रहती है ऐसे लोगों को तीव्र रोग कहते हैं। उल्टी, जुकाम, सर्दी, खांसी आदि।

जीर्ण रोग वह होते हैं जो लंबे समय तक रहते हैं। जिनका निदान करने में समय लगता है। जैसे मधुमेह अप्रकृतिक जीवन शैली के बारे में सीखा हमने कि व्यक्ति किस प्रकार जीवन शैली जीता है जिसके कारण से रोग होते हैं। सन्मार्ग पर चलने पर व्यक्ति को किस प्रकार से जीवन शक्ति का विकास होता है तो उस जीवनी शक्ति के बारे में जाना जीवनी शक्ति की कमी से व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। वह हताशा निराशा भरा जीवन जीता है उसके अंदर कमजोरी आ जाती है उसका जीवन खोखला हो जाता है। जिस व्यक्ति में जीवन शैली जीने की कला होती है उसकी जीवनी शक्ति का विकास होता है । जिनमें शक्ति अधिक होती है वह हमेशा चिंता, भय, आशंका, असंतोष, अपराधी प्रवृत्ति इन सब से दूर रहता है। मुक्त

रहता है इस प्रकार से वह सकारात्मक को जीता है। साथ ही साथ पतंजलि ने साधन के उपाय के साथ–साथ में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि जैसे जीवनी शक्ति को विकसित करने के उपाय भी बताए हैं। क्योंकि ग्रंथों में आसन, प्राणायाम, मुद्रा बताई गई है इसको हम अपना करके अपने जीवन को हम सकारात्मक बना सकते हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1. **द. सभी**

प्रश्न –2.. **स. सर्दी खांसी**

प्रश्न –3.. अ. **जीर्ण रोग**

प्रश्न –4. **द. उपरोक्त सभी**

प्रश्न –5. **अ. 1 से 7 दिन**

प्रश्न–6. **सत्य**

प्रश्न–7. **असत्य**

3.09 निबंधात्मक प्रश्न–

1. तीव्र रोग से आप क्या समझते हैं ? तीव्र रोग के अर्थ, परिभाषा एवं अवस्था का विस्तार से वर्णन करें।
2. जीर्ण रोग क्या है? जीर्ण रोग के कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सीय उपचार को विस्तार से वर्णन करें
3. किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें– (1) तीव्र रोग (2) जीर्ण रोग (3) चिन्ता
4. तीव्र रोग क्या है तीव्र रोग के लक्षण उनके कारण एवं प्राकृतिक चिकित्सा उपचार का विस्तार से वर्णन करें
5. जीवनी शक्ति क्या है जीवनी शक्ति की कमी से होने वाली हानियों को अपने शब्दों में विस्तार से वर्णन करें।
6. जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाले उपचारों को विस्तार से वर्णन करें।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य कृ चिकित्सा उपचार के विविध आयाम, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उ.प्र.
- केदारनाथ गुप्त– नवीन प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, उ.प्र. ।
- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य – जीवेम शरदः शतम, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उ.प्र.।
- डॉ. राकेश जिन्दल – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उ.प्र.
- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य – चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, उ.प्र.
- प्राकृतिक चिकित्सा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड, भारत।

खण्ड–2 जल चिकित्सा

परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा [MAYO-106] पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड है, जिसका शीर्षक जल चिकित्सा के संदर्भ में बताया गया है, जिसमें जल चिकित्सा का स्वरूप, जल के प्रकार एवं जल तत्व से होने वाली चिकित्सा के बारे परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–4 जल का महत्व, जल के गुण, विभिन्न तापक्रम के जल का शरीर पर प्रभाव।

इकाई–5 जल चिकित्सा के सिद्धान्त, जल के प्रयोग की विधियाँ जलपान, साधारण व घर्षण स्नान, कटि स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नान, रीढ़ स्नान, उष्ण पाद स्नान।

इकाई–6 एनिमा की विधि एवं परिचय, एनिमा में प्रयुक्त होने वाले पानी, तेल तथा विविध रोगों में एनिमा का प्रयोग एवं सावधानियां।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत जल चिकित्सा का परिचय, जल चिकित्सा के सिद्धान्त, महत्त्व , जल के गुण , जल के विभिन्न तापक्रम का शरीर पर प्रभाव, साथ साथ जल चिकित्सा के विविध चिकित्सीय प्रयोग, जलपान, विभिन्न प्रकार के

जल स्नान, सम्पूर्ण व स्थानीय जल स्नान, भाप स्नान, के साथ जल चिकित्सा के आंतरिक प्रयोग, एनिमा, एनिमा में प्रयोग होने वाले, जल , तैल, विभिन्न रोगों में प्रयुक्त होने वाला एनिमा आदि के विषय में विस्तार पूर्वक जान सकेंगे।

इकाई– 04

जल का महत्व, जल के गुण, विभिन्न तापक्रम के जल का शरीर पर प्रभाव

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 जल तत्व

4.4 अर्थ एवं स्वरूप

- 4.4.1 मृदु
- 4.4.2 अस्थायी कठोर
- 4.4.3 स्थायी कठोर

4.5 जल तत्व का महत्व

- 4.5.1 धार्मिक ग्रंथो में जल का महत्व

4.6 जल के गुण

4.7 विभिन्न तापक्रम के जल का शरीर पर प्रभाव

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.9 सारांश

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा कुल पांच तत्वों पर आधारित चिकित्सा है। इसमें जल तत्व का विशेष महत्व भी माना गया है। पांच तत्वों में जल तत्व जीवन के लिए आहार के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाला तत्व है। क्योंकि जल को जीवन कहा गया है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है । क्योंकि संपूर्ण शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना है। सभी तत्व जब शरीर सम्मिलित रहते हैं। तब शरीर निरोग बना रहता है। यदि किसी प्रकार से एक भी तत्व में कमी आती है। तो निश्चित रूप से शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। इसलिए पांच तत्वों में जल तत्वों का काफी महत्व माना गया है। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम जल की चिकित्सा जल के प्रयोग, जल से होने वाले लाभ तथा विभिन्न रोगों में जल का उपयोग करके उनको दूर करने की विधि का विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। जल के प्रकार उनके लाभ तथा उनके प्रयोग विधियों को हम कैसे अपने जीवन में प्रयोग कर सकें इसकी पूरी विधि और सावधानियां की जानकारी इस प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई में हम जल के महत्व के बारे में जान पाएंगे।

- जल के गुणों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- जल के प्रकार तथा विभिन्न तापक्रम पर शरीर पर क्या–क्या प्रभाव पड़ते हैं? इसकी विशिष्ट जानकारी इस इकाई के अंतर्गत प्राप्त कर पाएंगे।

4.3 जल तत्व

संपूर्ण जगत में जल तत्व पाया जाता है। जल ही जीवन है। जिस प्रकार पृथ्वी के तिहाई भाग में जल और एक तिहाई भाग में पृथ्वी तत्व मिट्टी है। ठीक उसी प्रकार मानव शरीर में पानी की मात्रा अधिक होती है। संपूर्ण पृथ्वी तल के नीचे जल पाया जाता है । पृथ्वी में जल अन्य तत्वों से अधिक है। उसी प्रकार हमारा शरीर भी रक्त के नलियों से भरा हुआ है। इसी से मनुष्य के आहार में ठोस पदार्थ कम तथा तरल पदार्थ अधिक मात्रा में होता है। जल एक रासायनिक पदार्थ है। जो की जीवन के सभी तत्वों के रूपों में अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अधिकतर जल शब्द का प्रयोग तरल के रूप में किया जाता है। लेकिन जल ठोस और द्रव्य के रूप के साथ–साथ गैस के रूप में भी पाया जाता है। ठोस में बर्फ के रूप में पाया जाता है। गैस के रूप में भाप के रूप में पाया जाता है। और तरल के रूप में पीने वाला महासागरों नदियों में पाया

जाता है। जल संपूर्ण मानवता की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जैसा कहा गया है " कि जल ही जीवन है" क्योंकि जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। स्वच्छ और ताजा जल जो कि मानव के आहार के रूप में भी ग्रहण किया जाता है। इसके लिए निरंतर प्रयास चलते रहते हैं। पेयजल की उपलब्धि में निरंतर सुधार भी हुआ है । यदि विद्वानों ने अनुमान लगाया गया। कि 2030 तक दुनिया की आधी से अधिक जनसंख्या जल पर आधारित जोखिम का सामना करना पड़ेगा । जल को बचाने की अति आवश्यक है। और जल का सदुपयोग करने की आवश्यकता है। जल के प्रति सभी को जागरूक होने की भी आवश्यकता है।

4.4 जल तत्व का अर्थ एवं स्वरूप

जल एक रासायनिक पदार्थ है। जिसमें एक अणु में दो हाइड्रोजन परमाणु होते है । जो एक आक्सीजन परमाणु के साथ सहसयोजी के द्वारा मिले होते हैं। यह प्रकृति में तीन सामान्य अवस्थाओं में पाया जाता है। जो पृथ्वी पर भिन्न भिन्न रूपों में प्राप्त होता है। जल जब ठोस रूप में बर्फ, द्रव के रूप में समान्य पीने वाला , जल को कुएं, श्रोतो से निकलने वाला जल। गैस के रूप में उड़ते बादल के रूप में पाया जाता है

जल एक स्वाद रहित और गध रहित द्रव है। जल और बर्फ का रंग आन्तरिक कोई रंग नहीं होता , लेकिन यह पीला और हल्का नीला होता है। यह रंगहीन ही होता है, बर्फ भी रंगहीन प्रतीत होती है। जल वाष्प भी एक गैस के रूप में कोहरे के सदृश्य प्रतीत होता है। जल पारदर्शी होता है। और इसीलिये जलीय पौधे पानी के भीतर जीवित रह सकते है।

क्योंकि सूर्य का प्रकाश की सहायता से एक वर्ष के लिए भाप रूप में बनता है। जल एक बहुत ही प्रबल विलायक है। यह सभी में समान रूप से विलय हो जाता है।, यह कई प्रकार के पदार्थों को अपने में विलेय कर लेता है। जैसे, नमक, चीनी, अम्ल, क्षार, गैसे।

जल कई प्रकार के पदार्थों को अपने में मिला कर अपने स्वरुप बना सकता है। जिससे इसे कई प्रकार की स्वाद और गंध प्राप्त होती है। जीव अपनी संवेदन शक्ति के द्वारा ये पता लगाने में सक्षम होता है।

जल के अध्ययन के लिये विशेष पद्धति है । जिसे जल विज्ञान के रूप में जाना जाता है। जल विज्ञान (हाइड्रोलोजी) वह विज्ञान है । जिसमे पूरी पृथ्वी पर जल की गतियों, इसके वितरण और इसकी गुणवत्ता का अध्ययन किया जाता है,

जल प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की क्रिया में भी बहुत महत्वपूर्ण है। प्रकाश सष्लेशी कोशिकाए सूर्य की ऊर्जा के द्वारा उपयोग करके जल के अणु को हाइड्रोजन और आक्सीजन में बदल देती है। हाइड्रोजन, कार्बनडाइआक्साइड के साथ मिलकर ग्लुकोज बनाती है। इस प्रक्रिया में आक्सीजन बनती है। सभी

जीवित कोशिकायें इस प्रकार के इंधन का उपयोग करती है। और सूर्य की ऊर्जा को प्राप्त करने के लिये हाइडोजन और कार्बन का आक्सीकरण करती है। इस प्रक्रिया में जल और कार्बनडाइ आक्साइड में परिवर्तन आता है। अनेक जलीय जीवों का जीवन यापन होता है।

राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद खाद्य एवं पोषण बोर्ड के द्वारा 1945 में पानी के अन्तर्ग्रहण के लिये एक मूल सलाह दी गयी "विभिन्न व्यक्तियों के लिये एक सामान्य मानक है। भोजन की प्रत्येक कैलोरी के लिये 1 मिली लीटर इस मात्रा का अधिकांश भाग तैयार भोजन में ही होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद के द्वारा दी गयी नवीनतम आहार सन्दर्भ अन्तग्रहण रिपोर्ट में सलाह दी गयी। पुरूषों के लिये कुल 3.7 लीटर और महिलाओं के लिये कुल 2.7 लीटर जल की जरूरत होती है। विषेश रूप से, गर्भवती और स्तनपान करने वाली महिलाओं को जल की सही मात्रा बनाये रखनेके लिये अतिरिक्त तरल पदार्थ की जरूरत होती है।

चिकित्सा संस्थान के अनुसार

औसतन एक महिला का 2.2 लीटर और एक पुरूष को 3.0 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से 20 प्रतिशत जल खादय पदार्थों के साथ ही शरीर में जाता है। जल को कई रूपों में शरीर से उत्सर्जित किया जाता है। जैसे–मूत्र, मल, पसीने एवं श्वास के दौरान जल वाष्प का उत्सर्जन।

जल तत्व को जीवन कहा गया है। पांच तत्वों में प्रमुख होने के कारण से आहार के रूप में भी ग्रहण किया जाता है। जल के कारण संपूर्ण सृष्टि में शीतलता आती है। जल का उपयोग मानव अपने जीवन में हर तरह से करता है। इसे शुद्धि के रूप में भी उपयोग करता है। और जलपान के रूप में भी उपयोग करता है। इस प्रस्तुत इकाई में जल के महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। जल का महत्व मानव जीवन में इस प्रकार है। जैसे अन्य सभी तत्वों का उपयोग होता है। जल स्वभाव से तरल होता है ।और इसकी बहुत सारी विशेषताएं हैं । जल तरल होने के साथ–साथ शीतल भी होता ह जो लोगों की प्यास को भी बुझाने का काम करता है। जल घुलनशील है। वह सभी पदार्थों में आसानी से घुल जाता है। जल के उपयोग से मानव अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के विकासात्मक कार्य भी किए हैं। जल के कारण सभी प्रकार की दवाइयां सभी प्रकार के प्रयोग और कई प्रकार से यह उपयोग में लाया जाता है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जल का प्रयोग मानव के जीवन में हर पल हर वक्त होता है।

जीवन में जल का उपयोग

दैनिक जीवन में मानव सुबह से लेकर शाम तक जल का उपयोग करता है सुबह प्रातः कालीन सोच इत्यादि से लेकर शुद्धि क्रिया स्नान करना जलपान करना पेड़ पौधों की सिंचाई करना वेस्टन की धुलाई

करना घर की सफाई करना के साथ–साथ खाना पकाने और पशु, पक्षियों, पशुओं को जल को पिलाने आदि के रूप में या अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। क्योंकि केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि सृष्टि में सभी उपस्थित जीव, जंतु , पशु, पक्षी , पेड़, पौधे सभी को जीवन की प्राप्ति जल तत्व से होती है । जल को अनेक रूपों में प्रयोग किया जाता है जो निम्न है।

- प्रातः कालीन शौच एवं शुद्धि क्रिया इत्यादि में उपयोग।
- खाने–पीने के उपयोग में स्नान करने के उपयोग में कपड़ा धोने में उपयोग।
- बर्तन धोने में उपयोग।
- धुलाई और सफाई में उपयोग।
- पशु पक्षियों को जलपान के रूप में उपयोग।
- पेड़ पौधों की सिंचाई के रूप में उपयोग।
- पदार्थों को बनाने के रूप में उपयोग।

धर्म ग्रंथो में जल की महिमा

"आप इध्दा उभेषजोशपो अर्भाव चाटनी ।।

आपस सर्वस्य भेषजो स्तास्ते सुञ्चन्तु क्षेत्रियात्। (अथर्ववेद 317/5)

अर्थात – जल ही औषधि है, जल सभी रोगों को दूर करता है। अतः यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के बचाये।

जैसे – जलाषणभिर्षिसिंचत जलाषेणोपसिंचत।

जलाषमुग्रं भेषजं तेननोमुद जीवसे ।। जूम06 अ०ज० न02

अर्थात भगवान कहते हैं कि जल से अभिसिंचन करो, जल से उपासना करो। जल सर्व प्रधान औषधि स्वरूप है। इसके सेवन से जीवन सुखमय बनता है। और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्धक होती है।

"अमृतं वै आप" तै०आ० 1/16

अर्थात जल ही अमृत प्रदान करने वाला है।

शन्नों देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरमिस्रवन्तुनः । ऋ010/9/4

अर्थात – हे भगवन। दिव्य गुणों से युक्त जल हमारे लिये सुखकारी हो, अभिष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पान करके के सम्पूर्ण रोगों का नाश करे तथा रोगों से उत्पन्न होने वाले भय को दूर करे और हमारे सामने बहे।

इन सभी रूपों में मानव जल तत्व का उपयोग अपनी दिनचर्या के रूप में प्रतिदिन करता है। यह सभी क्रियाएं मानव जीवन के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। जल के अभाव में इनका व्यवहार संभव नहीं इन सभी रूपों में मानव जल तत्व का उपयोग अपनी दिनचर्या के रूप में प्रतिदिन करता है। यह सभी क्रियाएं मानव जीवन के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। जल के अभाव में मानव जीवन ना तो स्वस्थ को प्राप्त होगा। और ना ही आनंद को। क्योंकि जीवन जीने के लिए आहार की अत्यंत आवश्यकता होती है। और खाने–पीने के लिए हमें आहार में पेय पदार्थ की भी जरूरत होती है। उसे पाचन क्रिया को पूर्ण करने के लिए अग्नि तत्वों के साथ–साथ जल तत्व भी आवश्यक है। क्योंकि जल तत्व हमारे शरीर में तरलता उत्पन्न करके शरीर के सभी अंग प्रत्यङ्गो को सुचारू रूप से चलने का कार्य करता है। और अनावश्यक रूप से हमारे शरीर की विजाती द्रव्यों को बाहर निकलना और विषाक्त पदार्थो को शरीर से बाहर निकलने का भी काम करता है।

4.5 स्वास्थ रक्षा के रूप में उपयोगी जल

संपूर्ण सृष्टि में पांच तत्वों के समीकरण से ही इस सृष्टि का संचालन होता है। सभी जीव जंतु, पशु , पक्षी की उत्पत्ति पंचतत्व से हुई है । इसलिए यदि किसी प्रकार से मनुष्य रोगों से ग्रसित होता है। तो उन रोगों को दूर करने के लिए पांच तत्वों का सहारा लिया जाता है। में जल तत्वों का विशेष महत्व है। जल जिस प्रकार उत्तम स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है। वेदों पुराणों से लेकर के हमारे धर्म ग्रंथ आयुर्वेद में भी जल का उपयोग औषधि के रूप में किया जाता है। जब किसी को वमन जैसी समस्याएं होती हैं। तब उनको जलपान के माध्यम से वामन की प्रक्रिया कराकर के शरीर की गर्मी को दूर करने के काम में लाया जाता है। साथ ही साथ जल का उपयोग वमन, शुद्धि क्रिया, धोती, जलनेति आदि के रूप में किया जाता है। आयुर्वेद विज्ञान के प्राचीन आचार्य ने जल की एक विशेषता बतलाई है। कि इससे प्यास व तनाव आदि सब दूर होते हैं जल से प्यास मिटती है, आलस्य दूर होता है, कब्ज जैसे समस्याएं भी इसके निजात में बहुत ही उपयोगी हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा चिकित्सकों ने जल स्नान, भाप स्नान एवं बर्फ सिकाई के माध्यम से अनेक बीमारियों को दूर करने में काफी उपयोगी माना है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्वों को उपचार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व भी माना गया है।

- **जलपान ग्रहण के रूप में**

जल का उपयोग दैनिक जीवन में मनुष्य आहार के रूप में उपयोग करता है । जिसमें स्वच्छ जल को पीने के काम में लाता है जल को पीने से शरीर की अशुद्धियां दूर होती हैं। रक्त का संचार होता है। और रक्त की कमी को दूर करता है । और शरीर को तरल बनाकर शरीर के सभी अंगों को सुचारू रूप से चलने का काम करता है। इसलिए शुद्ध पवित्र और प्रकृति से निकले हुए जल को जलपान के रूप में उपयोग करके मनुष्य अपने शरीर की स्वास्थ रक्षा भी करता है । क्योंकि जल से जीवन की उत्पत्ति हुई है। और जल से ही जीवन की वृद्धि भी होती है।

- **उष्णता को दूर करने व आग बुझाने के रूप में**

शरीर की उष्णता को कम करने व बाहय जगत में किसी प्रकार की जलती हुई अग्नि को बुझाने के लिए जल का उपयोग किया जाता है। जब किसी व्यक्ति को अधिक गर्मी लगती है। शरीर की ऊष्मा बढ़ जाती है । तब व्यक्ति शीतल जल का पान करके शरीर की आवश्यक गर्मी को दूर करके शरीर को स्वस्थ बनाए रखने का कार्य करता है , और प्यास को भी दूर करता है।

- **खेती में फसलों की सिंचाई के रूप में उपयोग ।**

किसान अपनी फसल को सूखने व गर्मी धूप से बचने के लिए खेतों में जल के माध्यम से सिंचाई करते हैं। जिससे उनकी फसल हरी भरी होकर परिपक्व बनती है। इसलिए जल का उपयोग सिंचाई के रूप में भी किया जाता है।

- **रासायनिक प्रयोग एवं उत्पादक में उपयोग**

जल का उपयोग विभिन्न प्रकार की रासायनिक दवाइयां एवं जैविक दवाइयां को बनाने एवं विभिन्न प्रकार के रासायनिक खाद्य पदार्थ को बनाने में जल का उपयोग किया जाता है। मनुष्य के जीवन से जुड़ी हर प्रकार की उपयोगी वस्तुओं में जल का उपयोग करके विभिन्न प्रकार की नई से नई चीज बनाई जाती हैं। वह चाहे खाद्य पदार्थ हो या पेय पदार्थ हो या फिर व्यक्ति के जीवन में उपयोग होने वाली अन्य सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री हो सभी में जल का उपयोग किया जाता है।

- **मनोरंजन के रूप में जल का उपयोग**

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के खेलो जैसे जलविहार खेलों में जल का काफी उपयोग माना गया है। साथ ही जिसमें वाटर स्केटिंग , नौकायन, सर्फिंग और गोताखोरी जैसे तैराकी आदि में जल काफी उपयोगी माना गया है। झीलों व नदियों के किनारे वाटर पार्क बनाकर लोग अपने मनोरंजन के लिए गर्मियों

के दिनों में स्नान और विभिन्न प्रकार के मनोरंजन संबंधित कार्यों में जल का उपयोग करते हैं। साथ ही साथ शादी विवाह बड़े धार्मिक कार्यों में जल के माध्यम से वहां की शुद्धि , स्नान, पवित्र कार्यों में जल का उपयोग किया जाता है।

- **मछली पालन एवम कृषि कार्य में उपयोग।**

विभिन्न प्रदेशों में मछली पालन हेतु बड़े–बड़े जलाशय बनाए जाते हैं। जिनमें मछलियां पाली जाती हैं। मछलियों के पालन में जल का उपयोग किया जाता है। साथ ही साथ सिंघाड़ा कमल मखाना आदि की खेती के लिए जल काफी उपयोगी माना जाता है। जिसके लिए किस बड़े–बड़े तालाबों को किसी के लिए उपयोग करते हैं। जिसमें जल को पर्याप्त भरकर उसमें अपनी खेती करके जीवन को व्यतीत करते हैं।

- **जल उद्योग**

जल उद्योग के अंतर्गत घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए जल का पेड़ के रूप में उपयोग किया जाता है। तथा जहां–जहां व्यर्थ में जल बह रहा होता है। उसको रोकने तथा जल संरक्षण के लिए भारत सरकार ने 1882 में कई स्थानों पर बहुत से अभियान चलाकर लोगों में जागरूकता फैलाने का कार्य किया । जल निगम के अन्तर्गत लोगों के द्वारा एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाया जाता है। क्योंकि भारत एक विकासशील देश होने के कारण कई क्षेत्रों में जल आसानी से उपलब्ध हो जाता है । तो कई ऊष्ण क्षेत्रों में जल आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाता । इसलिए वर्ष का जल संचय करने के लिए वाटर वेल्स , जल आपूर्ति नेटवर्क, जल शुद्धिकरण सुविधा, जल टैंक जल टावर आदि अभियान के माध्यम से जल संरक्षण का काम किया गया।

- **घरों की पुताई और शुद्धि क्रिया के रूप में**

घरों की रंगाई पुताई व शुद्धिकरण के रूप में जल का काफी उपयोग माना गया है। घर की लिपाई दीवारों की पुताई और स्वच्छता के लिए जल का उपयोग किया जाता है। जल के माध्यम से विभिन्न प्रकार के रंगों को घोल का घर की दीवारों की पुताई की जाती है। और विभिन्न प्रकार के घरेलू कार्यों में जल का उपयोग किया जाता है। जिससे घरों की अच्छे से शुद्धिकरण किया जाता है।

धर्म दर्शन और साहित्य के संदर्भ में जल का महत्व

धर्म ग्रंथो में जल का बहुत ही उपयोग बताया गया है । हिंदू , मुस्लिम, सिख इसाई सभी धर्म में जल को पवित्र और सबसे उपयोगी माना गया है। जो धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग में भी लाया जाता है। जल को अधिकांश धर्म में एक शुद्धि कारक माना जाता है। जिन धर्म में धार्मिक स्नान विश्वास उपवास शुद्ध आदि क्रियो में इसका उपयोग किया जाता है। हिंदू धर्म ईसाई धर्म इस्लाम धर्म सभी में जल के उपयोग

एवं विधि का विधान बढ़ाकर इसे विभिन्न प्रकार के पवित्र कार्यो में लाकर के शुभ काम किए जाते हैं। इसलिए धर्मो में जल से सम्बंधित नदियों को पवित्र नाम से पुकारा गया है।

4.5.1 धार्मिक ग्रंथो में जल का महत्व

ऋग्वेद में जल के महत्व को बताते हुए कहा गया है कि जल हमें जीवन की प्राप्ति करता है। जल से जीवन की रक्षा होती है। जल और सूर्य की किरने का संयुक्त रूप से प्रयोग करके सभी प्रकार की बीमारियों व रोगों से बचा जा सकता है। प्रातः कालीन सूर्य उदित होने पर सूर्य को अर्घ देने की जो परंपरा की बात कही गई है। वह इसी के माध्यम से बताई गई है। जिसमें सूर्य की तरफ से यदि हम सूर्य को जल चढ़ाते हैं। तो सूर्य की पढ़ने वाली करने जल को पारदर्शी करके शरीर से अनेक प्रकार के रोगों को दूर करती है।

ऋग्वेद के 10/ 137 /6 एवं अथर्ववेद के 3/7/5 में वर्णन मिलता है। कि भृगु ऋषि ने जल को उत्तम औषधि के रूप में माना है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिए समस्त रोगों को दूर करने के लिए अकेला ही काफी है। इसके प्रयोग से अनुवांशिक रोग भी दूर होते हैं । अथर्ववेद का मानना है कि हिमालय से निकलकर समुद्र तक मिलने वाली सभी नदियों की धाराएं दिव्य धाराएं हैं। इनका सेवन करने से हृदय की पीड़ा दूर होती है ,साथ ही साथ मन में संतोष और शांति का भाव उत्पन्न होता है। और अनेक प्रकार के मानसिक शारीरिक रोगियों से दूर करके शरीर को स्वस्थ बनाने वाला यह औषधि स्वरूप जल है।

यजुर्वेद 4/5 में जल को माता के समान माना गया है । कहां गया है कि जल स्थिरता और सुख देने वाला है । शक्ति एवं सौंदर्य को भी आने वाला माना गया है जिस प्रकार माता अपने बच्चों को दूध पिलाकर उसकी भूख और प्यास को मिटाकर सुख को प्रदान करती है । उसी प्रकार से धरती मां प्रकृति हमें जल के रूप में पान कराकर हमें प्यास से मुक्त कराकर हमें सुख और शांति प्रदान करने का कार्य करती है । इसी जल से समस्त प्राणियों का कल्याण होता है। और सभी प्राणियों की तृप्ति होती है। और सभी विकास की ओर अग्रसर होते हैं। वेद संहिताओं और ब्राह्मणों में बिजल के चिकित्सीय संकेत देखने को मिलते हैं। तृतीय ब्राह्मण 1/7/ 6/3 में जल को पेय पदार्थ में अमृत स्वरूप माना गया है। भारतीय ऋषि मुनियों ने सभी ने जल को देवता की उपाधि प्रदान की है । जल देवता के नाम से जाना जाता है। जो इंद्रियों की शक्ति के साथ–साथ शरीर और मन को शांत और पवित्र बनाने का कार्य करता है । शारीरिक मानसिक सभी प्रकार के रोगों का सामान जल के माध्यम से दूर किया जाता है। जल को मंत्रों से अभिभूत करके उससे सभी प्रकार के रोगों को दूर किया जाता हैं।

4.6 जल के गुण

सभी जीवों का जीवन को जल पर ही निर्भर है। जल ही जीवन है। वेदों में जल के गुणों के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। उसके द्वारा रोगों को दूर के सम्बन्ध में अनेक ऋचाए मिलती है।

जैसे – जलाषणमिर्षिसिंचत जलाषेणोपसिंचत।

जलाषमुग्र भेषजं तेननोमुद जीवसे ।। जृम06 अ०ज० न०2

अर्थात भगवान सभी को आदेश देते हैं कि जल से अभिसिंचन करो, जल से उपासना करो। जल ही सर्व प्रधान औषधि है। इसके उपयोग से जीवन सुखमय बनता है। और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्धक होती है।

"अमृतं वै आप" तै०आ0 1/16

अर्थात – जल ही अमृत प्रदान करने वाला तत्व है।

शन्नों देवी रमिष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयोरमिस्रवन्तुनः । ऋ010/9/4

अर्थात – हे भगवन। दिव्य गुणों से युक्त जल हमारे लिये सुखकारी, हो, अभिष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पान करने के लिये हो, सम्पूर्ण रोगों का नाश करे तथा रोगों से उत्पन्न होने वाले भय को दूर करे।

जल पंच महाभूतो में चौथा तत्व है। यह जीवन के लिये उतना ही महत्वपूर्ण जितना की भोजन और स्वास। मनुष्य के शरीर में 70 प्रतिशत भाग में जल होता है। हमारी आखों में 98.7 , प्रतिशत फेफड़ों में 79 प्रतिशत, हृदय में 79. प्रतिशत, रक्त में 80 प्रतिशत, हड्डियों में 25 प्रतिशत तथा हमारे मस्तिष्क में 90 प्रतिशत जल तत्व ही होता है। इस संसार का तो प्रारम्भ ही जल से हुआ है। अतः यह जल ही हमारा पोषण करने वाला है।

जल के मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

4.4.1 मृदु

4.4.2 अस्थायी कठोर

4.4.3 स्थायी कठोर

4.4.1 मृदु जल –

मृदु जल वह जल है को बहती नदी या तालाबों का जल होता है, बारिस का जल , कुओ आदि का जल मृदु होता है। यह स्वास्थ्य की दृष्टि से जल पान हेतु हितकारी नहीं होता है, परन्तु इस प्रकार

का जल साबुन में में घुलकर अधिक झाग उत्पन्न करता है। और जिससे कपडे अच्छी तरह से घुल जाते है। इसलिए इसे मृदुजल कहा जाता है।

4.4.2 अस्थायी कठोर जलः–

इस जल को उबालने या गर्म करने से उसकी कठोरता दूर हो जाती है। और वह मृदु हो जाता है। जैसे घड़ो में संग्रहित जल या भूमि पर एकत्र जल अस्थाई कठोर होता है।

4.4.3 स्थायी कठोर जलः–

यह जल हम पीने के लिये प्रयोग में लाते हैं । यह स्वास्थय की दृष्टि से हितकारी होता है। इस प्रकार के जल में खनिज पदार्थ अधिक होते हैं। जैसे गहरे कुओं एवं नल का पानी कठोर होता है। चूना आदि खनिज पदार्थों जो जल में आसानी से घुल जाते हैं। और वे जल को कठोर बना देते हैं। ऐसे जल में साबुन से झाग उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु कुछ अन्य भौतिक पदार्थों के संयोग से इसका स्वाद परिवर्तित होकर मीठा, नमकीन, कसैला, तीखा, खटटा आदि हो जाता है। वस्तुओं को गीला करना, ये सभी जल तत्व की प्रवृत्तियां है। शीतलता, सरलता, व्यापकता, हल्कापन, स्वच्छता, अस्थिरता आदि इसके प्राकृत गुण है।

जल में निम्नलिखित प्राकृतिक गुण पाए जाते हैं।

1.शीतलता का गुण
2.तरलता का गुण
3.व्यापकता का गुण
4. हल्कापन एवं वाष्प का गुण
5.स्वच्छता एवं निर्मलता का गुण
6.स्थिरता का गुण
7. द्रवता का गुण
8.कठोरता का गुण
9.सार्वभौमिक विलायक
10. उच्च ताप क्षमता एवं वाष्पीकरण की उच्च गर्मी।
11. जमने पर सामंजस्य, आसंजन और कम घनत्व का गुण।
12. रंगहीन का गुण
13. स्वादहीन का गुण
14. गंधहीन का गुण

✓ **शीतलता गुण**

जल का मुख्य गुण शीतलता है। शीतल होने के कारण यह प्रकृति तथा जीवन की प्यास को बुझाता है और उनको शांति प्रदान करता है। शीतल होने के कारण अनेक प्रकार की शरीर की वह मानसिक रोगों को दूर करने की भी काम आता है। इसलिए जल में शीतलता का गुण पाया जाता है जो मन को शांति मन में पवित्रता प्रखरता की भाव को उत्पन्न करता है।

✓ **तरलता का गुण**

जल में तरलता का गुण पाया जाता है। यह तरल होने के कारण इसे हर कामों में आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है। तरलता के कारण यह समुद्र नदियां व झरने के साथ–साथ बारिश के रूप में बरसता है।

✓ **व्यापकता का गुण**

जल में व्यापकता का गुण होने के कारण संपूर्ण पृथ्वी पर सबसे अधिक मात्रा में जल तत्व पाया जाता है। जो तरल, ठोस बर्फ के रूप में और वाष्प बादल भाप के रूप में उपलब्ध है। जो हर जगह सब व्याप्त है।

✓ **हल्कापन और वाष्प का गुण**

जल में हल्कापन और वाष्प का गुण होने के कारण यह बादलों के रूप में बारिश बनाकर धरती पर बरस कर सभी की प्यास को बुझाता है। फसलों की सिंचाई करता है। और क्षेत्र के जलीय स्तर को बनाए रखने के काम भी आता है। जल को अधिक गर्म करने पर या भाप बनकर हवा के साथ वायु में बहने लगता है जो कोहरे व बदल आदि के रूप में उत्पन्न होता है।

✓ **स्वच्छता और निर्मलता का गुण**

जल में स्वच्छता और निर्मलता का गुण पाया जाता है। जो किसी भी वस्तु को साफ सुथरा बनाकर उसे उच्च गुणों से परिपूर्ण करती है। स्वच्छता और पवित्रता होने के कारण मानव इसका उपयोग षटकर्म, स्वच्छता ,शुद्धि क्रिया आदि के रूप में करके अपने शरीर की शुद्धि और सफाई करता है। जिससे शरीर पूरी तरह से निरोग रहता है।

✓ **स्थिरता का गुण**

स्थिरता का गुण होने के कारण यहां समुद्र नदियां और ग्लेशियर के रूप में बड़े–बड़े पहाड़ों के रूप में यह स्थिर भी रहता है। जब किसी भी शरीर के अंग में जलन या गर्मी या अग्नि से जल जाने पर पीड़ा होती है। तो उसे पीड़ा को दूर करने के लिए ठोस बर्फ से सिकाई करके उसे पीड़ा को दूर किया जाता है।

✓ **द्रवता का गुण**

द्रवता का गुण जल में द्रवता का गुण होने के कारण यह सभी वस्तुओं में आसानी से मिल जाता है। और मिलकर एक नए तत्व को जन्म देता है। द्रव होने के कारण इसे पान के रूप में ग्रहण किया जाता है। खाना बनाने से लेकर व्यक्ति की सभी प्रकार की क्रियाकलापों में जल का उपयोग किया जाता है ।

- ✓ **कठोरता का गुण**

कठोरता का गुण जल के कठोर होने के कारण इसका उपयोग खान–पान आदि के रूप में भी किया जाता है ।जल ठोस होने पर बर्फ के रूप में आकार ले लेता है। और उसे बर्फ का उपयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों में किया जाता है। जिसमें कई समय तक भोजन को स्टोर करके रख कर उसे सुरक्षित रखा जा सकता है। इसलिए बर्फ का उपयोग काफी किया जाता है।

- ✓ **सार्वभौमिक विलेख जो सबसे अधिक जल में गुण** पाया जाता है यह हर किसी वस्तु में आसानी से घुल जाता है। किंतु चिकने व तैलीय पदार्थ में जल नहीं खुलता है तब वह साबुनीकरण कारण का रूप ले लेता है। किंतु दिन प्रतिदिन की जिंदगी में मानव के हर क्रियाकलापों में जल का उपयोग होता है। जो सार्वभौमिक रूप से कार्य भी करता है।

- ✓ **उच्च ताप क्षमता एवं वस्पीकरण**

उच्च गर्मी का गुण होने के कारण यह वाष्प के रूप में बनकर बादलों के रूप में बनकर भू मंडल पर बारिश बनाकर बरसते हैं । कोहरे के रूप में ठंडक के दिनों में फसलों को उपजाऊ बनाते हैं। तथा उन्हें अनावश्यक गर्मी से दूर भी बचा कर रखते हैं। जब पानी को उच्च ताप पर गर्म किया जाता है तब वह भाव बनाकर आकाश मंडल में उड़ जाता है। और वह बादलों के रूप में एकत्र हो जाता है।

- ✓ **जल में जमने का गुण**

यह बर्फ के रूप में जमने पर असमंजस्य और कम घनत्व का गुण होने का कारण यह आसानी से स्टोर किया जा सकता है।

- ✓ **रंगहीन** होने के कारण ये जिसके संपर्क में आता है। उसी के रंग को धारण कर लेता है। इसका कोई अपना रंग नहीं होता है। यह पारदर्शी की श्रेणी में आता है।
- ✓ **गंधहीन** के कारण इसमें कोई गंध नहीं होती है। यह सामान्य और प्राकृतिक रूप से बिना गंध का तत्व होता है। जल में स्वाद नहीं होता है।
- ✓ **स्वादहीन** होता है यह व्यक्ति के खान–पान जिस वस्तु को जल में मिला देता है। उसी वस्तु का स्वाद उत्पन्न करके प्राणी को रस की उत्पत्ति करता है। यह प्रकृति में उपलब्ध जल अनेक गुणों से परिपूर्ण है। जो मानव की सभी प्रकार की क्रियाकलापों को संचालित करने में बहुत ही उपयोगी माना गया है। जो रोग प्रतिरोधक क्षमता से लेकर के हर प्रकार की बीमारियों को दूर करके मानव

को स्वस्थ और जीवन प्रदान करने का कार्य करता है। इसलिए प्रकृति द्वारा उत्पन्न यह जल अनेक गुनो से परिपूर्ण होने के साथ–साथ एक औषधि के रूप में माना गया है।

4.7 विभिन्न तापक्रम के जल का शरीर पर प्रभाव

जल का विभिन्न तापक्रमों के साथ जब शरीर के साथ संपर्क होता है। तब उसका काफी प्रभाव देखा गया है। गर्म जल का प्रभाव अलग रूप से पड़ता है। जबकि ठंडे जल और बर्फ के प्रयोग से अनेकों प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं। और ठंडे जल का प्रभाव अलग रूप में देखा गया है। लिए हम जल के विभिन्न तापक्रमो का शरीर पर किन–किन अंगों किन–किन तंत्रों पर प्रभाव पड़ता है। विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.रक्त परिसंचरण तंत्र पर जल का प्रभाव

रक्त परिसंचरण पर गर्म व ठंडे जल का काफी प्रभाव देखने को पाया गया है। गर्म जल जब शरीर पर पड़ता है। तब मांसपेशियां पूरी तरह से विस्तारित होती है। प्रसारित होती हैं। जबकि ठंडे जल के प्रभाव से अंग अभी पूरी तरह से संकुचित हो जाते हैं। जब गर्म जल का संपर्क शरीर से कराया जाता है। तो रक्त परिसंचरण तेजी से होने लगता है। सभी अंग अवयवों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। और रक्त पूरे शरीर में तेजी से संचालित होने लगता है। जबकि ठंडे जल का संपर्क करने पर पूरी तरह से मांसपेशियां सिकुड़ जाती हैं । रक्त पूरी तरह से जमकर उसकी गतिशीलता काम हो जाती है। जिसके कारण हृदय रोग जैसी समस्याएं भी बनने लगते हैं । कभी–कभी देखा गया है। कि जब मस्तिष्क में ठंडी के कारण रक्त की गति धीमी हो जाती है तब व्यक्ति के शरीर में सिर दर्द, बदन दर्द और पक्षाघात जैसी समस्याएं भी देखने को मिलती हैं।

मानव शरीर में जल का संबंध रक्त से माना गया है। रक्त संपूर्ण शरीर में नस नारियों के माध्यम से प्रत्येक अंगों तक जाकर उनकी क्रियाशीलता को बढ़ाने का कार्य करती हैं। रक्त में जब जल की मात्रा कम होती है तब शरीर के भी साथ पदार्थ रक्त में मिलकर विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करने लगते हैं। इस अवस्था में जल चिकित्सा बहुत प्रभावी मानी गई है । जल चिकित्सा के अंतर्गत प्रातः कालीन खाली पेट में जल का पान करना एनिमा के द्वारा और शरीर में विभिन्न अंगों को स्नान आदि क्रियाओ के माध्यम से सभी प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है। शुद्ध रक्त और सामान्य ताप के जल के प्रभाव से रक्त का संरक्षण नियमित रूप से होता रहता है। हृदय की क्रियाशीलता सामान्य बनी रहती है। जल चिकित्सा के प्रभाव से रक्त में हीमोग्लोबिन हमेशा संतुलित बना रहता है। और ऑक्सीजन की मात्रा भी नियमित रूप से बनी रहती है और शरीर की सभी इकाई कोशिका, ऊतक व मांसपेशियां अपना कार्य पूर्ण रूप से करते

रहते हैं। उच्च रक्तचाप के रोगी को हमेशा ठंडे जल का ही उपयोग करना चाहिए निम्न रक्तचाप के रोगी को गर्म जल से उपचार देने के बाद उसे हमेशा शीतल जल का ही उपयोग करते रहना चाहिए।

2.पाचन तंत्र पर जल का प्रभाव

जल का को जीवन कहा गया है। जिसका हमारे शरीर में बहुत ही उपयोगी महत्वपूर्ण माना गया है पाचन तंत्र का मानव शरीर का सबसे प्रमुख अंग माना गया है। जिसमें सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ पचकर शरीर को पोषण प्रदान करते हैं। इसलिए पाचन तंत्र का जल तत्व के साथ सबसे सीधा प्रभाव माना गया है। जब हम जल का उपयोग खाद्य पदार्थो के माध्यम से ग्रहण करते हैं। तब वह खाद्य पदार्थ सर्वप्रथम रस के रूप में उत्पन्न होता है और वह खाद्य पदार्थ रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि ,अस्थि से मज्ज़ा और मज्ज़ा से शुक्र का निर्माण करके शरीर को निरोग और पुष्ट करता है। पाचन तंत्र में जल की कमी होती है। तो तरह–तरह के रूप उत्पन्न हो जाते हैं। पाचन की क्रिया प्रतिकूल हो जाती है ।और पाचन तंत्र विकृत हो जाता है। जिससे आंतो में शुष्कता, कब्ज , अपच, भूख न लगना पेट में गैस बनना, पेट में अम्ल की मात्रा अधिक हो जाना, अग्नाशय की क्रियाशीलता काम हो जाना पेट का दर्द होना यकृत से संबंधित अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। और साथ ही साथ मधुमेह जैसी भी समस्या उत्पन्न हो जाती है। इन सभी के रोगों का निदान करने के लिए गर्म और ठंडे जल का उपयोग करना चाहिए। गर्म जल के उपयोग से शरीर की उष्णता बढ़ती है। और उस उष्णता से बड़ी आंत तथा छोटी आंत की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। और जमा होने वाला मल पूरी तरह से गर्म जल में विलीन होकर शरीर से बाहर निकल जाता है। जिससे कब्ज की समस्या दूर होती है। गर्म जल के प्रभाव से पाचन अच्छे से होता है, और अच्छे से भूख लगती है । गर्म जल के उपयोग से अपच की समस्या दूर होती है। अम्लता की कमी आती है। पेट और सिर दर्द जैसी समस्याओं का निदान भी होता है। गर्म जल के उपयोग को खाली पेट करने से गैस की समस्या यकृत की समस्या और अग्नाशय की समस्या का निदान होता है। तथा गर्म जल के उपयोग से कटी स्नान, उदर स्नान, उदर की गीली पट्टी का उपयोग करके विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है। रोगों को निदान करने में प्राय गर्म जल का उपयोग करके औषधि लाभों में लिया जा सकता है। ठंडे जल के प्रयोग से तंत्रिका तंत्र सक्रिय होती है। और पाचन तंत्र की क्रियाशीलता को बनाए रखती है।

3.उत्सर्जन जल का प्रभाव

जल का हमारे शरीर में उत्सर्जन तंत्र पर कभी प्रभाव पड़ता है। उत्सर्जन तंत्र हमारे शरीर के हिसाब से पदार्थ मल आदि को निष्कासित करने में काफी महत्वपूर्ण तंत्रों में से एक है। जब शरीर में गर्म जल की मात्रा अधिक होती है। तब शरीर से अधिक मात्रा में विजाती द्रव्य निकलते हैं। शरीर में मूत्र पसीना आदि के माध्यम से त्वचा के मार्गो से विषाक्त पदार्थ निकलते हैं। जब हम शरीर में गर्म जल का

प्रभाव प्रयोग करते हैं । तब हमारे शरीर में विजातीय द्रव्य जल में घुल कर मूत्र और पसीने के साथ मल के रूप में बाहर निकाल कर शरीर को स्वस्थ बनाने का कार्य करते हैं। गर्म जल के प्रभाव वृक्क की क्रियाशीलता तथा वृक्क में होने वाली पथरी की समस्या आदि पर गर्म जल के उपयोग से दूर होती है।

4.तंत्रिका तंत्र पर गर्म जल व ठंडे जल का प्रभाव

मानव शरीर में तंत्रिका तंत्र बहुत महत्वपूर्ण तंत्र माना गया है। जो संपूर्ण शरीर की क्रियाशीलता को बनाए रखने में सबसे अधिक सक्रिय और भागीदारी निभाते हैं । तंत्रिका तंत्र से निकलने वाले नर्व इंपल्स सभी अंगों तक सूचना को आदान–प्रदान करने का कार्य करते हैं । यह नर्व इंपल्स शरीर की प्रत्येक कोशिका तक जाकर अपना काम करते हैं। तंत्रिका तंत्र का संचालन मेरुदंड से होता है। जब हम मेरुदंड को गर्म व ठंडे जल से स्नान करते हैं तब वह सक्रिय रूप से कार्य करके समस्त रोगों को दूर करने का कार्य करता है। जल चिकित्सा के अंतर्गत ठंडे जल के प्रयोग से सभी तंत्रिकाओं को बल मिलता है। जबकि गर्म जल के प्रयोग से रक्त संचार तीव्र होने से तंत्रिकाओं की क्रियाशीलता और बढ़ जाती है। इस प्रकार तंत्रिकाओं से संबंधित सभी प्रकार के रोगों में लाभ मिलता है। साथ ही साथ मस्तिष्किय रोगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपचार तंत्रिका तंत्र के जल स्नान से माना गया है।

5. पेशीयतंत्र पर जल का प्रभाव

ठंडे जल के काफी प्रभाव मिलते हैं। मौसम के अनुसार जब गर्म व ठंडे जल से स्नान कराया जाता है। तो त्वचा रोग पूरी तरह से दूर होते हैं। ठंडक के मौसम में जब ठंड के कारण शरीर की मांसपेशियां कड़क हो जाती हैं। उनमें रक्त संचार कम हो जाता है ।जिनसे मांसपेशियां ,हाथ, पैरों व शरीर के विभिन्न अंगों में दर्द उत्पन्न होने लगता है । उस दौरान गर्म जल से स्नान करने पर वहां की मांसपेशियों में प्रसार होता है। और रक्त संचार बढ़ने से उस स्थान के सभी रोग दूर हो जाते हैं। गर्मी के दिनों में जब ज्यादा जलन पड़ती है। तब त्वचा पर विभिन्न प्रकार के छोटे–छोटे फोड़े फुंसी निकल आते हैं। या घमौरी उत्पन्न हो जाती हैं। उन घमौरी से निजात पाने के लिए ठंडे जल से स्नान कराया जाता है। और जब आग से जल जाने पर अधिक जलन महसूस होती है। तब उस स्थान को बर्फ से सिकाई व स्नान के माध्यम से उसकी उसकी पीड़ा को दूर किया जाता है ।

4.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1.जल कितनी अवस्थाओं में पाया जाता है?

अ. एक

ब. दो

स. तीन

द. चार

प्रश्न– 2. मानव द्वारा पीने के लिए प्रयोग किया जाने वाले जल को क्या कहा जाता है?

अ मृदु जल

ब. स्थाई कठोर जल

स. अस्थाई कठोर जल

द. उपरोक्त सभी

प्रश्न –3.जल के कितने गुण बताए गए हैं?

अ. एक

ब. दो

स. तीन

द. चार

प्रश्न– 4.बर्फ जल की कौन सी अवस्था है?

अ. द्रव

ब. ठोस

स. गैस

द. कोई नहीं

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. संपूर्ण पृथ्वी पर पाया जाने वाला पूर्ण जल पीने योग्य होता है।

प्रश्न–6. जल ठोस की अवस्था में बर्फ, द्रव की अवस्था में तरल जल, और गैस की अवस्था में भाप के रूप में पाया जाता है।

4.9 सारांश

अतः इस प्रकार जल का प्रयोग मानव जीवन में जीवन के रूप में माना गया है । जल तत्व पांच तत्वों में से चौथा प्रमुख तत्व है। जो जगत में सबसे अधिक रूप में पाया जाता है जो ठोस, द्रव, गैस के रूप में पाया जाता है , जिसका प्रयोग मानव ने दैनिक जीवन से लेकर के सभी प्रकार के काम, उद्योग, खेतों की सिंचाई ,घर की धुलाई एवं स्वयं की शुद्धि क्रिया व उपचार के लिए विभिन्न प्रकारों

से ठंडे व गर्म जल का उपयोग करके रोगों के निदान करने में उपयोग लाया जाता है। वेद, पुराणों, उपनिषदों धार्मिक ग्रंथो में जल के महत्व को बताते हुए अनेकों मत बतलाए गए हैं । किसी ने जल को माता कहकर पुकारा तो किसी ने जल को देवता कह कर पुकारा किसी ने किसी धर्म ग्रंथो में इन पांच तत्वों को एक पूजनीय मानकर उनकी महत्ता उनकी पवित्रता उनकी प्रकृति को अपने जीवन में धारण करके जल के तत्व को धारण करने की बात कही। जल में शीतलता, तरलता , रंगहीन गंधहीन व स्वादहीन जैसे गुणों से युक्त होता है। जो सभी की प्यास बुझाने के साथ–साथ सभी की आयु को वृद्धि करने में सहायक है। जल का विभिन्न तापक्रमों के साथ जब शरीर पर प्रयोग कराया जाता है। तो बहुत ही लाभकारी प्रभाव देखने को मिलते हैं। शरीर के त्वचा तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, तंत्रिका तंत्र जैसे महत्वपूर्ण तंत्रों पर जल के गर्म व ठंडे प्रयोग को काफी महत्वपूर्ण बतलाया गया है। इस प्रकार जल का उपयोग अपने जीवन में हम औषधि के रूप में करके जीवन को निरोग और स्वस्थ बना सकते हैं। क्योंकि जल ही जीवन है । जल के संचयन को लेकर के सभी में जागरूकता के साथ–साथ इसके महत्व को बताकर इसे सुरक्षित करने की अति आवश्यकता है। जल हमारे पांच तत्वों की चिकित्सा में से काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का काम करता है। और जल के प्रयोग से अनेकों प्रकार की बीमारियां भी दूर होती हैं।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 स. तीन

प्रश्न –2 ब. स्थाई कठोर जल

प्रश्न –3 स. तीन

प्रश्न –4 ब. ठोस

प्रश्न –5. **सत्य**

प्रश्न–6. **असत्य**

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. जल तत्व का विस्तार से वर्णन करें।

2. जल तत्व के अर्थ एवं स्वरूप को विस्तार से समझाइए ।

3.जल का मानव जीवन में उपयोग पर निबंध लिखिए।

4.विभिन्न तापों के जल का शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को विस्तार से लिखिए।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल डा0 राकेश – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान।
2. आचार्य श्रीराम शर्मा – गायत्री महाविज्ञान ।
3. रोग और योग – डा० स्वामी कर्मानन्द
4. भोजन और स्वास्थ्य डा० ओमकार नाथ।
5. प्राकृतिक आहार के चमत्कार– डा० नन्द किशोर शर्मा।
6. प्राकृतिक चिकित्सा – उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय ।
7.आचार्य श्रीराम शर्मा – पंचकोषी साधना एवं उपलब्धिया ।
8. जल चिकित्सा – उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय ।

इकाई 05 जल चिकित्सा के सिद्धान्त, जल के प्रयोग की विधियाँ जलपान, साधारण व घर्षण स्नान , कटि स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नान, रीढ़ स्नान, उष्ण पाद स्नान।

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 जल चिकित्सा के सिद्धांत

5.4 जल के प्रयोग की विधियाँ

- **5.4.1** जलपान
- **5.4.2** साधारण व घर्षण स्नान
- **5.4.3** कटि स्नान
- **5.4.4** मेहन स्नान
- **5.4.5** वाष्प स्नान,
- **5.4.6** रीढ़ स्नान,
- **5.4.7** उष्ण पाद स्नान।

5.5

5.6 साराश

5.7

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम जल चिकित्सा के सिद्धांत जल के प्रयोग की विधियां, जलपान ,साधारण जल स्नान , कटि स्नान और मेहन स्नान, वाष्प स्नान रीढ़ स्नान आदि के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के जल से होने वाले लाभों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। पूर्व इकाई में जल की उत्पत्ति जल से लाभ जल तत्व की उपयोगिता और जल के महत्व की जानकारी प्राप्त किए थे। प्रस्तुत इकाई में जल की प्रयोग विधियों को विस्तार से वर्णन करते हुए विभिन्न रोगों में किस प्रकार जल उपयोगी है। इसकी चर्चा करेंगे जल स्नान साधारण जल स्नान, नदियों का जल स्नान, तालाब का जल स्नान, वर्षा का जल स्नान, समुद्र का स्नान के साथ–साथ शरीर के अंगों का स्नान से क्या–क्या लाभ होते हैं। उसको कैसे करते हैं। उनमें क्या–क्या सावधानियां रखी जाती हैं, आदि सभी जानकारी इस इकाई के अंतर्गत प्राप्त करेंगे। साथ ही इस इकाई में पाठको आप सभी को जल चिकित्सा के अंतर्गत गर्म जल और ठंडे जल से क्या–क्या लाभ होते हैं? उनसे किन–किन प्रकार की बीमारियां दूर होती है? जल की पटियों का उपयोग कैसे करते हैं ? इन सभी के बारे में इस इकाई में हम विस्तार से ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.2 उद्देश्य

- प्रस्तुति इकाई के अंतर्गत हम जल के सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- जल की प्रयोग की विधियां कौन–कौन सी है समस्त विधियो की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- जल स्नान सभी प्रकारों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- जल तत्व से क्या–क्या लाभ होते हैं उन लाभ की जानकारी इस इकाई के अंतर्गत प्राप्त करेंगे ।
- गर्म और ठंडे जल का उपयोग करने की विधियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.3 जल चिकित्सा के सिद्धांत

जल चिकित्सा पांच तत्वों के अंतर्गत की जाने वाली चिकित्सा चिकित्सा पद्धति है। जल शरीर के समस्त अंग अवयवों को स्वास्थ्य प्रदान करने वाला माना गया है। जल के ठंड व गर्म प्रयोग के माध्यम से शरीर की अनेक विषाक्त पदार्थों को निकाल कर शरीर को स्वस्थ संवर्धन बनाया जाता है। और अनेकों प्रकार के रोगों से मुक्ति भी मिलती है। इसलिए वेद, पुराण, उपनिषदों में जल को औषधि के रूप में माना गया है। जल चिकित्सा के सिद्धांत के बारे में हम विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

- **ठंडक और गर्मी को अवशोषित करने का सिद्धान्त**

ठंडक और गर्मी को अवशोषित करने अद्भुत करने की शक्ति जल में निहित है। जल को यदि ठंडा किया जाए तो वह बर्फ के रूप में बदल जाता है। और यदि गर्म किया जाए तो वह भाप और वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए जल को गर्म करके शारीरिक अंगों की सिकाई एवं गर्म पट्टी के रूप में रोगों को दूर करने के काम में भी लाया जाता है। साथ ही गर्मियों के दिनों में जल को ठंडा करके उसे बर्फ के रूप में जमा कर उसके माध्यम से शरीर के अंगों की अनावश्यक गर्मी व जलन, अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाकर वहां की पीड़ा को दूर करने के काम में भी लाया जाता है।

- **तरलता का सिद्धांत**

जल संपूर्ण जगत में तरल गैस और ठोस तीनों रूपों में पाए जाता हैं। किंतु जब तरल अवस्था में होता है तब इसका उपयोग अनेकों कार्य में किया जाता है । तरल होने के कारण यह समस्त शरीर के विजातीय द्रव्यों को अपने में समाहित करके उसे पसीना मूत्र के माध्यम से बाहर निकालने का कार्य करता है। और शरीर में रक्त के माध्यम से संपूर्ण शरीर के अंग प्रत्यंगो को सक्रिय व क्रियाशील बनाने में काफी लाभकारी है।

- **संकुचन व प्रसारण के द्वारा को निकालने का सिद्धांत**

जल का शरीर पर जब गर्म एवं ठंडे दोनों रूपों से स्नान कराया जाता है। तब जल संकुचन व प्रसारण की क्रिया के द्वारा मांसपेशियों को पूरी तरह से संकुचित हुआ प्रसारित करके रक्त के प्रवाह को सामान्य कर देती हैं। जिससे शरीर में होने वाली पीड़ा दूर हो जाती है । और वहां का विजाती द्रव्य बाहर निकलकर पूरी तरह से वह अंग स्वस्थ हो जाता है।

- **शीतलता प्रदान करने का सिद्धांत**

जल का एक प्रमुख सिद्धांत है। कि यह ठंडा होता है । और ठंडा होने के कारण प्रत्येक प्रकृति के जीवन को शीतलता प्रदान करती है। जल में विद्युत पाई जाती है जिससे शरीर की शीतलता और पवित्रता बनी रहती है। शीतल होने के कारण यह शरीर के तमोगुण को दूर करने का भी कार्य करती है। जिससे आलस और प्रमाद भी दूर होता है। गर्मी के दिनों में शीतल जल पीने से आत्मा को संतुष्टि मिलती है, मन प्रसन्न होता है, शरीर को पूरी तरह से आराम मिलता है। इसलिए इस शीतलता के आधार पर जल कार्य करता है।

- पुनर्जीवन **देने का सिद्धांत**

जल में शीतलता होने के कारण यह सभी प्राणियों को पुनर्जीवन देने का भी कार्य करता है। इसलिए इस जीवन कहा गया है। या किसी भी वस्तु को निर्जीव से संजीव बनाकर उसे जीवन देने का कार्य करती है। इसी के आधार पर शरीर के विजाती द्रव्यों को निकाल कर शरीर के अंग प्रत्यङ्गो को रक्त के माध्यम से पुनर्जीवित करके उसकी क्रियाशीलता को बढ़ाकर के उसे नया जीवन देने का कार्य करती है। इसलिए जल पुनर्जीवन के सिद्धांत पर भी कार्य करता है।

5.4 जल के प्रयोग की विधियां

जल के प्रयोग की निम्न दो विधियां बतलाई गई है। जिनके माध्यम से जल का उपयोग करके हम इसका चिकित्सा के रूप में लाभ ले सकते हैं।

1. **आंतरिक रूप में जल का प्रयोग** करके चिकित्सीय लाभ लेना। जिसके अंतर्गत जल नेति , वमन क्रिया, कुंजल क्रिया, चक्रीय कर्म , शंख प्रचलन तथा एनिमा आदि प्रमुख क्रियाएं की जाती हैं।
2. **बाह्यय रूप में जल का उपयोग** करके चिकित्सा का लाभ लेना। जिसके अंतर्गत साधारण जल स्नान एवं घर्षण स्नान, शरीर के समस्त अंगों का स्नान, बर्फ से सिकाई करके उपयोग करना और भाप स्नान के माध्यम से जल के बाह्य प्रयोग किए जाते हैं।

जलनेति हठयौगिक ग्रन्थों में शुद्धि क्रिया के लिए अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। जिसमें धौति के अंतर्गत जलनेति की क्रिया आती है। जल को किसी टोटी के आकार के पत्र में भरकर नासिका के एक स्वर की तरफ से जल को डालकर दूसरे स्वर की तरफ से जल को निकलना यह जलनेति की क्रिया कहलाती है। इससे साइनस ,मस्तिष्क तथा आंखों से होने वाली समस्याओं का निदान होता है। इस विधि में जल को शरीर की त्वचा के तापक्रम के आधार पर गर्म करके और स्वाद के अनुसार नमक डालकर के इस क्रिया को किया जाता है। जिससे जल का सीधे तौर पर मस्तिष्क पर कोई असर नहीं पड़ता किंतु वही जल नासिका प्रदेश के कफ की सफाई करके उसे शुद्ध करता है।

- **वमन क्रिया**

वमन क्रिया हमारे मुख से लेकर आमाशय के भाग की सफाई करने के काम आती है। जिसके अंतर्गत दंड धौति और वस्त्र धौति का विधान बताया गया है। इसके लिए नमकीन गुनगुने जल को कण्ठ तक पीकर फिर अपने हाथ की दो उंगलियों को गले में डालकर गले की सफाई करते हुए पिए गए जल को बाहर निकाल देने की क्रिया को वमन कहते हैं । इसी प्रकार चार अंगुल चौड़े 22 गज लंबे कपड़े को पानी में भिगोकर उसे ग्रहण करना और ग्रहण करने के पश्चात पुनः मुख से निकाल देने की क्रिया को वस्त्रधौति कहा गया है। साथ–साथ में दंड धोती का विधान बताया गया है। जिसमें केले के दंड, हल्दी का दंड या बेंत के दंड के मृदु भाग को ग्रहण करना और ग्रहण करने के पश्चात आमाशय में जाने के बाद

उसे चालन करके मुख से निकाल देने की प्रक्रिया को दंडधौति कहते हैं। यह क्रियाएं पूरी तरह से आमाशय में जमे हुए कफ को दूर करने के काम आती है। यह सारी क्रियाएं जल के साथ की जाती हैं।

शंख प्रक्षालन और चक्रीय कर्म की क्रिया अंतरिक भागों की शुद्धि के अंतर्गत आता है। इसमें मुख से लेकर अमाशय एवं गुदा भाग तक की सफाई की जाती है। इसमें नमकीन गुनगुने जल पीकर उसे पेट में चालन करके अधो भाग से निकाल दिया जाता है।इसी के साथ चक्रीय कर्म में मूलाधार में मध्यमा उंगली के माध्यम से गुदा भाग की सफाई करके जल को अंदर प्रवेश कराकर उसे पुनः जल को बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रक्रिया को चक्रीय कर्म कहते हैं। यह सारी क्रियाएं आंतरिक जल शुद्ध के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसी के साथ एनिमा की प्रक्रिया प्राकृतिक चिकित्सा में अपनाई जाती है। जिसे योग भाषा में वस्ति के नाम से जाना जाता है। इसमें गुदा भाग में कैथेटर और एनिमा पॉट में जल भर के गुदा भाग में जल प्रविष्टि कराकर पूरे मल को बाहर निकालने की क्रिया की जाती है जिसका विस्तार से वर्णन अगली इकाई किया जाएगा।

5.4.1 जलपान

जल के आंतरिक प्रयोग विधि के अंतर्गत जलपान की क्रिया आती है। साधारण तौर पर प्रत्येक प्राणी प्यास लगने पर जल का पान करता है। और शीतल जल का पान करने से प्यास बुझ जाती है। आत्मा को संतुष्टि मन को तृप्ति मिलती है। जब व्यक्ति को प्यास लगती है। तथा खाना खाने के पश्चात जब पाचन क्रिया हो जाती है। तब व्यक्ति को प्यास का अनुभव होता है। और जलपान किया जाता है । जल पान को उषा पान भी कहा जाता है। जो खाली पेट किया जाता है इसमें स्वच्छ ताजा शुद्ध जल को पान किया जाता है। जो शरीर की शरीर को जल तत्वों की पूर्ति करता है। उषापान के माध्यम से जलपान की विधि को विस्तार से जानेंगे।

विधि

उषा पान भारतीय संस्कृति में प्राचीन परंपरा से प्रातः कालीन खाली पेट जल पीने की परंपरा सदियों से चली आ रही है । हमारे ऋषि मुनि इस परंपरा को प्रत्येक मानव के जीवन जीने की कला में समाहित किया था उषा पान की क्रिया प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठने पर की जाती है। उषा का अर्थ होता है प्रातः काल, पान का अर्थ है जल को पीना अर्थात प्रातः कालीन रात्रि के बीत जाने पर सुबह जब बिस्तर का त्याग किया जाता है । तब सर्वप्रथम ऊकडू आसन में बैठकर एक गिलास या अपनी क्षमता और स्वेच्छा अनुसार खाली पेट शुद्ध निर्मल ताजा जल को पिया जाता है। जल का पान करके सुबह की ठंडी ताजी हवा को महसूस करते हुए कम से कम 10 कदम घूमना चाहिए। जिससे उषा पान किया हुआ जल पूरी तरह से शरीर में समाहित हो जाता है। यह जल हमारे यह जल हमारे मुख में बने सलाइवा को घोलकर पेट से आमाशय से लेकर आंतों तक के भाग की अच्छे से सफाई करता है । और रात की मृत कोशिकाओं

को निकालने तथा नई कोशिकाओं को जीवन देने के कार्य को तेजी से बढ़ता है । प्रातः कालीन खाली पेट जल पीने से गैस की समस्या दूर होती है। पेट में बढ़ी अमलता को दूर करता है। खट्टी डकार आना , भूख ना लगना, जी मिचलाना , पाचन क्रिया शुद्ध ना होना इन सभी समस्याओं को दूर करती है। साथ ही साथ रक्त को पतला करके रक्त के संचार को तीव्र करती है। और हृदयाघात जैसी समस्याओं से बचाने में भी काफी लाभकारी है। पान के लिए यदि कॉपर का ग्लास और जग मिल सके तो बहुत ही अच्छा माना गया है। नहीं तो मिट्टी के बर्तन में ही हम जल को रात भर रखकर सुबह पान कर सकते हैं

सावधानियां

- उषा पान के काम से कम 40 से 45 मिनट बाद ही कुछ खाना चाहिए।
- उसापान पहले किसी प्रकार का ठोस या द्रव्य खाद्य पदार्थ नहीं खाना चाहिए।
- उषा पान स्वच्छ ताजा और निर्मल जल से ही करना चाहिए।
- उषा पान के दौरान चाय कॉफी या दूध का उपयोग नहीं करना चाहिए और ना ही किसी प्रकार के रस का उपयोग करना चाहिए।
- उषा पान करने के तुरंत बाद टहलना चाहिए ।
- उषा पान मौसम के अनुसार ठंड या गुनगुने जल का प्रयोग करना चाहिए।

जलपान से लाभ

- ✓ प्रातः कालीन खाली पेट जलपान करने से अमाशय और आंतों की अच्छे से सफाई होती है। उसमें जमा हुआ मल दूर होकर कब्ज को दूर करता है।
- ✓ नियमित जलपान करने से पेट की अम्लता, पेट का दर्द , पेट में गैस बनना, भोजन का अपच होना , भूख की कमी जैसी समस्या दूर होती हैं।
- ✓ जल पान करने से सिर का दर्द, शरीर के जोड़ों का दर्द, आर्थराइटिस और मोटापे जैसी समस्या में लाभ मिलता है।
- ✓ जलपान से रक्त शुद्ध और स्वच्छ होता है। रक्त पतला बनता है। जिससे रक्तचाप संतुलित रहता है। और हृदय घात जैसी समस्या से निजात मिलता है।
- ✓ जल पान करने से आंतों की क्रियाशीलता बढ़ती है।
- ✓ जल पान से वृक्क में पथरी जैसी समस्या और उससे संबंधित सभी प्रकार के रोगों में आराम मिलता है।

- ✓ जलपान करने से आंखों की पीड़ा दूर होती है। नेत्र की रोशनी बढ़ती है । और दूर दृष्टि दोष और निकट दृष्टि दोष जैसी समस्याओं का निजात होता है।
- ✓ जलपान क्रिया से त्वचा की झुर्रियां दूर होती हैं। और त्वचा में चमक बढ़ती है।
- ✓ जलपान करने से स्वतंत्र श्वसन तंत्र मजबूत बनता है। साथ ही पेशीय तंत्र, तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र से संबंधित सभी रोग दूर होते हैं।
- ✓ जलपान से जुखाम, खांसी, बुखार, अस्थमा और खुजली जैसी समस्या से मुक्ति मिलती है। उषा पान कैंसर जैसी गंभीर रोगों में विशेष लाभकारी है।

5.4.2 साधारण जल स्नान

साधारण जल स्नान से तात्पर्य है। कि जो प्रतिदिन की जिंदगी में सभी मनुष्य प्रातः कालीन जब रोज नहाते हैं। तब उसे स्नान को साधारण जल स्नान कहा जाता है। सामान्य जल स्नान और प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाले स्नान से काफी अलग होता है। सामान्य जल स्नान में कोई भी व्यक्ति सिर से पैरों तक के शरीर को जल से भिगो लेता है। तो यह साधारण जल स्नान कहलाता है। साधारण जल स्नान तत्काल कम समय और कम जल का उपयोग करके किया जाता है। जो शरीर की शीतलता को बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। जिसे दैनिक स्नान के नाम से भी जाना जाता है। सामान्य स्नान के अनेक प्रकार बताए गए हैं जो निम्नलिखित हैं।

- **दैनिक जल स्नान**

दिन प्रतिदिन की जिंदगी में जो स्नान किया जाता है। उसे दैनिक स्नान कहा जाता है। जिसमें व्यक्ति नलकूप या कुएं के पास बाल्टी और जग के माध्यम से स्नान करता है। जिसमें अपने शरीर को रगड़ रगड़ के पूरे मल को दूर करके ऊपरी त्वचा को साफ किया जाता है। शरीर की त्वचा को सूती व मखमल तौलिए से खूब रगड़ रगड़ कर गर्म कर लिया जाता है। जिससे शरीर की ऊपरी त्वचा से मल आसानी से छूटने लगता है। और शरीर की त्वचा लाल रंग की हो जाती है। फिर उस पर जैसे ही जल डाला जाता है। तो वह कठोर होकर पूरी तरह से स्वच्छ और निर्मल हो जाती है । जिसमें सिर से लेकर पैर तक पूरी तरह से स्नान कराया जाता है। उसे साधारण और दैनिक जल स्नान कहा जाता है। यह अपनी क्षमता के अनुसार दीर्घ और लंबा समय लेकर किया जा सकता है। यह स्नान समय, मौसम, वातावरण के अनुसार गरम और ठंडे जल का प्रयोग करके किया जाता है। जिससे शरीर में शांति शिथिलता चैतन्यता और आलस्य प्रमाद जैसे रोग दूर होते हैं। शरीर स्वच्छ पवित्र, मन पवित्र और पूरी तरह से क्रियाशील हो जाता है। यह दैनिक स्नान प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में प्रतिदिन करते हैं।

- **नदी के जल में स्नान**

हमारी भारतीय संस्कृति में नदियों को माता कहा गया है । नदी की पवित्रता , प्रखरता उनके हृदय प्रति हमारी श्रद्धा को बढ़कर हमारे मन में उनके प्रति सम्मान और पूजा के भाव को जागृत करता है। जिसमें गंगा, यमुना , नर्मदा अनेक नदियां हैं, जिनका स्वच्छ और निर्मल जल पर्वतों से निकलती हुए समस्त प्राणियों को जल पान के रूप में भी ग्रहण किया जाता है। इससे हमारी भावनाएं शुद्ध और पवित्र होती हैं ।

कहा गया है

"मन चंगा तो कठौती में गंगा "

यदि मन में पवित्रता आती है। तो निश्चित रूप से हमें जल के सानिध्य का वरण किया जाता है। यह समस्त नदियां पर्वत और पहाड़ों से निकलती हैं। इसलिए इनमें अनेक प्रकार के औषधि गुण भी पाए जाते हैं। नदियों में तैर कर उनमें डुबकी लगाकर उनमें थोड़ी देर बैठकर स्नान किया जाता है।

इस स्नान से निम्न रक्तचाप उच्च रक्तचाप से लेकर अपच और श्वसन संबंधित रोग और हैजा, फ्लैग, कुष्ठ रोग , त्वचा रोग , अजीर्ण , जीर्ण ज्वार दमा आदि समस्याओं का निदान होता है। यह जल पूरी तरह

से कीटाणुओं से रहित होता है। इसलिए पीने योग्य होता है । पूरी तरह से साफ होता है। जो हमारे शरीर को पूरी तरह से औषधि गुना से परिपूर्ण करके उसे स्वस्थ बनाए रखता है। बुजुर्ग, बूढ़े और बच्चे लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि जल की सतह के अनुसार ही स्नान करना चाहिए ज्यादा गहराई में स्नान नहीं करना चाहिए। कम से कम 20 से 45 मिनट तक तैर कर इस स्नान का लाभ लिया जा सकता है।

- **वर्षा का जल**

बारिश के मौसम में बरसात के जल से स्नान करना काफी लाभकारी माना गया है। वर्षा का जल वातावरण में उपलब्ध ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड , अमोनिया बहुत से अनेकों गैसों के सूक्ष्म कणों से परिपूर्ण होता है । जो अमृत से भी पूर्ण होता है ।

यह जल काफी शुद्ध माना जाता है। इसे पीने के भी काम में लाया जा सकता है। गर्मी के दिनों में जब शरीर पर अनेकों घमौरी और त्वचा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उसे दौरान वर्षा के जल से स्नान करके लाभ लिया जा सकता है। वर्षा के जल में स्नान करने से पूर्व अपने शरीर पर अच्छे से घर्षण करके शरीर की त्वचा को पूरी तरह से गर्म करके रक्त के संचार को बढ़ा लेना चाहिए। तत्पश्चात घर्षण करने के बाद वर्षा के जल में स्नान करना चाहिए।

- **समुद्र जल से स्नान**

समुद्र का स्नान नदियों के जाल में स्नान के समान ही समुद्र के स्नान को बताया गया है परंतु नदियों और समुद्र के जल में स्नान में अंतर इतना है, कि नदियों का जल खारा नहीं होता है। जबकि समुद्र का जल खारा होता है। और खरे जल में नहाने से हमारे शरीर की उच्च रक्त चाप जैसे हृदय रोगों

में निजात मिलता है। क्योंकि खारा जल में मैग्नीशियम, क्लोराइड , पोटेशियम क्लोराइड , मैग्नीशियम, सल्फेट, कैल्शियम बहुत सारे खनिज लवण पाए जाते हैं ।

इस स्नान करने से पूर्व अच्छे से कानों में रुई को लगा लेना चाहिए। जिससे कान में जल ना भरे यह समुद्र का स्नान काफी अच्छा माना गया है । इसे भी कम से कम 25 से 45 मिनट तक करना चाहिए।

- **झरना स्नान (फुहारा)**

प्राचीन समय में जब घर में फुहारे नहीं होते थे । तब लोग झरने के जल से काफी स्नान किया करते थे। झरने का जल काफी शुद्ध ,साफ होता है। यह जल स्नान शरीर की प्रतिरोधक क्षमता के साथ–साथ तंत्रिका तंत्र को मजबूत करता है। और हमारे शरीर की समस्त क्रियो को संपूर्ण रूप से चलने में सहायक है। जिसे शरीर में सूजन अकड़न आदि सारी समस्याएं दूर होती हैं । यहां गर्मी के दिनों में बहुत ही लाभकारी माना गया है। इससे शरीर की त्वचा में चमक आती है शारीरिक रोग दूर होते हैं।

- **गीली चादर से स्नान**

दुर्बल रोगियों को हम साधारण स्नान नहीं कर पाते हैं। तब दुर्बल रोगियों को चादर को गीली करके उसे स्नान कराया जाता है। दुर्बल रोगियों के संपूर्ण कपड़े निकाल कर गीली चादर को जल में भिगोकर उसे निचोड़ दें निचोड़ने के पश्चात शुष्क घर्षण और व्यायाम करते हुए पूरे शरीर को घर्षण के रूप में स्नान करना चाहिए । सूती और बड़ी चादर को ठंडे पानी में भिगोकर निचोड़कर फिर उसका फिर व्यक्ति के पूरे शरीर पर गीली चादर को लपेट देते हैं। 15 से 20 मिनट तक लपेटने के पश्चात उसे चादर को निकाल कर छोड़ देते हैं। जब चादर के सूखने लगे तो पुनः फिर उसे चादर को जल में गीली करके पूरे शरीर से लपेट देते हैं। यह गीली चादर स्नान कहां जाता है यह जीवनी शक्ति को बढ़ाने में सबसे अधिक लाभकारी है।

- **संपूर्ण स्नान**

संपूर्ण स्नान किसी बड़े तब में पानी भरकर के पूरे शरीर को जब उसके अंदर प्रवेश कराकर स्नान कराया जाता है। टब से संपूर्ण जल स्नान कहा जाता है । सर्वप्रथम इस स्नान में रोगी के सिर , चेहरे और पेट के भाग और जोड़ों को पानी में रखने से पहले किसी बड़े टब में पानी भरकर के पूरे शरीर को जब उसके अंदर प्रवेश कराकर स्नान कराया जाता है। तब से संपूर्ण जल स्नान कहा जाता है। इस स्नान में रोगी के सिर पर एक हल्की सी टॉवल डालकर डाल देते हैं । फिर उसे रोगी को एक टब में लिटा देते हैं। टब में लेटने के पश्चात मौसम के अनुसार शीतल और गर्म जल का उपयोग करते हुए धीरे–धीरे पूरे तब को पानी से भर देते हैं। यह क्रिया 5 से 10 मिनट तक की जाती है 10 मिनट के बाद रोगी को टब से निकालकर पूरे शरीर को हथेलियां को शुष्क घर्षण के साथ साफ कर देते हैं । और फिर विश्राम के लिए भेज देते हैं।

- **बर्फ से सिकाई एवं बर्फ स्नान**

जब शरीर में कोई चोट लग जाती है। या गर्मी के दिनों में शरीर की अधिक ऊर्जा बढ़ जाती है। जिसके कारण लोगों को बेहोशी जैसी समस्याएं आती हैं। तब ठंडा जल का उपयोग किया जाता है। और कहीं चोट लगने पर आग से जल जाने पर जले हुए भाग की पीड़ा दूर करने के लिए बर्फ से सिकाई की जाती है। तथा शरीर की अनावश्यक गर्मी को बर्फ के माध्यम से दूर किया जाता है। जिसमें बर्फ को बोतलों में भर के शरीर के ऊपरी अंगों पर सिकाई की जाती है। बर्फ से शरबत आदि गोल बनाकर के भी गर्मी के दिनों में दिए जाते हैं जो लूं जैसी समस्याओं से बचने में काफी लाभकारी है।

- **शरीर के अंगों का स्नान**

साधारण जल के स्नान की तरह शरीर के सभी भागों को स्नान कराया जाता है। जिसमें नेत्र का स्नान , नेत्र के रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। कटि स्नान कमर के रोगों को दूर करने के लिए कटि स्नान किया जाता है। उदर स्नान उदर के भागों के रोगों को दूर करने के लिए स्नान किया जाता है। पैर स्नान और हाथ स्नान जो हमारी चैतन्यता को विकसित करने का काम करती है ऐसी अवस्था में पेर और हाथों के स्नान भी कराए जाते हैं।

5.4.2 घर्षण स्नान

घर्षण स्नान साधारण स्नान के अंतर्गत आता है। जब व्यक्ति को पूरे शरीर को रगड़ रगड़ करके पूरी त्वचा को गर्म करके रूम कूपो को खोल दिया जाता है। और त्वचा लाल हो जाती है । उसे घर्षण स्नान कहा जाता है। जिसमें किसी कॉटन के कपड़े को लेकर उसे पानी में भिगोकर पूरे शरीर को रगड़ रगड़ के साफ किया जाता है । और साफ होने के पश्चात ठंड और गर्म मौसम के अनुसार जल से पूरे शरीर को नहला दिया जाता है। और स्नान के बीच–बीच में शरीर को घर्षण करते रहते हैं। तब इसे घर्षण

स्नान कहा जाता है। यह घर्षण स्नान, जिस अंग को कराया जाता है। उसे अंग को पहले सूखी मालिश के रूप में कर लिया जाता। फिर पूरे शरीर को स्नान करा दिया जाता है। इसे घर्षण स्नान कहा जाता है। जो रक्त संचार को बढ़ाता है । मांसपेशियों की थकावट को दूर करता है। तथा त्वचा में रक्त के संचार को बढ़ाकर रोगों को दूर करने का कार्य करता है।

5.4.3 कटि स्नान

कटि स्नान प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा के बाह्य स्नान के अंतर्गत सबसे प्रमुख स्नानों में आने वाला स्नान है। कटि स्नान की शुरुआत डॉक्टर लुई कुने के माध्यम से हुई। लुई कुने को प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे प्रसिद्ध चिकित्सकों में से एक माना जाता है। जिन्होंने जल चिकित्सा पर सबसे ज्यादा कार्य किया इसलिए लुई कुने को आधुनिक जल चिकित्सा का जनक भी कहा जाता है। इन्होंने विभिन्न प्रकार के स्नानों को जनमानस के सामने रखकर उनके रोग निवारण में सबसे अधिक भूमिका निभाई। कटि स्नान कमर के भाग के स्नान को कहा जाता है। यह कमर से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं और उदर की सभी समस्याओं को दूर करने में सबसे लाभकारी है। सभी स्नानों में इसे सबसे प्रमुख और श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि कमर के भाग और उदर के भाग से पूरे संपूर्ण शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। यदि कमर के भाग को स्नान करा दिया जाता है। तब संपूर्ण शरीर की बीमारियां धीरे–धीरे दूर हो जाती हैं। प्राकृतिक चिकित्सकों ने गर्मी के समय जंगल में रहने वाले सभी जीव जंतुओं को देखा, कि वह जल में रहकर अपने शरीर की जल से डुबोकर रखते हैं जिससे उनसे सभी प्रकार की बीमारियां दूर होती हैं।और उनको काफी आराम मिलता है। कटि स्नान का वहीं से जन्म हुआ। मानव के प्रमुख अंगों जैसे अमाशय, किडनी, लीवर और उदर प्रदेश यह सब की सब मुख्य रूप से कटि प्रदेश से ही सम्बंधित हैं।
कटी स्नान समय देश, काल, परिस्थिति, वातावरण और मौसम के अनुसार कटि स्नान की निम्न विधियां बतलाई गई है।

1. ठंड जल से कटि स्नान।
2. गर्म जल से कटि स्नान।
3. ठंड और गर्म मिश्रित जल से कटि स्नान।

सामान्य कटि स्नान

यह स्नान सामान्य जल से किया जाता है ।

उपकरण

कटिस्नान टब (प्लास्टिक, लकड़ी या फाइबर का), पानी , तोलिया ,एक रुमाल, लकड़ी की चौकी ,एक जग और गिलास।

विधि

सर्वप्रथम कटिस्नान करने से पूर्व सभी आवश्यक सामग्री को कटि स्नान करने वाले स्थान पर रख लेना चाहिए। फिर कटी स्नान के टब को प्लास्टिक लकड़ी या फाइबर से बना हो उस में पानी भर देना चाहिए। मौसम के अनुसार गुनगुना गर्म या ठंडा जल का उपयोग कर सकते हैं। उसके पश्चात रोगी को एक गिलास शीतल जल पिलाकर उसे कटि स्नान तब में कपड़ों को उतार कर बिठा देते हैं। टब में बिठाने के बाद सिर के ऊपर एक रुमाल रख देते हैं। तथा पैरों, तलवो के नीचे लकड़ी की चौकी रख देते हैं। और फिर रोगी को कटिस्नान के लिए 15 से 20 मिनट के लिए टब मैं बैठने के लिए बोल देते हैं। रोगी की परिस्थिति के अनुसार समय को बढ़ाया और कम भी किया जा सकता है। कटि स्नान करते समय रोगी से उदर भाग की मालिश , उदर पर घर्षण करने के लिए बोला जाता है। कटि स्नान के दौरान रोगी अपने पेट पर दाएं से बाईं की ओर क्लाकवाइज तथा एंटी क्लाकवाइज धीरे–धीरे अपने पेट की मसाज करता है। समय पूर्ण होने के बाद रोगी को जल से निकाल लेते हैं । और गीले कपड़ों को बदलकर सूखे तौलिए से कमर के भाग को पूरी तरह से पानी को साफ कर देते हैं। फिर आराम के लिए भेज देते हैं इस प्रकार कटि स्नान कराया जाता है।

समयावधि – 15 से 20 मिनट

लाभ

कटि स्नान के अनेकों शारीरिक लाभ देखने को मिलते हैं।

- शारीरिक रोगों की जड़ कब्ज को दूर करने में सहायक है।
- बड़ी आंत तथा छोटी आंत की क्रियाशीलता को बढ़ाता है ।
- पुरानी कब्ज को दूर करता है।
- पेट के सभी प्रकार के विकारों व मलों को निष्कासन करने में मदद करता है। पाचन शक्ति को बढ़ाता है।
- कमर दर्द, बवासीर, गैस , अपच पीलिया , सिर दर्द आदि में विशेष लाभकारी है।
- हृदय रोगों में उच्च रक्तचाप, अनिद्रा ,लिकोरिया, मासिक धर्म की अनियमित को दूर करता है।

- मूत्र की रुकावट गर्भाशय संबंधित सभी प्रकार की क्रियाशीलता को बढ़ाकर रोगों को दूर करता है।
- महिलाओं के गर्भाशय की सिस्ट की समस्या में विशेष लाभकारी है।

सावधानियां

1. कटिं स्नान खाली पेट नहीं करना चाहिए।
2. कटि स्नान करने से पहले एक गिलास पानी अवश्य पीना चाहिए फिर करना चाहिए।
3. स्नान करते समय सिर के ऊपर रुमाल या जल से भीगी तोलिया अवश्य रखें।
4. महिलाओं के मासिक दौरान के समय कटि स्नान नहीं करना चाहिए।
5.सर्दी के दिनों में रोगी को ठंडक लगने पर कंबल, मौसम के अनुसार ठंड गरम जल का उपयोग करना चाहिए।
6.रोगी की कब्ज आदि अधिक पुरानी हो तो मसाज करने के बाद ही कटि स्नान करना चाहिए।

5.4.3 मेहन स्नान

डॉक्टर लुई कुने ने अपनी जल चिकित्सा स्नानों के अंतर्गत महिला व पुरुषों के जननांगों से संबंधित रोगों को दूर करने के लिए मेहन स्नान की खोज की। यह स्नान महिला व पुरुष अपने जननांग के भाग को गर्म व ठंडे मौसम ऋतु के अनुसार जल का प्रयोग करके स्नान कराया जाता है। इसे लिंग स्नान भी कहते हैं। इस स्नान में तेज ठंडे जल का प्रयोग किया जाता है। लेकिन सर्दियों के दिनों में हल्का गुनगुना पानी भी ले सकते हैं। रोगी की अवस्था के अनुसार गम और ठंडे जल का प्रयोग किया जाता है। उत्सर्जन तंत्र से होने वाली समस्याओं और लिंग प्रदेश से होने वाली समस्याओं के निदान में सबसे लाभकारी माना गया है।

उपकरण

कटि स्नान टब या मेहन स्नान के लिए उपयुक्त टब ,जग , बाल्टी , लकड़ी की चौकी तोलिया आदि।

विधि

मेहन स्नान करने के लिए कटि स्नान टब को रख ले यदि कटि स्नान टब नहीं है, तो इस स्नान के लिए जल नेति पॉट और बाल्टी के माध्यम से भी किया जा सकता है। रोगी के कपड़ों को निकाल कर महिला व पुरुष दोनो के लिए एक समान करने की विधि बताई गई है। इसमें कपड़े को निकाल कर कटि

स्नान वाले टब में एक लकड़ी की चौकी रखकर उस पर रोगी को बैठा दिया जाता है। फिर टब में ठंडा पानी भर दिया जाता है। फिर एक सूती कपड़े की सहायता से उसे जल में भिगोकर योनि के चारों तरफ उस कपड़े की सहायता से स्नान कराया जाता है। महिला की योनि के ऊपरी भाग को पूरी तरह से ठंडे जल से स्नान करने की विधि को मेहन स्नान कहा गया है। इस स्नान में महिला के योनि के चारों तरफ के भाग को जल से स्नान कराया जाता है। उसे चारों तरफ से रगड़ते हुए ऊपर की चमड़ी के भाग को साफ किया जाता है। यह स्नान 10 से 20 मिनट तक करना चाहिए। बाद में सुखी तौलिया से योनि के भाग को पूरी तरह से सुखाकर हथेलियां को गर्म करके उसे स्थान को साफ करना चाहिए। यह स्नान आधे घंटे तक भी किया जा सकता है।

पुरुष वर्ग के लिए मेहन स्नान की विधि महिलाओं की मेहन स्नान की विधि के समान ही है। इसी प्रकार लकड़ी के टब में बैठकर जल के माध्यम से लिंग के ऊपरी भाग को ठंडा पानी से भरकर बार–बार धोना चाहिए। और दो उंगलियों से लिंग को पड़कर आगे की तरफ खिंचाव देते हुए उसे लिंग को ऊपरी चमड़ी को साफ करना चाहिए। हो सके तो बार–बार घर्षण करते हुए लिंग को पूरी तरह से साफ करके जननेंद्रिय के मुख के ऊपर की चमड़ी और अंतिम सिरे को कपड़े को जल में भिगोकर अच्छे से ठंडे जल से धुल कर स्नान करना चाहिए । बाद में सूखे तौलिया से साफ कर पोंछ देना चाहिए। यह मेहन स्नान टब के अभाव में बाल्टी और टोटी युक्त छोटे बर्तन या एनिमा पॉट के माध्यम से भी किया जा सकता है। नल के द्वारा पानी की धार के माध्यम से भी मेहन स्नान किया जा सकता है। पानी खत्म होने पर दोबारा पानी भर लेना चाहिए। और पानी गर्म व ठंडा मौसम के अनुसार रखना चाहिए ।

लाभ

यह मेहन स्नान अनेक लाभों को देने वाला बताया गया है। मेहन स्नान बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। मेहन स्नान से बहुत सारे मस्तिष्किया और मेरुदंड से संबंधित बीमारियां दूर होती हैं। क्योंकि लिंग प्रदेश का संबंध स्नायु प्रदेश से होता है। मेहन स्नान का प्रभाव संपूर्ण शरीर पर पड़ता है। यह शरीर की गर्मी को शांत करता है। शरीर की उत्तेजना को शांत करता है। लिंग की कमजोरी को दूर करता है। महिलाओं में मासिक धर्म से संबंधित अनियमितताओं और योनि में होने वाली पीड़ा को शांत करता है। जीवनी शक्ति को बढ़ाता है । शांति प्रदान करता है।

सावधानियां

- मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को मेहन स्नान नहीं करना चाहिए।
- गर्भावस्था के दौरान मेहन स्नान का उपयोग नहीं करना चाहिए ।

- किसी प्रकार से चोट या सूजन के दौरान मेहन स्नान काफी लाभकारी भी है पस और खुजली आदि की समस्याओं के होने पर मेहन स्नान नहीं करना चाहिए। इससे लिंग प्रदेश में बहुत ही इंफेक्शन बढ़ाने की संभावना बढ़ जाती है।

5.4.4 भाप स्नान

जल तत्व चिकित्सा के बाह्य स्नान के अंतर्गत जल तत्व के गैस रूप के माध्यम से स्नान करने की विधि को भाप स्नान कहा गया है। जल चिकित्सा के अंतर्गत आने वाले स्नानों में प्रमुख चिकित्सा के अंतर्गत आता है। प्राकृतिक चिकित्सा के जनक हिप्पोक्रेटीज ने जल चिकित्सा के अंतर्गत भाप के माध्यम से रोगियों के रोगों को ठीक करने के लिए स्थानीय भाप स्नान का काफी प्रयोग किया करते थे। साथ ही आधुनिक जल चिकित्सा के जनक लुई कुने के द्वारा भी भाप स्नान का प्रयोग किया गया वर्तमान समय में जल चिकित्सा के अंतर्गत भाप स्नान बहुत ही ज्यादा प्रचलित स्नान में से एक है। जो शरीर की चर्बी मोटापा को दूर करके रूम छिद्रों को खोलकर हमारे वशीय ऊतकों को कम करके मोटापे को दूर करना तथा त्वचा से पसीने के माध्यम से विजाती द्रव्यों को निकाल कर शरीर को स्वस्थ व निरोग बनाने का काम भाप स्नान के द्वारा बहुत ही देखा गया है। भाप स्नान की विधि बहुत ही प्रचलित है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति ने प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत आसानी से अपनाया। भाप स्नान जब शरीर में अधिक पृथ्वी तत्व बढ़ जाता है। शरीर की ऊपरी त्वचा मोटी हो जाती है। तथा मोटापा को दूर करने के लिए और शरीर से पसीना लाने के लिए भाप स्नान कराया जाता है। जिसमें रोगी को भाप के चेंबर में बिठाकर 5 से 8 मिनट या रोगी की क्षमता के अनुसार बिठाया जाता है। तत्पश्चात रोगी को निकाल कर पूरे शरीर को ठंडे जल से नहलाकर साफ कर दिया जाता है। यह उच्च रक्तचाप के रोगियों को नहीं कराया जाता है। यह भाप स्नान कहलाता है। इन सभी स्नानों को बाह्य तौर पर हम साधारण स्नान के रूप में उपयोग करते हैं।

आवश्यक सामग्री

गिलास , जग, पानी, स्टीम बाथ चैंबर स्टीम बनाने वाला यंत्र, लकड़ी की चौकी, एक छोटा रुमाल और एक बड़ा तोलिया, गैस बर्नर।

समयावधि

गर्मी के दिनों में 3 से 5 मिनट तथा सर्दियों में 5 से 10 मिनट।, या पसीना निकलने तक।

विधि

सर्वप्रथम रोगी के शरीर की सूखी या तेल से मालिश करने के बाद भाप स्नान करने से पूर्व रोगी को एक गिलास शीतल जल पिला देना चाहिए। उसके उसके बाद रोगी को निर्वस्त्र करके भाव स्नान चेंबर के अंदर लकड़ी के स्टूल पर बैठा देना चाहिए।

उसके उपरांत सिर के ऊपर एक गली तोलिया या रुमाल रख देना चाहिए ताकि भाप स्नान के दौरान शरीर की गर्मी सिर के ऊपर ना चढ़े उसे तोलिया पर धीरे–धीरे जल को टपकाते रहना चाहिए। उसके उपरांत गैस बर्नर को ऑन कर देना चाहिए और भाप को भाप स्नान चैंबर में भरने के लिए खोल देना चाहिए। धीरे–धीरे जब भाप बनकर , भाप स्नान चेंबर में भर जाए । तब रोगी से शरीर की अंदर ही अंदर मालिश करने के लिए कहना चाहिए। मालिश हाथ , पैर , कंधे ,पृष्ठ भाग अग्र, भाग जांघों, घुटनों, हथेलियां हाथ की कोहनी, कलाई, पंजो आदि की पूरी तरह से मालिश करते रहना चाहिए। भाप स्नान से जब पूरी तरह से शरीर पसीने से युक्त हो जाए उसे दौरान मालिश करते रहना चाहिए।गर्मी के दिनों में 3 से 5 मिनट तथा सर्दियों के दिनों में 5 से 10 मिनट तक भाप स्नान कराना चाहिए। यह समय रोगी की क्षमता के अनुसार घटाया वह बढ़ाया जा सकता है। उपयुक्त तब तक रहता है जब तक शरीर से पसीना ना

निकलने लगे और पसीना निकलने के उपरांत शरीर का मर्दन करते रहना चाहिए। उसके बाद रोगी को तुरंत भाप स्नान चैंबर से निकलकर हल्के, छिछले पानी से नहलाकर पूरे शरीर को तुरंत पहुंच देना चाहिए। पानी में ज्यादा देर तक स्नान नहीं करना चाहिए । जिससे निकला हुआ पसीना पूरी तरह से धुल जाए और सुखी तौलिया से शरीर के जल को पोंछ कर रोगी को विश्राम के लिए भेज देना चाहिए।

लाभ

भापस्नान अत्यंत लाभकारी शोधक जल के भाप स्वरूप स्नान है। इस स्नान के प्रभाव से शरीर के सभी रोम कूप खुल जाते हैं। और शरीर की त्वचा से पसीने के माध्यम से शरीर के विजाती द्रव्य बाहर निकलने लगते हैं।, इस स्नान के प्रभाव से शरीर की वशीय ऊतक पिघलने लगते हैं जिससे शरीर की वसा कम होती है और मोटापा रोग दूर होने लगता है।, शरीर में बनने वाली गांठे खुल जाती हैं।, शरीर में रक्त का संचार तेजी से बढ़ जाता है, हृदय की क्रियाशीलता बढ़ जाती है , भाप स्नान से स्वाद ग्रंथियां क्रियाशील हो जाती हैं, इस स्नान से ल्यूकोडर्मा एवं सोरायसिस आदि में आराम मिलता है। भाप स्नान का लाभ गठिया, अर्थराइटिस, ब्रोंकाइटिस, टॉन्सिल अस्थमा, पीलिया, मधुमेह, बुखार, मलेरिया एलर्जी, अतिअमलता, आदि में लाभकारी है। यह भाप स्नान शरीर की त्वचा में स्थित सभी प्रकार की नस नाड़ीयों की क्रियाशीलता को बढ़ाकर रक्त के संचार को बढ़ाती है । शरीर के वजन को भी कम करने के काम आती है। शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को भी मजबूत करती है।

सावधानियां

उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, मिर्गी के दौरा, रोगी को दस्त होने की अवस्था में , रक्तहीनता की कमी में, रोगी के हृदय से संबंधित रोगों में , वृद्धावस्था में, बच्चों को , मानसिक रूप से तनाव रोगी को यह स्नान नहीं करना चाहिए। साथ ही महिलाओं के मासिक रक्त स्राव की अवस्था और गर्भावस्था के दौरान यह भाप स्नान नहीं कराना चाहिए।

5.4.6 रीढ़ स्नान

जल तत्वों में बाह्य चिकित्सा के रूप में अंग स्नान के अंतर्गत रीढ़ स्नान का विधान बताया गया है। क्योंकि रीढ़ जिसे मेरुदंड के नाम से जाना जाता है। जो शरीर का आधार है। इसी मेरुदंड से ही तंत्रिका तंत्र का निर्माण हुआ है। सभी प्रकार की नस नाड़िया हमारे शरीर में एक–एक कोशिका तक पहुंचकर उनका क्रियाशील बनती हैं। रीढ़ की प्रत्येक कशेरुकाओ के दाएं और बाएं दोनों तरफ हजारों अरबों की संख्या में सूक्ष्म नाड़िया निकली है ।यही नाड़िया आपस में एक गुच्छक का रूप तैयार कर लेती हैं । और यह गुच्छक जब आपस में मिल जाते हैं। तो इसी को बाएं भाग के आपस में

मिले नाड़ी गुच्छक को इड़ा और दाहिने साइड के नाड़ी गुच्छक को पिंगला कहा जाता है । इस नाड़ी गुच्छक से निकलने वाले सूक्ष्म नाड़ी को आधुनिक विज्ञान की भाषा में न्यूरॉन्स कहा जाता है । यह सारे न्यूरॉन्स हमारे संपूर्ण शरीर के प्रत्येक अंग अवयव और प्रत्येक कोशिका तक पहुंच कर उन तक सूचनाओं का आदान–प्रदान करने का कार्य करती हैं। रीढ़ स्नान से सभी प्रकार की नस नाड़ियों और स्नायु तंत्र पूरी तरह से स्वस्थ और सशक्त बनता है। यह रीढ़ स्नान ठंडा रीढ़ स्नान तथा गर्म रीढ़ स्नान दो विधियों से किया जाता है। मौसम और रोगी की क्षमता के आधार पर गर्म और ठंडे जल का प्रयोग करके रीढ़ स्नान किया जाता है। दोनों स्नान की विधि एक समान है। रीढ़ स्नान की विधि के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

6 सामान्य रीढ़ स्नान

सामान्य रीढ़ स्नान जिसमे सामान्य जल का उपयोग करके स्नान कराया जाता है।

उपकरण

रीढ़ स्नान तब, लकड़ी की चौकी, गिलास , जग, बाल्टी, पानी, रुमाल एक तौलिया।

विधि

रीढ़ स्नान के लिए सारे उपकरण को पास में एकत्र करके रखते हैं। और रीढ़ स्नान टब में 2 से 3 इंच पानी गर्म या ठंडा, मौसम और व्यक्ति की क्षमता और रोग के अनुसार भर लेते हैं। तत्पश्चात रोगी के समस्त कपड़े निकालकर एक से डेढ़ गिलास शीतल जल पिला देते दिया जाता है। उसके पश्चात रोगी को जल से भरे रीढ़ स्नान टब में लेटने के लिए कह दिया जाता हैं।और टब में लेटने के बाद सिर के पास एक तकिया रख देते हैं। तथा टब के बाहर दोनों पैरों के नीचे लकड़ी की चौकी रख देते हैं। सिर के ऊपर एक हल्का सा सूती रुमाल जल में भिगोकर मस्तिस्क पर रख देते हैं। इस प्रकार रोगी को पूरी तरह से लेट जाने के बाद 15 से 20 मिनट तक यह स्नान कराया जाता है। परिस्थिति से अनुसार समय को बढ़ाया और कम भी किया जा सकता है। पूर्ण होने के बाद रोगी को जल से निकाल लेते हैं । और बड़ी तौलिया से रीढ़ को पोंछ दिया जाता है। और रोगी को फिर विश्राम के लिए कराया जाता है। यह रीढ़ स्नान समस्त तंत्रिका तंत्र को शिथिल और सक्रिय बनता है। तांत्रिक तंत्र से उत्पन्न सभी प्रकार के रोगों में विशेष लाभकारी है।

समावधि 15 से 20 मिनट

लाभ

- यह रीढ़ स्नान रक्त संचार को बढ़ाता है।
- स्नायु को सशक्त बनाता है।

- निम्न रक्तचाप के रोगी के लिए और अनिद्रा के रोग में विशेष लाभकारी है,
- पीठ दर्द, कमर दर्द, जुकाम , खांसी अस्थमा ,आदि में विशेष लाभकारी है।
- शरीर की तंत्रिकाओं में संवेदनहीनता और शरीर में आलस्य को दूर करता है।,
- शरीर में अधिकता होने पर शरीर को शिथिल बनता है।
- अवसाद आदि रोगों में काफी विशेष लाभकारी है।

सावधानियां

यह रीढ़ स्नान निम्न रक्तचाप सियाटिका और गंभीर कमर दर्द वाले रोगियों को ठंडे जल से स्नान नहीं करना चाहिए। उनके लिए गर्म जल का विधान बताया गया है। इस रीढ़ स्नान को खाली पेट करना चाहिए।, स्नान करने से पूर्व पानी अवश्य पीना चाहिए, स्नान के दौरान सर पर गीली रुमाल की पट्टी को अवश्य रखना चाहिए, महिलाओं के मासिक धर्म के दौरान यह स्नान न करें, गर्भावस्था के दौरान भी स्नान निषेध माना गया है, सर्दी के दिनों में रोगी के ऊपर अच्छे से कंबल से ढक देना चाहिए, और गर्म जल का उपयोग करना चाहिए ठंडी के दिनों में गर्म जल का उपयोग करना चाहिए, और गर्म मौसम में ठंडे जल का उपयोग करना चाहिए।

5.4.7 उष्ण पाद स्नान

गरम पद स्नान या गर्म जल से पैरों के भाग को स्नान कराया जाता है। यह भी बाह्य जल स्नान में अंग स्नान के अंतर्गत आता है। जिसमें गर्म और ठंडे जल का उपयोग करके पैरों को स्नान कराया जाता है। यह गम पाद जल स्नान ठंडक के दिनों में, गर्मी के दिनों में सामान्य जल से स्नान कराया जा सकता है। किंतु गर्म जल से करने पर विशेष लाभ मिलते हैं। इसलिए गर्मी के दिनों में भी गर्म जल पाद स्नान कराया जा सकता है। सिर के ऊपरी भाग में होने वाले सभी प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए या बहुत ही उपयोगी। यह स्नान पैरों की दर्द तथा पैरों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से कराया जाता है।

उपकरण

पाद स्नान टब या बाल्टी, गिलास , जग , पानी , एक रुमाल और तोलिया , ऊनी कम्मल, जल को गर्म करने का उपकरण।

समयवधि 20 से 30 मिनट

विधि

गरम पाद जल स्नान जिसमें गर्म जल का उपयोग करके पैरों को स्नान कराया जाता है। यह स्नान ठंडे जल से भी कराया जा सकता है। दोनों की विधि समान होने के कारण हम यहां पर सामान्य जल से पाद स्नान की विधि का वर्णन कर रहे हैं ।

सर्वप्रथम जिस व्यक्ति को गर्म जल पाद स्नान करना है। उसे एक कुर्सी पर बिठाकर एक बाल्टी में गुनगुना गर्म जल को भर दिया जाता है ।तत्पश्चात रोगी को एक गिलास पानी पिलाकर सर पर एक गीली पट्टी यह रुमाल रख देना चाहिए। ताकि पैरों की गर्मी सर की तरफ ना चढ़े। उसके बाद रोगी के दोनों पैरों को गर्म जल से भरी बाल्टी में रख देना चाहिए उस पैर स्नान टब में घुटनों तक जल को भरने के पश्चात 20 से 30 मिनट तक रोगी को उसी में बैठने दिया जाए। और ऊपर से रोगी को ऊनी कमल को अच्छे से ओढ़ने के लिए दिया जाए। अवधि पूर्ण होने के बाद रोगी को तब से निकलकर सूती तौलिया से पूरे पैरों को अच्छे से पोंछ देना चाहिए। फिर रोगी को 10
से 20 मि. तक भ्रमण करने के लिए और हल्के व्यायाम करने के लिए करना चाहिए।

लाभ

- यह गर्म पाद जल स्नान पैरों में जकड़न को दूर करता है,
- मस्तिष्क को प्रभावित करके और अवसाद , चिंता को दूर करता है ।
- सिर दर्द, पैरों का सूजन, पैरों के विकार माइग्रेन पैरों के पंजे, उंगलियों में चोट , सुन्नपन , झनझनाहट आदि के साथ–साथ अनेक रोगों को दूर करने में लाभकारी है,

- उच्च रक्तचाप में विशेष लाभकारी है।
- अनिद्रा, गठिया, साइटिका, पैरों का दर्द, सूजन, थकान ,मासिक धर्म के दौरान यह स्नान विशेष लाभकारी है,

सावधानियां

सावधानियां की बात की जाए तो गर्म पाद जल स्नान भोजन के तुरंत बाद ना करें बल्कि 4 घंटे के बाद ही यह स्नान करना चाहिए, सिर पर गीली पट्टी अवश्य रखें।, विशेष उच्च रक्तचाप और हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को गर्म पाद जल स्नान से पूर्व दो गिलास शीतल जल अवश्य पिलाना चाहिए।, निम्न रक्तचाप में या स्नान नहीं करना चाहिए।

7. हाथ स्नान

पाद स्नान की भांति हाथों के स्नान की विधि बतलाई गई है। हाथों से संबंधित रोगों को दूर करने के लिए यह विशेष लाभकारी स्नान है।

उपकरण

हाथ स्नान टब , एक गिलास, जग पानी, नमक, एक छोटा तौलिया और बड़ा तोलिया, कुर्सी या मेज।

समयावधि 15 से 20 मिनट

विधि

सर्वप्रथम हाथ स्नान करने वाले सभी उपकरण को पास में रखकर हाथ स्नान टब में मौसम के अनुसार गर्म या ठंडा जल को भर लें । उसमें नमक मिला दें नमक की मात्रा स्वाद के अनुसार रखें। तत्पश्चात रोगी को एक–एक या डेढ़ गिलास शीतल जल पिलाकर कुर्सी पर बिठा दें। कुर्सी पर बिठाने के पश्चात सिर पर एक गीला रुमाल रख दें। और रोगी के शरीर को सर्दी के दिनों में ऊनी कम्मल से पूरी तरह से ढक दें और रोगी के दोनों हाथों को हाथ स्नान तब में पूरी तरह से अंदर प्रवेश कर दें और पैरों के नीचे लकड़ी की चौकी रख दें । 15 से 20 मिनट तक हाथ स्नान करने के बाद रखें उसके पश्चात रोगी को हाथों को बाहर निकाल कर सुखी तौलिया से अच्छे से पोंछ दें।

लाभ

- हाथों में सुन्नपन , हाथों की झनझनाहट , रूमेटाइड अर्थराइटिस, हाथों की मांसपेशियों का दर्द, गर्दन की सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, कंधों का दर्द जैसे रोगों में विशेष लाभकारी है।

8. पूर्ण टब स्नान

संपूर्ण शरीर को जब टब के अंदर पूरी तरह से जल में भिगोकर स्नान कराया जाता है तब उसे पूर्ण जल पूर्ण तब स्नान कहा जाता है। टब स्नान को हम नदियां, तालाबों समुद्र आदि में जिस प्रकार करते हैं । इस तरह हम एक बड़ा सा तब में जब स्नान कराया जाता है।

उपकरण

पूर्ण जल स्नान टब , एक जग, गिलास पानी, लकड़ी की चौकी, तकिया, एक छोटा रुमाल, बड़ा तोलिया।

विधि

सर्वप्रथम पूर्ण टब स्नान करने से रोगी को एक गिलास शीतल जल पिलाकर उसे स्नान के किए जल से भरे टब में लिटा दिया जाता है। और रोगी के टब में लेटने पर पूरी तरह से शरीर को जल के अंदर डुबो लिया जाता है। और गर्दन से ऊपर भाग सिर को पानी से बाहर निकल कर उसके नीचे तकिया रख दी जाती है । सिर के ऊपर एक भीगा रुमाल रख दिया जाता है। और पूरा शरीर तब के अंदर जल में रहता है। यह क्रिया यह स्नान 20 से 45 मिनट तक किया जाता है । उसके पश्चात रोगी को बड़े तौलिया से पूरे शरीर को साफ कर दिया जाता है। और रोगी को विश्राम के लिए भेज दिया जाता है। यह पूर्ण टब स्नान कहलाता है। जो हमारे संपूर्ण रोगों के लिए विशेष लाभकारी है। यह स्नान शारीरिक थकावट ,मूर्छा ,कमजोरी को दूर करता है, साथ ही जीवनी शक्ति में वृद्धि करके प्राण शक्ति को मजबूत बनाता है, गुर्दे , यकृत, फेफड़े , अमाशय आदि को सुचारू रूप से चलने में सहायक है। टाइफाइड में यह स्नान विशेष लाभकारी है। उच्च रक्तचाप ,अनिद्रा, को दूर करता है। त्वचा रोगों में भी विशेष लाभकारी है,

सावधानियां

उच्च रक्तचाप के रोगी को स्नान से पूर्व पानी पिलाना आवश्यक चाहिए। सर पर गीली पट्टी या रुमाल रखना चाहिए। यह स्नान खाली पेट कभी नहीं करना चाहिए। अत्यधिक ठंड के समय में गुनगुने

जल का या गर्म जल का प्रयोग करना चाहिए। , मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को यह स्नान नहीं करना चाहिए, गर्भावस्था के दौरान भी यह स्नान नहीं करना चाहिए, लगातार गर्म पानी में यह स्नान नहीं करना चाहिए , क्योंकि गर्म पानी में स्नान करने से जीवनी शक्ति का ह्रास होता है इसलिए गर्म में यह पूर्ण टब स्नान नही करनी चाहिए।

5.5 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. प्रातः काल खाली पेट जल पीने को क्या कहा जाता है?

अ. उषापान

ब. चाय पीना

स. शरबत पीना

द. सभी

प्रश्न– 2. रीढ़ स्नान की समय सीमा क्या बतलाई गई है?

अ. 5 से 10 मिनट

ब. 15 से 20 मिनट

स. 20 से 30 मिनट

द. 35 से 40 मिनट

प्रश्न– 3. कटि स्नान कौन से तत्व से की जाने वाली चिकित्सा हैं?

अ. वायु

ब. जल

स. मिट्टी

द. आकाश

प्रश्न– 4. उच्च रक्तचाप में कौन सा स्नान नहीं करना चाहिए है?

अ. भाप स्नान

ब. रीढ़ स्नान

स. पूर्ण टब स्नान

द. मृदा स्नान

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. मोटापे के लिए भाप स्नान सर्वोत्तम जल चिकित्सा मानी गई है।

प्रश्न–6. उच्च रक्तचाप के भी व्यक्ति को भाप चिकित्सा कराई जाती है।

5.6 सारांश

इस प्रकार प्रिया पाठको हमने इस प्रस्तुत इकाई के जल के सभी स्नानों के प्रकारों की गहन जानकारी प्राप्त की जिसमे जल ठंड व गरम के प्रभाव को जाना साथ ही सभी प्रकार के स्नानों से होने वाले लाभ, स्नान करने की विधि , उपकरण, लाभ और सावधानियां को हमने विस्तार पूर्वक पढ़ा, जल के बाहर व आंतरिक स्नान के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त की जिसमें, नेति क्रिया , वमन , धौति, मेहन स्नान, कटि स्नान, भाप स्नान ,गरम पाद स्नान आदि की विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त किया। इन सभी प्रकार के जल के स्नान से शरीर में नाना प्रकार की बीमारियों से निजात मिलता है। और शरीर पूरी तरह से प्रकृति के संरक्षण में रहकर स्वस्थ और दीर्घायु को प्राप्त होता है। इसलिए पांच तत्वों में उपयोग होने वाले जल तत्व से कई तरह स्नान से लाभ लिया जा सकता है। इन स्नान में समुद्र का स्नान, झरने का स्नान, साधारण दैनिक स्नान, भाप स्नान , आदि के बारे में हमने गहन जानकारी प्राप्त की। जिसका मानव जीवन में उपयोग करके सभी प्रकार से लाभों को लिया जा सकता है। जो सर्व सुलभ और आसानी से या चिकित्सा की जा सकती है। जो बिना किसी खर्च के बहुत ही उपयोगी चिकित्सा है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 अ. उषापान

प्रश्न –2 15 से 20 मिनट

प्रश्न –3 ब. जल

प्रश्न –4 अ. भाप स्नान

प्रश्न –5. **सत्य**

प्रश्न–6. **असत्य**

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.जल चिकित्सा के सिद्धांतों को विस्तार से वर्णन करें ।

2. जल की बाहय चिकित्सा विधियों को विस्तार से वर्णन करें।

3. जल का विभिन्न तापक्रमों पर क्या–क्या प्रभाव पड़ता है वर्णन करें।

4. जल स्नान का विस्तार से वर्णन करें ।

5. भाप स्नान के लाभ और सावधानियां को विस्तार से समझाइए।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- आचार्य प श्रीराम शर्मा – पंच तत्वों द्वारा सपूर्ण रोगो का निवारण।
- वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों, – देव सस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार,
- जिन्दल डा0 राकेश – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान।
- आचार्य श्रीराम शर्मा – गायत्री महाविज्ञान ।
- रोग और योग – डा० स्वामी कर्मानन्द
- भोजन और स्वास्थ्य – डा० ओमकार नाथ।
- प्राकृतिक चिकित्सा समग्र उपचार– डॉक्टर सरस्वती काला।
- प्राकृतिक चिकित्सा – उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय ।
- आचार्य श्रीराम शर्मा – पंचकोषी साधना एवं उपलब्धियां।

06 एनिमा की विधि एवं परिचय, एनिमा में प्रयुक्त होने वाले पानी, तेल तथा विविध रोगों में एनिमा का प्रयोग एवं सावधानियां

- **6.1** प्रस्तावना
- **6.2** उद्देश्य
- **6.3** एनिमा का परिचय
- **6.4** एनिमा की विधि
- **6.5** एनिमा में प्रयुक्त होने वाले पानी तेल
- **6.6** विविध रोगों में एनिमा का प्रयोग एवं सावधानियां
- **6.7** सारांश
- **6.8** सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- **6.9** निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

बड़ी आंत की सफाई की प्रक्रिया के लिए विभिन्न क्रियाएं की जाती हैं। इन क्रियाओ में एनिमा सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रस्तुत इकाई में हम एनिमा से होने वाले लाभ, एनिमा की विधि ,एनीमा से आंतों की सफाई मल और कब्ज की समस्या को कैसे दूर किया जा सकता है। इसकी जानकारी विस्तार पूर्वक प्राप्त करेंगे। और एनिमा के दौरान किन–किन सावधानियां को रखा जाए और इसके असामान्य लाभों और अलग–अलग बीमारियों में कौन–कौन से एनिमा को दिया जाए? एनिमा के दौरान किस तेल का उपयोग किया जाए? कौन से जल का उपयोग किया ?, जाए इसकी विस्तार पूर्वक जानकारी विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त करेंगे। एनिमा से उदर भाग की पूर्णता सफाई होती है। जब उदर भाग पूरी तरह से साफ हो जाता है। तो समस्त चक्रों की भी शुद्धि हो जाती है। एनिमा विभिन्न प्रकार की औषधियां आदि के माध्यम से भी दिया जाता है।

जिसका मूल उद्देश्य होता है। कि उदर भाग से संबंधित सभी प्रकार की बीमारियों से निजात पाने के लिए एनिमा का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि एनिमा हमारे बड़ी आंत के मल को दूर करने में सबसे उपयोगी और लाभकारी माना गया है। क्योंकि बड़े आंत की सफाई कर पाना मुश्किल होता है। क्योंकि दिन प्रतिदिन की जिंदगी में तरह–तरह के खाद्य पदार्थ के खाने से हमारे बड़ी आंत में माल इकट्ठा होकर जम जाता है। कभी–कभी जल की मात्रा की कमी होने पर वह कठोर और कड़ी अवस्था में होकर आंत के अंदर ही सड़ने लगता है। इस अवस्था में शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इन सभी प्रकार के रोगों और बड़ी आंत की सफाई के लिए एनिमा की चिकित्सा बहुत ही महत्वपूर्ण मानी गई है । जो मल की कठोरता को दूर करके मल को पूरी तरह से शरीर से निकालकर आमाशय से निकालकर शरीर को निरोग और स्वस्थ बनाने का कार्य करती है। एनिमा चिकित्सा संपूर्ण रोगों में सबसे अधिक और प्रभावी लाभकारी मानी गई है।

6.2 उद्देश्य

- इकाई में हम एनिमा के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।
- एनिमा की विधि उसके लाभों को विस्तार से जान पाएंगे।
- एनिमा के दौरान किन–किन तेल व औषधि व जल के तापमान और मात्रा को रखा जाता है ? इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में विभिन्न रोगों में एनिमा की विधि, उसके लाभ और सावधानियां को विस्तार से जानेंगे।

6.3 एनिमा का परिचय

एनिमा जल के आंतरिक प्रयोग विधि के अंतर्गत की जाने वाली चिकित्सा है। इसे योग की भाषा में बस्ती क्रिया के नाम से भी जाना जाता है। आज वर्तमान समय में मानव अधिक प्रगति और विकास की चाह में भौतिकवादी जीवन जीने के कारण मानव प्रकृति को भूलता चला गया। उसके खान–पान में विभिन्न प्रकार की विकृतियां आ गई । खाने योग्य चीजे नही खाता और न खाने योग्य चीजे खा रहा है । प्रकृति से भरपूर खाने को वह तिरस्कार करता है। जिसके कारण शरीर में नाना प्रकार के रोग होते हैं। इन रोगों में कब्ज की समस्या वर्तमान समय में बहुत ही गंभीर रूप से जनमानस को परेशान कर रही है। कब्ज को सभी बीमारियों की मां के नाम से भी जाना जाता है। कब्ज से सभी प्रकार की बीमारियां उत्पन्न होती हैं।

और कब्ज के उपचार के लिए विभिन्न प्रकार की बाजारों में औषधीय बनाई गई। एनिमा बड़ी आंत में चिपके हुए कठोरमल को पानी में तोड़कर उसे निकालने का कार्य करता है। एनिमा से बड़ी आंत की शुद्धि और मलाशय भाग की शुद्धि होती है। एनिमा से जल को गुदा भाग में प्रविष्ट करके कठोरमल को आंतों से बाहर निकाला जाता है । यह एनिमा उपवास काल में बहुत ही उपयोगी माना गया है। उपवास काल के दौरान जब हम शरीर की शुद्ध करते हैं। तो हमारे पेट में जमे हुए मल को निकालने के लिए एनिमा का ही उपयोग किया जाता है। कठोरमल को जल के माध्यम से बाहर निकालने की प्रक्रिया को एनिमा कहा जाता है। आइए एनिमा को विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा में उपयोग होने वाला एनिमा का परिचय

प्रिय पाठको एनिमा के कई प्रकार बताए गए हैं। किंतु प्राकृतिक चिकित्सा में एनीमा का उपयोग शोधन क्रिया के रूप में किया जाता है। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में पांच तत्वों के द्वारा शरीर की शुद्ध करके उनको संतुलित किए जाते हैं। इस चिकित्सा पद्धति में शरीर की शुद्धिकरण पर विशेष बल दिया जाता है। इस एनिमा क्रिया से शरीर की शुद्धिकरण के अंतर्गत पाचन तंत्र के अंतर्गत बड़ी आंत की शुद्धि का वर्णन किया गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में जब उपवास चिकित्सा की जाती है। तब अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करने के कारण शरीर में विशेष रूप से बड़ी आंत की क्रियाशीलता कम हो जाती है। तब इस अवस्था में पाचन संस्थान की क्रियाशीलता कम होने के कारण मल का निष्कासन बहुत कम हो जाता है। उस दौरान एनिमा लेने की जरूरत पड़ती है। बड़े आंत की सफाई के लिए एक स्टील या प्लास्टिक का एनिमा पॉट लेते हैं। जिसमें 1 लीटर से 2 लीटर तक को रोगों के अनुसार औषधि या साधारण जल को उस एनिमा पॉट में भरकर पाइप, की माध्यम से कैथेटर लगाकर रोगियों के गुदा भाग में प्रवेश कर कर जल के द्वारा साधारण क्रिया के माध्यम से एनिमा दिया जाता है।

योग में प्रयुक्त होने वाला एनिमा वस्ती कर्म का परिचय

प्रिय पाठको एनिमा का प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जिसका उपयोग शरीर शुद्धि के रूप में किया जाता है। योग के ष्षटकर्म क्रियाओ में बस्ती क्रिया के अंतर्गत यह एनिमा किया जाता है। जो उकडु आसन में बैठकर किसी नदी या तालाब में कमर युक्त पानी के अंदर एक पाइप के माध्यम से गुदा भाग में जल को प्रवेश करते हैं। इसे बिना पाइप के माध्यम से भी जल को प्रवेश करके फिर जल को पेट के अंदर परिचालन करके उसे अधो भाग से निकाल देते हैं। इसे त्रिदोषो के नाश के लिए बहुत ही

उपयोगी माना जाता है । योग के प्राचीन ग्रंथ घेरण्ड संहिता ,हठ प्रदीपिका, हठ रत्नावली सभी में बस्ती क्रिया को करने की विधि बताई है। हठ रत्नावली में इसे चक्रीय कर्म के नाम से जाना जाता है

"जल वस्ति शुष्कवस्तिर्वस्ता च द्विविधौ स्मृतौ ।
जल वस्ति जले कुर्याच्छुकवरित सदा क्षितौ ।।"
(घे० स० 1/45)

योगिक क्रियाओं में यह बस्ती क्रिया दो प्रकार की बताई गई है। जिसे जल बस्ती एवं स्थल बस्ती के नाम से जाना जाता है ।जल बस्ती का प्रयोग कमर युक्त जल में बैठकर जल के माध्यम से गुदा भाग बड़ी आंत की सफाई के माध्यम से की जाती थी । और स्थल बस्ती में वायु के माध्यम से गुदा भाग की सफाई की जाती थी। जिसमें मूलबंध, अश्विनी क्रिया आदि के माध्यम से वायु को गुदा भाग से ऊपर की तरफ खींच कर कुछ समय पेट में रखकर परिचालन करके उसे पुनः अधो भाग से निकाल देते हैं। इस प्रक्रिया को बस्ती कहा जाता है। इन दोनों प्रकार की बस्ती से प्रमेय, उदावत, क्रूर वायु आदि विभिन्न प्रकार के रोगों का नाश होता है । जिससे शरीर की शुद्धि स्वच्छता और निर्मलता के साथ–साथ शरीर सुंदर बनता है

आयुर्वेद में प्रयुक्त होने वाला एनिमा

आयुर्वेद भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति बतलाई गई है। जिसमें एनिमा को बस्ती के नाम से भी जाना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत विभिन्न अंगों के आधार पर वस्ति देने की बात कही गई है। जिसका उपयोग पंचकर्म के अंतर्गत किया जाता है । पंचकर्म के अंतर्गत वमन , विरेचन , वस्ति और रक्त मोक्षण जैसी क्रियाएं होती हैं। इन्हीं में बस्ती क्रिया का उपयोग बताया गया है। इन सभी पांच क्रियाओ में वस्ति को सबसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है। पंचकर्म में वस्ति के महत्व को स्पष्ट करते हुए आचार्य सुश्रुत कहते हैं। स्नेहन, स्वेदन , वमन, विरेचन कम मर्यादित हैं। इनका प्रभाव कुछ समय के लिए सीमित रहता है। लेकिन वस्ति कर्म सबसे व्यापक है। वस्ति का प्रभाव बहुत ही विस्तृत है। यह वस्ति कर्म जानवरों के मूत्राशय द्वारा निर्मित यंत्र के माध्यम से औषधि को बड़ी आंत में प्रविष्ट कराकर आयुर्वेद के अनुसार एनिमा यंत्र का प्रयोग करके प्राणियों के शरीर की शुद्धि के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार की औषधियां का उपयोग वात, पित्त के नाश के लिए किया जाता है। जिसमें मुख्य रूप से वात निवारक लाभों में यह औषधि युक्त एनिमा बहुत ही उपयुक्त और लाभकारी माना गया है।

आधुनिक विज्ञान में प्रयुक्त होने वाला एनीमा

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में विभिन्न रोगों एवं शुद्धि क्रियाओ में एनिमा की विधि का वर्णन किया गया है। यह एनिमा शरीर की गंभीर कठोर और जटिल रोगों को दूर करने के उद्देश्य की जाती है। यह एनिमा कठोर से कठोर मल को दूर करने का बहुत अच्छा प्रयोग विधि है। जो बिना ऑपरेशन यह पेट की

सफाई करता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में एनिमा क्रिया कराई जाती है। एनिमा का प्रयोग पाचन तंत्र से संबंधित सभी प्रकार के रोगों रक्त विकारों त्वचा रोगों , पेट से सम्बंधित रोगों को ठीक करने के लिए किया जाता है। यह एनीमा पेट में जमे पुराने से पुराने कठोर कब्ज, की सफाई करता है। जठराग्नि , को तीव्र करता है। शरीर की गठियात्मक रोग , सर दर्द , मुख से दुर्गंध आना , मुख व जीभ पर छाले पड़ जाना, पीलिया जैसी समस्या हो जाना, पेट में जलन पड़ना विभिन्न प्रकार की गैसों के कारण शरीर में चुभन जैसी पीड़ा होना, यह सभी प्रकार के लाभों में रोगों को दूर करने के उद्देश्य से एनिमा काफी लाभान्वित प्रतीत होता है। अमेरिका के डॉक्टर विल्सन ने एनिमा को सब रोगों को दूर करने का बहुत अच्छा साधन बताया है। इस प्रकार एनीमा सभी रोगों को दूर करने के उद्देश्य से और आंतों की सफाई करने के उद्देश्य की जाती है। जिसका उपयोग हर चिकित्सा ग्रंथो में सभी प्रकार की शुद्धि के रूप में इसका महत्वपूर्ण योगदान माना गया है।

एनिमा के प्रकार

एनिमा के अनेक प्रकार बतलाए गए हैं जिनमे निम्न है।

1. साधारण एनिमा।
2. टॉनिक एनिमा।
3. गर्म पानी का एनिमा।
4. आंतों में पानी रोकने वाला एनिमा ।
5.मिश्रित एनिमा।

1. साधारण ऐनिमा यह साधारण व सामान्य अवस्था में दिया जाता है।यह ऐनिमा एक से डेढ लीटर साधरण गुनगुने जल के ताप माध्यम से दिया जाता है। जिसका ताप 98.6 डिग्री फेरनहाइट से लेकर 99 डिग्री फेरनहाइट तक होता है।

2. टानिक एनिमा –

यह एनिमा टॉनिक के रूप में दिया जाता है जिसमे जल की मात्रा 250 से 350 मिली ठण्डे जल का उपयोग किया जाता है। जल का शरीर के ताप के बराबर आंतो की सुरक्षा प्रदान करने वाला होता है। और आंतों की शक्ति को बढ़ाता है।

3. गर्म पानी का एनिमा

यह कमजोर व बुजुर्ग रोगियों को दिया जाता है। इसमें जल की मात्रा 500मि.ली. के साथ तापमान 100 डिग्री फेरनहाइट से 104 डिग्रीफेरनहाइट) तक के गुनगुने से थोडा ज्यादा ताप रखा जाता है।यह कठोर मल को भी बाहर निकलने का काम करता है।

4. ऑतो में पानी रोकने वाला एनिमा

यह एनिमा आंतो में जल को रोककर मल को पूरी तरह से बाहर निकलने के उद्देष्य से दिया जाता है। जिसमें जल की मात्रा 100 से 150 मि.ली.तक रखा जाता है। शाम के समय दिया जाता है जो रात तक जल को आंतों भर कर रोक कर रखा जाता है, जिस से सुबह शौच करने में आसानी होती है। और पेट अच्छे से साफ हो जाता है।

5. मिश्रित ऐनिमाः–

इस प्रकार के एनिमा में औषधि जड़ी बूटियां को मिलाकर दिया जाता है। जिसके जल में जड़ी–बूटी, शहद नीबू आदि मिलाकर एनिमा की तरह दिया जाता है।

जैसे–

- मल के सुख जाने पर तेल व गर्म जल का एनिमा।
- पेट में कीड़े पड़ जाने पर नीम की पत्ती का क्वाथ बनाकर एनिमा दिया जाता है।
- वायु प्राकुपित होने पर लहसुन को पानी में उबाल कर उस क्वाथ से एनिमा देना।
- कोलाईटिस जैसे समस्या में छाछ का एनिमा दिया जाता है।

आयु	**मात्रा**
6 माह से 1 वर्ष	100–200 मि.ली.
1 वर्ष से 6 वर्ष	200 – 500 मि.ली.
6 से 12 वर्ष	500 मि.ली. से 1 लीटर
12 से 25 वर्ष	1 लीटर से 1.25 लीटर
25 वर्ष से अधिक	1.25 लीटर से 1.5 लीटर

एनिमा इस सिद्धांत पर काम करता है जिसमें चिकित्सा द्वारा आँतों को बिना किसी उत्तेजना व जलन के कठोरता के मल को आंतों से बाहर निकाला जाता है।

एनिमा देने के प्रकार

एनिमा देने की विधि में निम्न चार प्रकार है :–

1. पीठ के बल लेटाकर एनिमा देना।
2. पेट के बल लेटाकर एनिमा देना।
3. दाहिनी करवट लेटाकर एनिमा देना।
4. उकडू बैठाकर एनिमा देना।

1.पीठ के बल लेटाकर एनिमा देना

साधारण तौर पर एनिमा दिया जाता है। वर्तमान समय में एनिमा टेबल भी तैयार की गई है। जो पीछे से ऊंची होती हैं। आगे की तरफ थोड़ा सा झुकी, पर्वत आकार की होती है। पीठ के बल लेटाने पर दोनों पैरों के मध्य से एनिमा दिया जाता है।

2. पेट के बल एनिमा देना

यह एनिमा पेट के बल लेटाकर एनिमा देना, साधारण तौर पर यही एनिमा सबको दिया जाता है। व्यक्ति को सर्वप्रथम पेट के बल किसी तखत चौकी या एनिमा टेबल पर लेटा दिया जाता है। और फिर एनस में कैथेटर को प्रवेश कराकर एनिमा चालू दिया जाता है

3. दाहिनी करवट लेकर एनिमा देना।

इस एनिमा में व्यक्ति को एनिमा टेबल या तख्त पर लेटाकर एक पेर को मोड़कर दाहिनी करवट करके व्यक्ति को एनिमा दिया जाता है।

4. उकडू बैठाकर एनिमा देना

यह एनिमा व्यक्ति को उकडू आसन में बैठ कर एनिमा दिया जाता है। जिन व्यक्तियों को लेटने में कोई समस्या होती है। तो ऐसे व्यक्तियों को इसी एनिमा दिया जाता है। और गुदा में कैथेटर के माध्यम से जल को प्रविष्टि कराकर एनिमा दिया जाता है।

6.5 एनिमा में प्रयुक्त तेल एवं जल

एनिमा एक शुद्धि क्रिया के रूप में की जाने वाली चिकित्सा है। जिसका उपयोग आंतों की शुद्धि के लिए किया जाता है। साथ–साथ उदर से संबंधित सभी प्रकार के रोगों के निवारण हेतु एनिमा की क्रिया की जाती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के औषधीय तेल एवं औषधि जल का उपयोग किया जाता है।

जिसमें मुख्य रुप से नीम, गिलोय, पुनर्नवा के औषधीय काढ़े के रूप में दिए जाते हैं। शुद्ध जल से अनिमा काफी हानिकारक भी में गए है। इसलिए मौसम अनुसार जल का प्रयोग करके आंतों की सफाई की जाती है। एनिमा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के काढ़े और जल , तैल की जानकारी करेंगे।

- **ठंडे जल का एनिमा**

शरीर के सामान्य तापक्रम और ठंडे जल के साथ एनिमा शांति दायक माना गया है। इस प्रकार के एनिमा में 250 से 500 मिली जल को एनिमा द्रव्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के एनिमा में जल को कुछ समय कम से कम 1 घंटे तक आंतों के अंदर रोकने के उपरांत शौच के माध्यम से बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार के एनिमा को तुलनात्मक रूप से अधिक समय तक लिया जा सकता है। यह शरीर की आंतों की क्षमता में वृद्धि करती है । आंतों की क्रियाशीलता को बढ़ाती है। और आंतों से कठोर से कठोर मल को दूर करने का काम करती है। यह एनिमा गैस, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कब्ज, आंतों के कठोरमल, बुखार, कमजोरी को दूर करने का काम करती है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। और पाचन क्रिया को तीव्र करके सभी प्रकार के लाभों को प्रदान करता है। इसी के अंतर्गत सामान्य से ठंडे जल का उपयोग करके एनिमा बेचैनी, घबराहट , शरीर की बढ़ी हुई गर्मी को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। यह एनिमा शीतल जल से आंतों की क्रियाशीलता को संकुचित और शक्ति को बढ़ाकर उल्टी और दस्त जैसे रोगों में विशेष लाभकारी है। यह शरीर की गर्मी को दूर करता है। इसलिए इसका उपयोग मुख्यतः गर्मी की दिनों में किया जाता है।

- **गुनगुना एवं गर्म जल का एनिमा**

प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न रोगों के उपचार के लिए ठंडे व गर्म जल का उपयोग किया जाता है । इसी प्रकार एनिमा में गुनगुना और गर्म जल का उपयोग करके बड़ी आंतों की सफाई करके उनकी क्रियाशीलता को बढ़ाया जाता है। एनिमा में बड़ी आंत का शोधन गर्म जल से अच्छी तरह से होता है। इसलिए इस प्रकार के एनिमा का प्रयोग जीवन कब्ज को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। किंतु गुनगुना और गर्म जल का प्रयोग से आंतों की संकुचन क्षमता और उत्सर्जन क्षमता पर प्रभाव डालता है। इस एनिमा का प्रयोग अधिक दिनों तक करने से आंतों पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। साथ ही साथ आंतों का अल्सर होने की संभावना बढ़ जाती है। गर्म जल एवं गुनगुने जल के एनिमा को पुरानी से पुरानी कब्ज, जीर्ण त्वचा रोग , कैंसर आदि रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। लेकिन बवासीर , उच्च रक्तचाप हृदय रोगी, मानसिक तनाव से ग्रसित रोगी और अल्सर से ग्रसित रोगी को एनिमा नहीं देना चाहिए।

- **गर्म एवं ठंडे जल का एनिमा**

प्राकृतिक चिकित्सा में इस एनिमा का उद्देश्य आंतों की भली प्रकार से शुद्धि और उनकी क्रियाशीलता और क्षमता को बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रयोग विधि में पहले गर्म जल से रोगी को एनिमा दिया जाता है। और जब रोगी की बड़ी आंत की अच्छे से शुद्धि हो जाती है। फिर आंत में जमा पुराना मल को उखाड़ फेंक देता है। और उसके तुरंत बाद ही रोगी को ठंडे जल से एनिमा दिया जाता है। जिससे अंदर की उत्पन्न उष्णता को ठंडे जल से तुरंत रोका जा सके और पेट की आंतों की क्रियाशीलता सामान्य बनाई जा सके इसके प्रभाव से जहां मल का उत्सर्जन अच्छी तरह से होता है। वही आंतों को बल भी प्राप्त होता है। यह मुख्य रूप से पलिया में विशेष लाभकारी है। और शरीर की त्वचा को शुद्ध बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त जहां गर्म और ठंडे जल से किया जाने वाले एनिमा का प्रयोग जीर्ण रोग जैसे अपच, मंदाग्नि , पुराना कब्ज, पुराना बुखार, खांसी, जुखाम, सर्दी और शरीर के विभिन्न त्वचा रोगों में इस एनिमा से रोग शीघ्र ही दूर होते हैं। इस एनिमा का प्रभाव हमारे पाचन तंत्र पर बहुत अधिक पड़ता है। पाचन तंत्र की क्रिया को सबसे अधिक सक्रिय करता है। जिसके प्रभाव से भूख से सम्बंधित सभी प्रकार के रोगों का नाश होता है साथ ही ठीक से पाचन ना होना, पाचक रसों का अल्प बनना आदि दूर होते हैं। और शरीर पूरी तरह से संक्रमण से मुक्त रहकर अल्सर और बवासीर जैसे रोगों से हमेशा बचा रहता है । और शरीर को काफी निरोगी लाभ मिलते हैं।

एनिमा में प्रयुक्त होने वाला औषधि द्रव्य

प्रिय पाठको अब हम एनिमा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के औषधि द्रव्यों का जो प्रयोग किया जाता है। उसके बारे में अच्छे से अध्ययन कर जानकारी प्राप्त करेंगे।

- **त्रिफला चूर्ण के साथ जल का एनिमा**

आयुर्वेद शास्त्रों में शुद्धि क्रिया के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के औषधीय का प्रयोग किया जाता है । जिसमे त्रिफला चूर्ण को अत्यंत लाभकारी माना गया है। त्रिफला चूर्ण हमारी पाचन क्रिया को पूरी तरह से शुद्ध करके उसे ठीक करने का कार्य करती है। जिसके अंतर्गत हरण, बहेड़ा और आमला को सामान्य मात्रा में मिलाकर के त्रिफला चूर्ण तैयार किया जाता है। यह त्रिफला चूर्ण विशेष रूप से वात रोग पित्त रोग एवं कफ रोगों को सम बनाने में काफी मदद भी करता है। इस त्रिफला के प्रयोग से शरीर की शुद्धि भी होती है। और शरीर को विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की भी प्राप्ति होती है। त्रिफला का प्रयोग एनिमा के

रूप में भी किया जाता है। इसके लिए 50 ग्राम त्रिफला का चूर्ण को 200 मिलीग्राम जल में अच्छी तरह से उबाल के इसके बाद द्रव्य को छानकर ठंडा करके उसे एनिमा के लिए द्रव्य के रूप में उपयोग करके एनिमा के रूप में दिया जाता है। यह एनिमा के प्रयोग से आंतों की सफाई के साथ–साथ त्रिदोषों के असंतुलन को दूर करता हैं और त्रिदोष से संबंधित सभी प्रकार की विकृतियों में लाभ मिलता है।

- **पुनर्नवा, बथुआ एवं पालक के रस का एनिमा**

पुनर्नवा हमारे शरीर की सभी प्रकार छोटी से छोटी इकाई को पुनः जीवित बनाने का कार्य करता है। पुनर्नवा के साथ–साथ में पालक चौलाई एवं बथुआ भी हमारे शरीर की शुद्धि के साथ–साथ उन्हें पोषक तत्वों की भी प्राप्ति करते हैं । यह सभी प्रकार के औषधीय काढ़े अत्यंत लाभकारी गुणों से युक्त होती हैं। इन वनस्पतियों का प्रयोग करने से शरीर की त्वचा और शरीर के स्वास्थ्य में काफी लाभ मिलता है । इन औषधीय गुणों से एनिमा देने पर शरीर को वर्ण प्राप्त होता है। और शरीर की रक्त कोशिकाओं में वृद्धि भी होती है। इससे रक्त अल्पता, अधिक थकान, चक्कर आना, कमजोरी आदि सभी प्रकार की बीमारियों से छुटकारा मिलता है। इसका एनिमा के रूप में प्रयोग से जल में पलक पुनर्नवा , चौलाई , बथुआ आदि के रसों के रूप में किया जाता है। इसे रस एनिमा भी कहा जाता है।

- **अशोक की छाल एवं पत्तियां के रस से जल का एनिमा**

इस एनिमा के अंतर्गत विशेष रूप से अशोक की छाल और पत्तियों को जल में गर्म करके खूब अच्छी तरह से उबाल लेना चाहिए या फिर इसके छाल और पत्तियों को रात में अच्छे से भिगोकर जल में रख देना चाहिए और प्रातः काल 10 से 12 घंटे रखने के बाद इन पत्तियों को अच्छे से पीसकर उसके रस को निकाल कर जल में मिलकर औषधि के रूप में यह एनिमा दिया जाता है। यह एनिमा विशेष रूप से महिलाओं के प्रजनन तंत्र से संबंधित सभी प्रकार के रोगों को दूर करने में लाभकारी है। और प्रजनन तंत्र की सभी प्रकार की विकृतियों को दूर करने का कार्य करता है।

- **नीम एवं अडूसा , गिलोय की पत्तियों के रस से जल का एनिमा**

नीम का स्वभाव प्राकृतिक रूप से कड़वा होता है। जो पूरी तरह से कीटनाशक माना गया है। नीम और अडूसा , गिलोय की पत्तियों को अच्छी तरह से जल में उबालकर काढ़ा तैयार किया जाता है। और उबलने के पश्चात काढ़े को ठंडा होने दिया जाता है। फिर उसे छानकर अच्छे से उसके रस को किसी स्वच्छ बर्तन में निकाल कर रख लिया जाता है। फिर जिसका उपयोग एनिमा के रूप में किया जाता है। यह एनिमा रक्त शुद्धि का विशेष गुण रखता है। इस एनिमा के प्रयोग से पेट में होने वाले कृमिरोगों, पुराने कब्ज, मुख से दुर्गंध आना , आंतों में संक्रमण, त्वचा रोग, फोड़े फुंसियां आदि के उपचार में विशेष लाभकारी है।

- **प्याज एवं लहसुन के रस से जल का एनिमा**

एनिमा में विभिन्न औषधीय का उपयोग किया जाता है। जिसके अंतर्गत 100 ग्राम प्याज एवं 25 ग्राम लहसुन के रस को जल में मिलाकर एनिमा तैयार किया जाता है। इसमें लहसुन और प्याज को अच्छी तरह से पीसकर उसे जल में उबालकर उसका रस के साथ जल में मिलने पर उसे एनिमा के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एनिमा क्रीमी नाशक गुणों से युक्त होता है। तथा एनिमा के प्रयोग से पेट के कीड़े व पेट की दर्द में काफी लाभ मिलता है।

- **निर्गुंडी के कड़े के जल का एनिमा**

निर्गुंडी के काढ़े से युक्त जल को एनिमा के रूप में प्रयोग किया जाता है। जिसमें निर्गुंडी को अच्छे से पीस कर जल में अच्छे से उबालकर उसका काढ़ा बना लिया जाता है। और इस काढ़े को बनाने के पश्चात उसे ठंडा करके छानकर एनिमा के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एनिमा गर्म प्रकृति का होता है। इसके प्रभाव से रक्त संचार बढ़ता है। और जोड़ों के दर्द में बहुत लाभकारी है। यह एनीमा शरीर के रक्त संचार को बढ़ाता है और शरीर में होने वाले विभिन्न प्रकार की सूजन, गठिया, अर्थराइटिस, जोड़ों के दर्द, स्नायु तंत्र के साथ–साथ वात और कफ विकार को दूर करता है

- **मट्ठे का एनिमा**

एनिमा के विभिन्न प्रकारों में मट्ठे से एनिमा किया जाता है । इसके अंतर्गत विशेष रूप से जल की जगह मट्ठे का प्रयोग किया जाता है। कभी–कभी जब मट्ठा नहीं मिलता है। तब दही के प्रयोग से भी इसके लाभों को लिया जा सकता है। मट्ठे और दही से उसमें की वसा को अलग करके उसे अमल रूप में बनाकर उसे जल में मिलाकर अच्छी तरह से छानकर एनिमा के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एनिमा शीतल प्रकृति का माना गया है। इस एनिमा के प्रभाव से आंतों और पेट की बढ़ी , शुष्कता , गर्मी के दूर करके आंतों को शीतलता प्राप्त प्रदान करती है। वर्तमान समय में यह अधिक उष्ण और खट्टे पदार्थों के सेवन से शरीर में विभिन्न प्रकार की गर्मी बढ़ जाती है। और जिससे पाचन तंत्र पूरी तरह से विकृत हो जाता है। जिससे पेट में अम्लता भी बढ़ जाती है । इन सभी प्रकार के रोगों को दूर करने में मट्ठे के एनिमा का प्रयोग किया जाता है। जब मिर्च मसाले युक्त उत्तेजनात्मक कम पदार्थों के सेवन से उदर प्रदेश में अधिक गर्मी बढ़ जाती है। जिससे पेट दर्द की समस्याएं आए दिन देखने को मिलती हैं इन सभी के उपचार में मट्ठे का एनिमा विशेष लाभकारी माना गया है । यह आंतों को वर्ण प्रदान करता है। तथा आंतें इससे सक्रिय और स्वस्थ्य बनती हैं।

- **शहद का एनिमा**

प्रिय पाठको इन सभी एनिमा के साथ–साथ में शहद को जल में मिलाकर शहद का एनिमा भी दिया जाता है। इसके अंतर्गत 100 मिली शहद को एनिमा के रूप में रोगियों को दिया जाता है। इस एनिमा द्रव्य को अधिक समय तक आंतों में रोक कर रखा जाता है। जहां एनिमा शहद के जल को रात्रि कल में सोने से पूर्व दिया जा सकता है । इस एनिमा से आंतों को सबसे अधिक पोषण प्राप्त होता है। और आंतों की क्रियाशीलता भी बढ़ती है । आंतों की उत्सर्जन क्षमता और शरीर में होने वाली कोष्ठबद्धता भूख न लगना, जी मिचलाना, पेट में भारी–भारी और दर्द का अनुभव होना। इन सभी प्रकार की समस्याओं में काफी लाभकारी है। शहद के एनिमा को समय विशेष पर ध्यान रखना चाहिए। शहद पूर्ण रूप से शुद्ध और प्राकृतिक होना चाहिए। वर्तमान समय में बाजारों में विभिन्न प्रकार की कंपनियों के मिलावटी शहद मिलते हैं। उनसे हमेशा बचना चाहिए। इसलिए शुद्ध और प्राकृतिक शहद का उपयोग करने से इसके विशेष लाभ मिलते हैं।

अतः इस प्रकार एनीमा शरीर शुद्धि के लिए बहुत ही लाभकारी क्रिया मानी गई है। जिनमें विभिन्न प्रकार का जल, औषधि काढ़े आदि का उपयोग करके रोगों को ठीक करने के उद्देश्य की जाती है। क्योंकि हमारे शरीर का मुख्य भाग हमारा पेट है। यदि पेट सही रहेगा, साफ रहेगा वह पूरी तरह से निरोग रहेगा तो हमारा संपूर्ण शरीर अच्छे से निरोग रहेगा।

- **एनिमा में प्रयुक्त होने वाला तेल**

प्रिय पाठको अभी तक हमने एनिमा में प्रयुक्त होने वाले सभी प्रकार के गर्म एवं ठंडे जल के साथ–साथ गर्म एवं ठंडे जल के उपयोग को इसके साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के वनस्पतियों औषधीय के काढ़े का उपयोग करके एनिमा के लाभों को हमने जाना । इसी प्रकार के एनीमा में प्रयुक्त होने वाले तेल के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

वर्तमान समय में विकृत आहार सेवन के कारण शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं । और आंतों में शुष्कता उत्पन्न हो जाती है और मल पदार्थ आंतों में ही रहकर सूखने लगता है। और सुख कर वह कठोर बन जाता है। जिससे बहुत सारे रोग उत्पन्न होते हैं । इन सभी रोगों को दूर करने व आंतों की शुष्कता को दूर करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सकों ने विभिन्न प्रकार के औषधीय तेलों का उपयोग करके एनिमा की बात कही है। जिसमें अरंडी के तेल का उपयोग करके रोगों को दूर किया जाता है अरंडी के तेल का एनिमा की आंतों की सफाई के लिए विशेष रूप से चिकनाहट उत्पन्न करती है। जिसके परिणाम स्वरुप मल हमारे शरीर से अच्छी प्रकार से निकल जाता है। इसके साथ–साथ में तिल का तेल नारियल का तेल कभी उपयोग किया जा सकता है। समय और मौसम वातावरण के अनुसार इन तेलों का हमारे

शरीर पर अलग–अलग रोगों में विशेष लाभकारी है । यह तेल कब्ज गैस, पेट की अकड़न , पेट का दर्द , गैस बनना , अल्सर , बवासीर, आदि में बहुत ही उपयोगी और लाभकारी माना गया है। इसके प्रयोग से गर्भवती स्त्री को प्रसव क्रिया करने में बहुत ही लाभ मिलता है । और आंतों की सक्रियता बढ़ती है । दस्त आदि की समस्या होने पर यह एनिमा नहीं दिया जाता है।

एनिमा द्वारा जल की आंतो में क्रिया–प्रतिक्रिया

जब गुनगुने जल से व्यक्ति की आँतो में एनिमा द्वारा जल प्रवेश कराया जाता है। तब आंतों का प्रसार, फैलाव होता है। जिससे आँतों में चिपका हुआ कठोर मल अपना स्थान छोड़ कर पानी में घुल कर मिल जाता है। एनिमा द्वारा वह पानी में घुल माल शौच द्वारा आसानी से बाहर निकल जाता है।और यह गर्म जल से बड़ी आँतों को साफ करता है।

उपकरण

एनिमा में प्रयुक्त होने वाली निम्नलिखित उपकरण है

1.एनिमा पॉट

2. रबड़ की नली

3. कैथेटर

3. अरंडी का तेल या जो तैल उपलब्ध हो।

4.एनिमा के लिए उपयुक्त टेबल

5.गिलास जग, और पानी

विधि

सर्वप्रथम एनिमा रूम में एनिमा करने से संबंधित सभी उपकरण को अच्छे से रख ले। उपकरण अच्छे से साफ और स्वच्छ रख ले तत्पश्चात रोगी को लाकर एनिमा की टेबल पर जिस अवस्था में एनिमा देना हो उसी अवस्था में टेबल पर लिटा दिया जाए, उसके पश्चात एनिमा पॉट में एक से डेढ़ लीटर जल भर कर उसे ऊंचाई पर टांग दें और उसमें प्लास्टिक की नली लगाकर उसके सामने कैथेटर को लगा दें। कैथेटर को लगाने के बाद कैथेटर की ऊपरी भाग पर अरंडी , साबुन या किसी प्रकार से चिकने तैल को लगाकर उसे रोगी के गुदा भाग में धीरे–धीरे प्रविष्ट करा दे और फिर एनिमा पॉट के नोजल को धीरे–धीरे खोल दे जिससे आसानी से पानी कैथेटर के माध्यम से रोगी की बड़ी आंत में प्रवेश करने लगेगा , पहले यह जल गुदा मार्ग से जाते हुए बड़ी आंत में भरेगा और अंदर के मल को तोड़कर पूरी तरह से आंतों से अलग करेगा। फिर पूरा जल प्रविष्ट होने के बाद रोगी को यदि शौच महसूस होता है, तो उसे शौच के

लिए भेज दें नहीं तो उसे 10 से 15 कदम चलने के लिए कहा जाए तत्पश्चात रोगी को शौच के लिए भेज दें। और उसके बाद रोगी को विश्राम करना चाहिए।

निषेध–

पीलिया, आंतो का अल्सर, रक्त स्त्राव, कोलाइटिस की समस्या, कमजोरी, रक्त बवासीर।

लाभ

जल चिकित्सा में एनिमा बहुत ही लाभकारी एवं प्रभावकारी चिकित्सा है। यह अभ्यास विभिन्न प्रकार के उदर से संबंधित आंतरिक रोगों को दूर करने में लाभकारी है। इस क्रिया के महत्वपूर्ण लाभ निम्न प्रकार मिलते हैं।

- एनिमा का अभ्यास जल के द्वारा की जाने वाली क्रियाओ में सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है। यह बड़ी आंत की शुद्धि करती है। और आंतों के अंदर स्थित पुराने मल को तोड़कर बाहर निकलती है।
- एनिमा क्रिया के अभ्यास से कब्ज जैसे असाध्य रोग भी ठीक हो जाते हैं।
- एनीमा जल चिकित्सा द्वारा आंत आदि मल से रहित हो जाती हैं। आतें साफ स्वच्छ और सक्रिय बनाकर शरीर को स्वास्थ प्रदान करती हैं । जिसके फल स्वरुप पाचक रसों का स्त्रावण अच्छे से होता है। और व्यक्ति को अच्छी भूख लगती है।पाचन क्रिया सुव्यवस्थित होती है ।
- एनिमा क्रिया से पेट दर्द, पेट में बनने वाली गैस, पेट में उठने वाली जलन ,पेट का भारीपन और पेट निकलने की समस्या आदि रोगों में काफी लाभकारी है।
- एनिमा क्रिया के अभ्यास से यकृत और अग्नाशय की क्रियाशीलता बढ़ती है। जिससे मधुमेह जैसी समस्याओं में भी निदान मिलता है।
- एनिमा में अनेक प्रकार की औषधियां का प्रयोग किया जाता है। जिसके कारण त्रिदोषों का ष्षमन करती है।
- एनिमा से शरीर दुबला और शरीर से मोटापा आदि की समस्याएं दूर होती हैं।
- एनिमा से स्थूलता दूर होती है। और शरीर में हल्कापन प्राप्त होता है।
- एनिमा के प्रयोग से नेत्र की ज्योति बढ़ती है।
- नाड़ियों में बहने वाले प्राण की शुद्धि भी होती है। और एनिमा से वात नाशक रोग दूर होते हैं।
- एनिमा क्रिया शारीरिक बल को बढ़ाती है। मन को निर्मल करती है।

- एनिमा से अपान और समान प्राण की शुद्धि होती है। जिससे उदर और उत्सर्जन तंत्र से संबंधित सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं। इससे बांझपन और नपुंसकता जैसी बीमारियों में भी लाभ मिलता है। साथ ही साथ पेट दर्द, गैस , दर्द , हाथ, पैर दर्द बेचैनी चक्कर जी मिचलाना आदि भी समस्याएं दूर होती हैं।

एनीमा प्रयोग में सावधानियाँ –

जल चिकित्सा में रोगी को एनिमा प्रयोग में निम्नलिखित सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए।

- एनिमा के प्रयोग में लाया जाने वाला जल में साफ स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- एनीमा कक्ष और एनिमा से सम्बंधित सभी पात्र एवं एनीमा कैथेटर आदि साफ सुथरा होने चहिए अन्यथा संक्रामक रोग तेजी से फैलते हैं।
- एनिमा हमेशा प्रातः काल शौच के बाद और खाली पेट ही देना चाहिए ।
- एनिमा के जल एवं द्रव्य के तापकम का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- एनिमा हमेशा रोगी के रोग के अनुसार औषधि द्रव्यों और तापमान युक्त जल का चयन करना चाहिए।
- एनिमा में एनीमा द्रव्य के रुप में सदैव प्राकृतिक पदार्थो जैसे नींबू, शहद, त्रिफला एवं निर्गुण्डी आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- एनिमा देने के कुछ देर बाद रोगी को शौच जाने देना चाहिए।
- एनीमा द्रव्य जितने अधिक समय तक आँतों में स्थित रहता है, उतना ही अधिक लाभ लाभदायक होता है।
- एनिमा देते समय एनीमा कैथेटेर के सिरे पर किसी चिकने पदार्थ तैल आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- एनिमा चिकित्सा करते समय एनीमा पाईप में स्थित वायु को अच्छी प्रकार बाहर निकालकर ही एनीमा देना चाहिए। अंदर की वायु को आंतों में नहीं जाने देना चाहिए।
- एनिमा चिकित्सा में रोगी को एनिमा देते समय एनीमा द्रव्य को आंतों में देने की गति हल्की और नियंत्रित रखनी चाहिए ।
- एनिमा के दौरान रोगी को पेट दर्द होने पर एनिमा क्रिया को वहीं रोककर हाथों से पेट पर नाभि के चारों ओर गोलाई में मालिश करना चाहिए।
- एनिमा को अधिक दिनों तक प्रतिदिन नहीं देना चाहिए।

- इस प्रकार उपरोक्त निम्न सावधानियों को ध्यान में रखते हुए ही एनिमा क्रिया करानी चाहिए। जिस से एनिमा के उचित लाभ मिल सके।
- एनिमा में प्रयुक्त होने वाला जल अत्यधिक गर्म नहीं होना चाहिए।
- एनिमा में प्रयुक्त होने वाला जल अत्यधिक ठण्डा नहीं होना चाहिए, नहीं तो आँतों में ऐठन होने लगती है। और पेट में दर्द होने लगता है।
- एनिमा से सम्बंधित सभी पात्र अच्छी तरह साफ होना चाहिए।
- खाली पेट ही एनिमा देना चाहिए। खाना खाने के तुरंत बाद एनिमा कभी नहीं करना चाहिए। प्रातः काल का समय सबसे उपयुक्त माना गया है।
- रक्त युक्त बावासीर या आंतों के अल्सर कोलाईटिस यदि में एनिमा नहीं करना चाहिए।
- एनिमा में प्रयुक्त होने वाला जल की मात्रा सावधानी पूर्वक धीरे–धीरे देनी चाहिए।
- एनिमा में प्रयुक्त होने वाला कैथेटर हर रोगी में अलग अलग उपयोग किया जाना चाहिए।
- एनिमा करने के आधे घण्टे तक रोगी को कुछ भी नहीं खिलाना और पिलाना चाहिए।
- शौंच के लिए अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए जिसके लिए वेस्टन कमोड सीट भी होनी चाहिए।
- दस्त की अवस्था में एनिमा का प्रयोग नहीं करना चाहिए हैं।
- एनिमा में प्रयुक्त होने वाली औषधि को रोगी की क्षमता और रोग के आधार पर प्रयोग किया जाना चाहिए। नहीं तो सामान्य अवस्था में सिर्फ जल से ही एनिमा करना चाहिए।

6.6 विविध रोगों में एनिमा का प्रयोग एवं सावधानियां।

एनिमा का प्रयोग मुख्यत आंतरिक जल प्रयोग विधि के अंतर्गत आता है जो बड़ी आंत की सफाई वह अमल को दूर करने के उद्देश्य किया जाता उत्सर्जन तंत्र को सक्रिय करके रोगों को दूर करने का कार्य करता है

उदर का प्रमुख रोग – कब्ज

वर्तमान समय में मानव के अत्यधिक अस्त व्यस्त जीवन के कारण उसका खान–पान भी अस्त व्यस्त होता चला गया। खान–पान एवं दिनचर्या के अस्त–व्यस्त होने पर अनेकों प्रकार के रोग होने लगे । खाने में वह प्राकृतिक चीजों को कम और बनावटी चीजों को ज्यादा खाने लगा । जिसके कारण पाचन क्रिया मंद होती चली गई और अनेको प्रकार की रोग उत्पन्न होने लगे। जिनमें पाचन क्रिया अवरुद्ध होने के कारण, चिकनी , तेल युक्त , आहार को ग्रहण करना , जिसमें मैदा, डबल रोटी, ब्रेड और फास्ट फूड

के अधिक खाने के कारण कब्ज जैसी समस्या बनने लगी । कब्ज की समस्या में मल पूरी तरह से आंतों से साफ नहीं हो पाता और मल आंतों में ही जमा होने लगता है। अधिक मल जमा होने के कारण पेट के अंदर तरह–तरह की गैसें बनने लगते हैं। जिससे सिर दर्द, कमर दर्द , हाथ पैर दर्द , बदन दर्द, सीने में जलन , पेट में जलन, उल्टी बेचैनी , जी मिचलाना आदि समस्याएं होने लगता हैं । वर्तमान समय में 80% लोगों में कब्ज की समस्या देखने को मिलती हैं। इस समस्या के निदान के लिए प्राकृतिक चिकित्सा में एनिमा की चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण बताई गई है। जो किसी प्रकार के भी दुष्प्रभाव रहित, यह चिकित्सा आसानी से की जा सकती है। और इसके अनेकों लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

लक्षण :

1. कब्ज से पीड़ित रोगी को पुरीष मल आंतों से साफ नहीं होता है।
वह आंतो में जमा होने लगता है।
2. कब्ज से पीड़ित रोगी को हमेशा सुस्ती महसूस होता है।
3. कब्ज से पीड़ित रोगी के पेट कठोर और पेट भारी बना रहता है।
4.कब्ज से पीड़ित रोगी के सिर में दर्द रहा करता है।
5.कब्ज से पीड़ित रोगी को नींद ठीक से नहीं आती।
6. कब्ज से पीड़ित रोगी को भूख खुलकर नहीं लगती।
7. कब्ज के रोगी को हमेशा, सिर दर्द, बदन दर्द, कमर दर्द, पेट में जलन, बेचैनी जिमिचलाना, सिर का भारी भारी सा लगना आदि समस्याएं हो जाती हैं।

कारण :

1.अनियमित और असमय खान–पान का कब्ज का मूल कारण है।
2. बिना भूख के भोजन करना। आवष्यक्ता से अधिक भोजन करना।
3. धूम्रपान व नसे का सेवन करना। जल का सेवन कम करना।
4. अत्यधिक मिर्च मसाला से युक्त तला–भूना व गरिष्ठ भोजन करना।
5.योग व्यायाम की कमी, अनियमित दिनचर्या ।

उपचार

कब्ज के उपचार के लिए सुबह उषापान करना । कटि स्नान करना, प्रातः कालीन भोजन में प्राकृतिक आहार के रूप में सलाद का सेवन करना और अधिक पानी का सेवन करना और साथ ही साथ

एनीमा का उपयोग करना। एनिमा साधारण जल से लेना कब्ज़ ज्यादा बड़ी हो तो रोकने वाला टॉनिक एनिमा का प्रयोग करना चाहिए।

पेट में कीड़े होने पर औषधि जल से एनीमा

जब पेट की आंतों में अधिक कब्ज जम जाता है। तब उसमें कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। उस अवस्था में पेट के कीड़ों को समाप्त करने के लिए नीम, गिलोय आदि औषधीय के गुणों युक्तसे एनिमा दिया जाना चाहिए। यह एनिमा कब्ज के साथ–साथ रोगों और कीटाणुओं को नष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता है।

बवासीर में एनिमा

बवासीर की अवस्था में जब अत्यधिक बवासीर की समस्या हो जाती है। उस दौरान औषधि युक्त तेल से एनिमा दिया जाता है। जिसमें घी, वसा , मत तिल का तेल, नारियल का तेल, अरंडी का तेल आदि का उपयोग करके बवासीर जैसी समस्या के निदान के लिए एनिमा दिया जाता है।

आंतों के अल्सर में एनिमा

आंतों के अल्सर में एनीमा जब व्यक्ति को अत्याधिक गर्म , मिर्च मसाले से युक्त खाद्य पदार्थ खाने से आंतों का अल्सर हो जाता है। आंतों के अंदर घाव हो जाता है। उस दौरान औषधि युक्त एनिमा देना चाहिए। जिसमें मुख्य रूप से तैल का उपयोग करना चाहिए। तैल के उपयोग करने से आंतों का घाव जल्दी से ठीक होता है। और उस तेल में औषधि काढ़ा को भी मिला कर दिया जाए तब भी वह विशेष लाभकारी होता है। और अंदर के घाव को ठीक करके अल्सर जैसी समस्या को दूर करता है।

मासिक धर्म की समस्या में एनिमा

मासिक धर्म की अनियमित में माताओं को मेहन स्नान के अलावा साधारण जल के साथ एनिमा दिया जा सकता है । जिसमें गुनगुने जल का उपयोग करके एनिमा देने से पेट की कब्ज ठीक होती है। साथ ही उत्सर्जन तंत्र अच्छे से कार्य करता है। और मल को दूर करके मासिक धर्म जैसी समस्या का निदान भी करता है। और साथ ही साथ बांझपन की समस्या को दूर करता है और नपुंसकता जैसी समस्याओं को भी दूर करने का कार्य करता है।

दस्त आदि की समस्या जब हो जाती है तब उपवास के साथ–साथ एनिमा बहुत ही लाभकारी माना गया है। जिसमें औषधि युक्त तेल का उपयोग करके एनिमा दिया जा सकता है। जिस से दस्त की समस्या का निदान होता है। एनिमा उदर भाग और उत्सर्जन भाग से संबंधित होने के कारण यहां अपान वायु और सामान वायु से संबंधित सभी प्रकार के रोगों को भी दूर करने का कार्य करता है। क्योंकि सामान वायु हमारे नाभि भाग में होती है। जो अपच, अति अम्लता को दूर करके आंतो के मल को शरीर से बाहर निकलने का भी कार्य करता है । जिससे कमर दर्द घुटनों का दर्द हाथ पैर बदन दर्द, सर दर्द जैसी सारी समस्याओं का निदान होता है।

इन सभी में रोगी की क्षमता के अनुसार और रोगों के आधार पर औषधि से युक्त, साधारण गर्म या ठंडे जल का प्रयोग करके एनिमा कराया जा सकता है। इनमें से बहुत सारे लाभ मिलते हैं। और सारी समस्याओं का निदान भी होता है।

उल्टी एवं दस्त रोग में एनिमा का प्रयोग

आधुनिक वर्तमान समय में अस्त–व्यस्त दिनचर्या होने के कारण बहुत ही गरिष्ठ भोजन, तले भुने भोजन और फास्ट फूड खाने के कारण व्यक्ति के शरीर में तामसिकता अधिक बढ़ जाती है। तामसिक आहार के अधिक सेवन से जीवन में कार्य का बोझ बढ़ जाता है। और जिसके अभाव में तरह–तरह के शरीर में रोग उत्पन्न होने लगते हैं । जिनमें उल्टी और दस्त जैसे भी रोग होते हैं।

रोग के कारण

1.बासी भोजन करना अधिक अम्लीय आहार का सेवन करना।

2. अधिक वसा, तेल युक्त गरिष्ठ भोजन, रासायनिक पदार्थ का सेवन करना

3.अनिश्चित समय में भोजन को ग्रहण करना ।

4.संक्रमित व विषाक्त भोजन और अशुद्ध आहार और जल का सेवन करना ।

5.अत्यधिक ठंड और लू लगने के कारण पाचन अंगों जैसे लिवर आते पेनक्रियाज आदि में संक्रमण होने के कारण।

एनिमा चिकित्सा

उल्टी दस्त जैसे रोग होने सर्वप्रथम रोगी के आहार विहार पर नियंत्रण करके रोगी को पूर्ण रूप से विश्राम करना चाहिए। गुनगुने जल में नमक डालकर उल्टी की अवस्था में वमन की प्रक्रिया करा देनी चाहिए । इसके साथ ही रोगी को ठंडा जल पिला देना चाहिए और दस्त आने पर ठंडे जल के साथ एनिमा की प्रक्रिया करनी चाहिए। पेट पर ठंडे पानी से भीगी तोलिया या बर्फ से सिकाई करनी चाहिए। जिससे उलटी और दस्त की समस्या ठीक हो जाती है। इस रोग में रोगी को ठंडे जल में छाछ या दही मिलाकर एनिमा दिया जाना चाहिए उल्टी और दस्त जैसी समस्याएं ठंडे जल के साथ एनिमा देने से बहुत ही जल्दी ठीक होती हैं।

सर्दी जुकाम और बुखार रोग में एनिमा का प्रयोग

सर्दी जुकाम और बुखार की सामान्यता समस्याएं मौसम परिवर्तन के समय अधिक देखी जाती हैं। प्रत्येक लोगों में सर्दी जुखाम बुखार जैसे समस्याएं वर्षा ऋतु में और शरद ऋतु में अधिक देखने को मिलती हैं। इसका प्रमुख कारण होता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी आना जब शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र

हो जाते हैं। और मौसम का परिवर्तन होता है। तब हमारे शरीर की इम्युनिटी पावर कमजोर हो जाती है। जिसके कारण मौसम परिवर्तन का हमारे शरीर पर बहुत ही जल्दी विपरीत असर पड़ता है। और हम खांसी, जुखाम, सर्दी से ग्रसित हो जाते हैं। इन समस्याओं के लिए एनिमा बहुत ही उपयोगी माना गया है।

रोग के कारण

1.विकृत आहार विहार का सेवन करने से।

2. अनियमित दिनचर्या और शारीरिक योगाभ्यास की कमी ।

3.समय–समय पर पेट का साफ ना होना कब्ज आदि।

4.अचानक मौसम परिवर्तन होना।

5. ठंडी के दिनों में कफ बढ़ाने वाले पदार्थ का सेवन करना ।

6.रात्रि में दही, चावल, फल आदि का सेवन करना ।

रोग के लक्षण

1.शरीर का आवश्यकता से अधिक ताप बढ़ जाना।

2. पूरे शरीर के जोड़ों में दर्द सी चुभन होना।

3. सिर पर ठंड लगना हाथ पैरों का दर्द होना नाक का बहाना।

4. हृदय गति और रक्तचाप का बढ़ जाना ।

5.सही से भूख न लगना प्रत्येक कार्यों में अरुचि उत्पन्न होना ।

6.शारिरिक व मानसिक थकान उत्पन्न होना।

एनिमा चिकित्सा

प्रयास सर्दी जुखाम बुखार से पीड़ित व्यक्तियों को उनकी दिनचर्या में परिवर्तन लाकर उनके आहार विहार को संयमित करके सामान्य सी सर्दी जुकाम जैसी समस्या का निजात पाया जा सकता है। इसके साथ–साथ में रोगी की दिनचर्या में सुधार ,विश्राम अधिक देना चाहिए। पेट की सफाई न होने के कारण कब्ज की समस्या बनने पर हमें गर्म जल में नींबू का रस मिलाकर द्रव्य तैयार किया जाता है। और नींबू से मिले हुए द्रव्य के साथ एनीमा दिया जाता है। साथ ही साथ नीम और गिलोय की पत्तियों और टहनियों को उबालकर काढ़ा को बना लिया जाता है। और उस काढ़े के साथ से एनिमा दिया जाता है। इस प्रकार औषधि युक्त तैयार काढ़े से बहुत ही जल्दी सर्दी जुकाम जैसी समस्याओं का समाधान होता है।

त्वचा रोग में एनिमा का प्रयोग

शरीर की समस्याओं में त्वचा से संबंधित बहुत सारी समस्याएं और रोग वर्तमान समय में देखने को मिलते हैं। जिनमें आधुनिक समय में अलग–अलग तरह–तरह के सौंदर्य प्रसाधन का उपयोग करना, जिसमें तेल ,साबुन, शैंपू , क्रीम , परफ्यूम विभिन्न प्रकार के चेहरे को चमकाने वाले कॉस्मेटिक दवाइयां और क्रीमों का उपयोग करना। यह सब रासायनिक तत्वों से हमारी त्वचा बहुत ही दुष्प्रभावित होती है। जिसके साथ–साथ वर्तमान समय में बाहर का खाना, अनियमित खाना, फास्ट फूड खाना इस सब के सब खाने से हमारे पेट में कब्ज बनती है। और कब्ज की वजह से हमारे चेहरे पर शरीर की त्वचा पर विभिन्न प्रकार के फोड़े फुंसी और चेहरे पर पिंपल्स निकल आते हैं। जिससे हमारे शरीर की त्वचा फटने लगती है। कहीं–कहीं फोड़े फुंसी भी हो जाते हैं । इसके साथ–साथ विभिन्न प्रकार की अंग्रेजी उत्तेजनात्मक दवाइयां का उपयोग करना इन सभी के कारण हमारे शरीर में बहुत सारे त्वचा रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग के कारण

1.बाहर के बाजारों में उत्पन्न विभिन्न प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करना।

2. खट्टे तले भुने असंतुलित आहार का सेवन करना दिनचर्या की कमी।

3. अनियमित दिनचर्या और रत्रिचर्या का होना विलासितापूर्ण और भोग पूर्ण जीवन शैली का होना।

4. नशीले पदार्थ चाय, कॉफी, शराब और ड्रग्स का सेवन करना।

रोग के लक्षण

1.त्वचा पर लाल दाने और विभिन्न प्रकार के फोड़े फुंसी निकलन चेहरे पर छोटी–छोटी और बड़ी फुंसियां निकलना त्वचा की परतें फटने लगती है ।

2.त्वचा खुरदरी हो जाना।

3. त्वचा का शून्य पड़ जाना।

एनिमा चिकित्सा

त्वचा से संबंधित समस्याओं के लिए पेट का साफ होना अत्यंत आवश्यक है। सर्वप्रथम रोगी की दिनचर्या में सुधार करना चाहिए। उसकी दिनचर्या से लेकर रात्रिचर्या तक के लिए एक व्यवस्थित ग्राफ बनाकर जीवन को चलाने के लिए उसे प्रोत्साहित करना चाहिए । इसके साथ–साथ सुबह प्रातः काल जल्दी उठकर के उषा पान करना और ठंडी ठंडी हवा बहती हवा में भ्रमण करना, प्रतिदिन योगाभ्यास करना। एक समय उपवास भी रहना चाहिए। इसके साथ–साथ पोसक तत्वों की कमी होने पर पोषण युक्त आहार को ग्रहण करना अंकुरित आहार के साथ–साथ में भोजन को करते समय रेशे युक्त और सलाद आदि

का सेवन करना । इसके साथ–साथ शारीरिक योगाभ्यास और कड़ी से कड़ी श्रम और शरीर की क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए कार्य करना। इसके साथ–साथ में योग, व्यायाम, प्राणायाम आदि का प्रयोग करना ।इन सभी के साथ–साथ में अंत में एनिमा की क्रिया से आंतों की शुद्धि करना आंतों में जमा हुए मल को दूर करना और व्यक्ति को हो सके तो लघु शंख प्रक्षालन और पूर्ण षंख प्रक्षालन भी करना चाहिए। इसके साथ–साथ में व्यक्ति को गुनगुने जल में नींबू का रस मिलाकर त्रिफला चूर्ण आदि से काढ़े के साथ में जल से एनिमा देना चाहिए । त्वचा रोग के लिए नीम गिलोय बहुत ही महत्वपूर्ण माने गए हैं इसके साथ–साथ में घृत या तेल संयुक्त एनिमा को भी दिया जा सकता है ।जो त्वचा रोग के लिए बहुत ही लाभकारी है।

उच्च रक्तचाप (रक्त विकार)में एनिमा का प्रयोग

जल चिकित्सा के अंतर्गत एनिमा चिकित्सा उच्च रक्तचाप के लिए काफी लाभकारी मानी गई है। वर्तमान समय में अस्त व्यस्त जीवन में मनुष्य के प्रत्येक क्रियाकलापों की अनियमिता होने के कारण दिनचर्या बहुत ही विकृत होती चली गई। दिनचर्या के साथ–साथ आहार विहार खान–पान, रहन–सहन और वातावरण पूरी तरह से दूषित हो गया। जिसके कारण रक्त में विभिन्न प्रकार की अशुद्धियां होने लगी खाने–पीने में फास्ट फूड के माध्यम से रक्त में वसा की मात्रा बढ़ने लगी। इसके साथ ही साथ पेट ना साफ हो पाने के कारण कब्ज जैसी समस्याएं आने लगी और कब्ज के माध्यम से रक्त में दूषित बैक्टीरिया उत्पन्न होकर शरीर के रक्त को विषाक्त करके शरीर को रोग युक्त बनाने लगे और यह अशुद्ध रक्त वाहिनी एवं नस नाड़ियों में जाकर रक्तचाप को बढ़ाने का कार्य करने लगी इस अवस्था में उच्च रक्तचाप जो ह्रदय की क्रिया को काफी बाधित करके ह्रदय घात जैसे रोगों को उत्पन्न कर देती है। और व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है। वर्तमान समय में उच्च रक्तचाप की समस्या बहुत इस समाज में बढ़ती जा रही है। इस रोग से ग्रस्त होकर एल्पेक्स जैसी सामक दवाइयां का सेवन करने वाले रोगियों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है । और उससे कोई स्थाई समाधान भी नहीं मिल रहा है। जबकि इन दवाइयां के अन्य दुष्परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं इसलिए इन दवाइयो का उपयोग की अपेक्षा एनिमा चिकित्सा काफी कारगर है।

रोग के कारण

रक्त विकार और उच्च रक्तचाप से संबंधित रोगियों के निम्नलिखित कारण बताए गए हैं।

1. अधिक समय तक मानसिक तनाव की अवस्था में रहना।
2. छोटी–छोटी बातों में क्रोध करना।
3. बहुत अधिक मिर्च मसाला तला,भुना, बासी और खुले स्थान का भोज्य पदार्थ ग्रहण करना ।
4.आहार में पोषक तत्वों की कमी अनियमित दिनचर्या एवं ऋतुचर्या को व्यतीत करना।

5.प्रातः काल देर से उठना रात में बहुत देर से सोना ।

6.शरीर से मेहनत कम करना, योग व्यायाम की कमी एंटीबायोटिक एंटीरियड अथवा उत्तेजनात्मक दवाइयां का सेवन अल्कोहल और धूम्रपान के साथ–साथ नशीले पदार्थ व्यसन आदि का सेवन करना।

रोग के लक्षण

1.बेचैनी व आंतरिक रूप से अधिक घबराहट उत्पन्न होना।

2. शरीर का रक्तचाप बढ़ जाना श्वसन और हृदय की गति का बढ़ जाना।

3.सिर में तेज चुभन जैसी दर्द महसूस होना ।

4.आंखें लाल हो जाना हाथ पैरों का सुन्न पड़ जाना ।

5.निद्रा कम होने के कारण स्मरण शक्ति का कम हो जाना।

एनिमा द्वारा चिकित्सा

इस चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम रोगी की मानसिकता को देखते हुए उसकी दिनचर्या में बदलाव करना चाहिए। साथ ही साथ प्राकृतिक आहार विहार , खान–पान पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। शोधन चिकित्सा के साथ–साथ में उपवास चिकित्सा भी करना चाहिए। और उसके बाद रोगी को एनिमा के लिए तैयार करके प्रातकाल जल्दी उषा पान करने के लिए कहना और साथ ही साथ प्रातः कालीन भ्रमण, योग क्रिया, व्यायाम आदि के साथ–साथ में स्वाध्याय सत्संग जैसे अमूल्य गतिविधियों में समय को व्यतीत करना। रात्रि में जल्दी शयन और प्रातः काल जल्दी जागरण करना करना चाहिए । एनिमा चिकित्सा में उच्च रक्तचाप के रोगियों को ठंडे जल से एनिमा देने पर तुरंत लाभ मिलता है। यदि आंतों में पुराना मल जमा हो तो उस मल को शोधन करने के लिए दिन में एक से दो बार एनिमा किया जा सकता है। और साथ ही साथ हल्के गुनगुने जल का प्रयोग कर सकते हैं। किंतु उच्च रक्तचाप के रोगियों को गुनगुने और गर्म जल से एनिमा बहुत ही सावधानी पूर्वक किसी अच्छे देखरेख प्राकृतिक चिकित्सक के निर्देशन में ही करना चाहिए। निम्न रक्तचाप के रोगियों को गर्म जल से एनिमा बहुत ही फायदेमंद होता है । साथ ही साथ अशोक की छाल व पत्तियों को काढ़ा बनाकर के जल के माध्यम से एनिमा दिया जा सकता है। जिसे उच्च रक्तचाप में काफी लाभकारी फायदे मिलते हैं।

अर्थराइटिस (जोड़ो के दर्द व सूजन) में एनिमा का प्रयोग

मेरे प्रिय पाठको गठिया नामक रोग वर्तमान समय में सामान्यतः सभी आयु वर्ग के लोगों में देखने को मिलता है। किंतु यह वात प्रकृति के कारण उत्पन्न होने वाला रोग है। जो सामान्यत बूढ़े बुजुर्ग महिलाओं और पुरुषों में देखने को मिलता है। किंतु मौसम के परिवर्तन के साथ–साथ जब वायरल सर्दी , जुकाम , बुखार आदि किसी भी अवस्था के व्यक्तियों को ग्रसित करती है। तब शरीर के विभिन्न जोड़ों में

दर्द होने लगती है। उस दर्द की वजह से जोड़ों में सूजन आदि उत्पन्न हो जाती है। यह सब भोग विलासिता और नकारात्मक जीवन शैली के होने के कारण ज्यादातर होता है। वर्तमान समय में व्यक्तियों का खान–पर आहार रहन–सहन पूरी तरह से अप्रकृति हो गया। खाने वाली चीजों को न खाकर वह विभिन्न प्रकार के फास्ट फूड पर अधिक ध्यान देता है । जिससे कब्ज आदि की समस्या बहुत बढ़ती जा रही है। और इसी कब्ज की वजह से वात रोग विभिन्न प्रकार की गैस आदि से शरीर में अनेकों रोग उत्पन्न करती हैं। और वात तत्व में वह परिवर्तित होकर शरीर के जोड़ों आदि में प्रवेश करके उनको रोग ग्रस्त करना बना देती हैं। गठिया जोड़ों का दर्द संधिवात और आर्थराइटिस जैसी सभी व्याधियों वात रोग अंतर्गत ही आती हैं। इस का उपचार समय पर न किया जाए तो संधि क्षरण होने लगता है और कुछ समय के बाद व्यक्ति के हाथ पैरों के जो जॉइंट्स हैं वह कार्य करना बंद कर देते हैं। और पूरी तरह से जीवन भर उनके हाथ पर कार्य नहीं करते हैं।

गठिया के कारण

1.खट्टा, बासी, पोषक तत्वों से रहित अम्लीय और अधिक मांस आदि का सेवन करना।

2. सिगरेट, शराब, तंबाकू आदि व्यसन पदार्थ का सेवन करना।

3. यूरिक एसिड की मात्रा वाले खाद्य पदार्थों को अधिक सेवन और मोटापा बढ़ जाना।

4. पेट का साफ ना होना और वात का कुपित होकर के समस्त जोड़ों में इकट्ठा होने लगा।

5. शारीरिक व्यायाम , योग आदि न करना और अनियमित जीवनचार्य का पालन करना ।

रोग के लक्षण

इस रोग से जोड़ों में सूजन होने लगती है।

1 इस रोग से जोड़ों में तेज चुभन के साथ–साथ दर्द का अनुभव और गांठे बनने लगते हैं।

2. इस रोग से जोड़ों का अकड़ना उंगलियों का तिरछा होना और चलने पर घुटनों आदि जोड़ों से कट–कट की आवाज आने लगती है।

3. शरीर का तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है और जोड़ों के स्थान सूजन से बनकर लाल और गर्म हो जाते हैं ।

एनिमा द्वारा चिकित्सा

इस वात जनित रोग के बचाव के लिए एनिमा बहुत ही लाभकारी माना गया है। इसके लिए सर्वप्रथम रोगी की दिनचर्या में सुधार करना चाहिए। दिनचर्या की शुरुआत प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त से जागरण के साथ शुरू करना चाहिए और सर्व प्रथम उषापान करके दो–चार कदम अच्छे से चलना चाहिए। फिर पूरी तरह से पेट यदि साफ ना होतो गुनगुना जल का सेवन करके भ्रमण करना चाहिए। और योग व्यायाम के साथ–साथ पवन स्नान भी करना चाहिए। इन सभी क्रियाओ के साथ–साथ योगाभ्यास , आसन प्राणायाम,

ध्यान आदि क्रियाएं प्रतिदिन करनी चाहिए। यदि वात अधिक बढ़ रहा है। और चलने उठने बैठने में दिक्कत हो रही है। तब आयुर्वेद का सहारा लेकर के वात नाशक औषधीय का सेवन और कार्य का उपयोग करके पेट को अच्छे से साफ करना चाहिए। पेट ना साफ होने की अवस्था में गुनगुने जल से एनिमा अधिक लाभकारी है। त्रिफला आदि से काढ़ा तैयार करके एनिमा देना चहिए।नीम, आडू , अमरूद आदि के पत्तों को जल में उबाल कर काढ़ा तैयार कर ले और उस काढ़े से एनिमा दिया जाना चाहिए। यदि एनिमा से यदि मल अधिक कठोर है। तो एक रात पहले ही एनिमा देकर पेट की सफाई करना चाहिए। यदि मल अधिक कठोर है संख प्रक्षालन आदि की क्रियाएं भी कराई जा सकती हैं। नींबू आदि के रस से एनिमा के लिए जल का उपयोग किया जा सकता है। निर्गुंडी के काढ़े से एनिमा गठिया रोग में अत्यंत लाभकारी और प्रभावशाली माना गया है।

कैंसर रोग में एनिमा का प्रयोग

प्रिय पाठकों कैंसर जनित रोग से वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अच्छे से परिचित है। कैंसर वर्तमान समय में विश्व की सबसे गंभीर रोगों में से एक है। कैंसर जैसे असाध्याय रोगों के निदान में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत ही लाभकारी और उपयोगी मानी गई है। प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–साथ आयुर्वेद का यदि हम प्रयोग करते हैं। तो कैंसर जैसे असाध्य रोगों से हमें हमेशा के लिए मुक्ति भी मिल सकती है। कैंसर हमारे अप्राकृतिक आहार विहार, रहन–सहन , खान–पान के कारण हमारे शरीर में कैंसर उत्पन्न होता है। कैंसर दूषित भोजन और अधिक अल्कोहल, धूम्रपान , गुटका शराब आदि का सेवन करने से होता है। इस चिकित्सा के लिए आधुनिक विज्ञान चिकित्सा ने रेडियोथैरेपी तथा ऑपरेशन आदि से राहत तो अवश्य देता है। किंतु इसके उपचार काफी महंगे और दुष्प्रभाव सिद्ध होते हैं। कभी–कभी। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में इसका उपचार करके इसको दूर किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा जो सभी प्रकार के दुष्प्रभाव से रहित और सर्व सुलभ और सबसे कम खर्चीली चिकित्सा है। रोग के कारण प्राकृतिक रासायनिक खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन जैसे कैंसर चीनी , नमक आदि का सेवन, कीटनाशक दवाइयां , युक्तसब्जियां फल फूल , अनाज, दूध व एंटीबायोटिक अधिक दवाइयां का सेवन करना अनियमित जीवन जीवनचार्य से के कारण कब्ज का उत्पन्न होता है। वायु प्रदूषण जल प्रदूषण के साथ–साथ अधिक धूम्रपान करना दुर्व्यसन आदि के कारण, अत्यधिक तनाव और नकारात्मक चिंतन शैली बढ़ जाती है। और यह रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग के लक्षण

1.शरीर में किसी भी अंग अवयव में सड़न उत्पन्न होना शरीर के आंतरिक अंग अवयवों का ठीक से कार्य न करना ।

2.बार–बार सर्दी जुखाम बुखार आदि से ग्रसित हो जाना ।

3.शरीर में श्वेत रक्त कणिकाओं की कमी आ जाना ।

4.आवाज में भारी होकर बैठ जाना रक्त में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न होना।

5. चेहरा निर्जीव और पीला पड़ जाना।

6. अत्यधिक मानसिक और शारीरिक थकावट महसूस होना।

एनिमा द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा

कैंसर में विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों में एनिमा चिकित्सा कैंसर जैसे असाध्य रोगों के लिए काफी लाभकारी है। सर्वप्रथम रोगी की दिनचर्या को नियंत्रित करना चाहिए। और प्रातः कालीन खान–पान आहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए। व्यक्ति की दिनचर्या पूरी तरह से प्राकृतिक और सकारात्मक होनी चाहिए। प्रातः कालीन जागरण के साथ–साथ ऊषापान, मल त्याग, योग , व्यायाम ,प्राणायाम आदि बहुत ही उपयोगी माने गए हैं। साथ–साथ मिट्टी चिकित्सा जल चिकित्सा अग्नि चिकित्सा और उपवास चिकित्सा भी करना चाहिए। उपवास चिकित्सा बहुत ही लाभकारी मानी गई है। कैंसर जैसे रोगी को गुनगुने जल में नींबू आदि का रस मिलाकर द्रव्य तैयार करके एनिमा देना चाहिए। एनिमा चिकित्सा में त्रिफला आदि के चूर्ण से काढ़ा बनाकर काफी लाभकारी है। इसी के साथ–साथ में विभिन्न प्रकार की वन औषधीय जैसे नीम , गिलोय का काढ़ा गोमूत्र में उबाल कर उसे छानकर अच्छे से व्यक्ति को प्रातः काल खाली पेट पिलाने से कैंसर में काफी लाभ मिलता है । नीम, गिलोय ,अमरूद के पत्ते उबालकर तैयार करके एनिमा देने से काफी लाभ मिलता है। सप्ताह में उसे कम से कम दो बार एनिमा और एक बार शंख प्रक्षलन भी करना चाहिए । खाद्य पदार्थ पूरी तरह से प्राकृतिक होनी चाहिए । और पूरी तरह से व्यक्ति को योगिक क्रियाएं भी करते रहना चाहिए। और साथ ही साथ उसे परमपिता परमात्मा का भजन कीर्तन सत्संग भी करते रहना चाहिए।

6.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. कब्ज के लिए सबसे उपयोगी जल चिकित्सा कौन सी है?

अ. एनिमा

ब. कटि स्नान

स. रीढ़ स्नान

द. मृदा स्नान

प्रश्न– 2. एनिमा को यौगिक क्रियाओं में किस नाम से जाना जाता है?

अ. नौली

ब. बस्ती

स. नेति

द. धौति

प्रश्न –3. उदर में क्रीमी रोग होने पर कौन सा एनिमा उपयोगी माना गया है हैं?

अ. नीम युक्त एनिमा

ब. गुनगुने जल का एनिमा

स. ठंडे जल का एनिमा

द. सभी

प्रश्न– 4. एनिमा जल चिकित्सा की कौन सी विधि के अंतर्गत आती है?

अ. आंतरिक

ब. बाह्य

स. दोनो

द. कोई नहीं

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. कब्ज निवारण के लिए एनिमा सबसे उपयुक्त जल चिकित्सा मानी गई है।

प्रश्न–6. रोगी के रोग के आधार पर एनिमा में जल का ताप का उपयोग और औषधि का उपयोग किया जाता है।

6.8 सारांश

अतः इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में आंतरिक जल प्रयोग विधि के अंतर्गत एनिमा बड़ी आंतों की सफाई से संबंधित सभी प्रकार के रोगों और मलों को दूर करने का कार्य करती है। इस प्रस्तुत इकाई में हमने एनिमा से होने वाले समस्त लाभों को एनिमा में प्रयुक्त होने वाले जल और औषधीय के बारे में जानकारी प्राप्त की एनिमा को कितने प्रकार से दिया जा सकता है । एनिमा में लेटने की अवस्था के बारे में हमने जानकारी प्राप्त की और साथ ही एनिमा के प्रकारों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की एनिमा का उपयोग विभिन्न रोगों में किया जा सकता है। जिससे शरीर के समस्त रोग ठीक हो सकते है। इसके बारे में हमने

विस्तार से चर्चा की इसलिए एनिमा से हमें यह जानकारी प्राप्त हुई कि एनिमा बड़ी आंत की सफाई, पेट की विकृतियों आदि की समस्या को दूर करने में बहुत ही उपयोगी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है । इस क्रिया से शरीर से समस्त रोग दूर हो सकते हैं । क्योंकि पेट के साफ होने से सारे के सारे रोगों का निदान आसानी से हो जाता है। पेट की सफाई के लिए एनिमा सबसे लाभकारी क्रिया बतलाई गई है।

6.09 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 अ. एनिमा

प्रश्न –2 ब. बस्ती

प्रश्न –3 अ. नीम युक्त एनिमा

प्रश्न –4 अ. आंतरिक

प्रश्न –5. **सत्य**

प्रश्न–6. **सत्य**

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. एनिमा का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. विभिन्न रोगों में एनिमा के लाभों को विस्तार पूर्वक लिखिए।
3. एनिमा की विधि लाभ एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. एनिमा के प्रकार एवं एनिमा का विस्तार से वर्णन कीजिए।

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक चिकित्सा, राम गोपाल शर्मा, प्रभात पेपर बैक, नई दिल्ली।
2 सरल प्राकृतिक चिकित्सा, डा० ओ० पी० सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
3.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डा० राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर ।
4. गायत्री महाविज्ञान, आचार्य श्रीराम शर्मा, अखंड ज्योति प्रकाशन, आगरा उत्तर प्रदेश।
5. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, डा0 नागेन्द्र कुमार नीरज, नारायण प्रकाशन, जयपुर।
6. रोग और योग। कर्मानंद , बिहार स्कूल ऑफ योग मुंगेर बिहार भारत।

तृतीय खण्ड– मिट्टी, सूर्य व वायु चिकित्सा

परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा [MAYO-106] पाठ्यक्रम का यह तृतीय खण्ड है, जिसका शीर्षक मिट्टी, सूर्य व वायु चिकित्सा के संदर्भ में बताया गया है, जिसमें मिट्टी, सूर्य व वायु चिकित्सा का स्वरूप, प्रकार एवं मिट्टी , सूर्य वायु तत्व से होने वाली चिकित्सा के बारे परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–7 मिट्टी का महत्व, प्रकार, गुण। शरीर पर मिट्टी का प्रभाव। मिट्टी की पट्टिया। मृतिका स्नान।

इकाई–8 सूर्य प्रकाश का महत्व, सूर्य स्नान, विभिन्न रंगो का चिकित्सीय प्रयोग।

इकाई–9 वायु का महत्व, वायु का आरोग्यकारी प्रभाव, वायु स्नान।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत मिट्टी, सूर्य व वायु चिकित्सा का परिचय, मिट्टी तत्व का महत्व,मिट्टी के प्रकार, मिट्टी के गुण , शरीर पर मिट्टी प्रभाव , मृदा स्नान, के साथ साथ अग्नि तत्व हेतु, सूर्य प्रकाश का महत्व, सूर्य स्नान, विभिन्न रंगों का चिकित्सीय प्रयोग, इस खण्ड के अंत में वायु तत्व के लिए वायु चिकित्सा का परिचय, वायु का महत्व, वायु चिकित्सा के आरोग्यकारी लाभ व शरीर पर प्रभाव, पवन स्नान आदि के विषय में विस्तार पूर्वक जान सकेंगे।

इकाई – 07 मिट्टी का महत्व, प्रकार एवं गुण । शरीर पर मिट्टी का प्रभाव। मिट्टी की पट्टियां, एवं मृतिका स्नान ।

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मिट्टी का महत्व

7.4 मिट्टी के प्रकार एवं गुण

7.5 शरीर पर मिट्टी का प्रभाव

7.6 मिट्टी की पट्टिया

7.7 मृतिका स्नान

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 साराश

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

हमारा शरीर मूल रूप से पांच तत्वों से बना है। जिसमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व समाहित हैं। इन पांच तत्वों में पृथ्वी तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण और विशेष माना गया है। क्योंकि स्थूल शरीर का निर्माण पृथ्वी तत्व से हुआ है । और कहीं ना कहीं पृथ्वी तत्व ही संपूर्ण शरीर को एक ढांचा प्रदान करके शरीर की उत्पत्ति करता है । जिसमें मनुष्य की उत्पत्ति उसका पालन पोषण इसकी वृद्धि उसका विकास और समय–समय पर आधि और व्याधि नामक रोग विनाश कर पृथ्वी तत्व प्रणता में विलीन कर

देती है मानव जीवन इन्हीं पर निर्भर है। यही कारण है, कि पृथ्वी तत्व को सृष्टि भी माना गया है। क्योंकि मनुष्य जिस पृथ्वी पर रहता है । यही से उपजाऊ अन्न, जल ,फल ,फूल आदि को ग्रहण करके अपने शरीर का पोषण करता है। इसलिए पृथ्वी से उत्पन्न हुई सारी चीजों को कहीं ना कहीं सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इसलिए पृथ्वी को माता कहकर पुकारा गया है । मिट्टी से अनाज, अनाज से पौष्टिकता प्राप्त होती है। मिट्टी विश्लेषण तत्वों को नष्ट करती है। जल तत्व, अग्नि तत्व वायु तत्व इन तत्वों में ज्यादा स्थूल तत्व पृथ्वी तत्व है। क्योंकि पृथ्वी तत्व में सभी के गुण पाए जाते हैं। अनेक ग्रथों में अलग–अलग पृथ्वी तत्व के संदर्भ में बहुत सारी बातें कही गई है। इसी प्रकार बाइबल में ईश्वर ने पृथ्वी से धूल उठाकर पुतला बनाया और फिर उसमें प्राण का प्रवाह किया और उसे सजीव बना करके वनों का जीवन उत्पन्न किया इसी कारण पृथ्वी को माता कहकर और पिता को आकाश कहकर पुकारा गया है । मिट्टी सभी रोगों के लिए रामबाण माना गया है। क्योंकि इसमें जीवनी शक्ति का प्रभाव पाया जाता है । यह मृत वस्तुओं को भी जीवित कर देती है। इसमें सजीव का यांत्रिक गुण पाया जाता है ।विशेष पदार्थों को नष्ट करने का गुण पाया जाता है। क्योंकि मिट्टी से हम घर भी बना सकते हैं । वस्तुएं भी बना सकते हैं मिट्टी का उपयोग केवल रोगों के उपचार हेतु नहीं किया जाता है वरण शरीर को बलशाली पोस्ट और रोग की प्रतिरोधक क्षमता को वृद्धि करके रोगों को दूर भी करते हैं। मिट्टी चिकित्सा अमूल्य पध्दति है। जिसका शरीर तथा मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। महात्मा गांधी ने मिट्टी के संदर्भ में कहा था मिट्टी से हमारा शरीर बना है । इसी मिट्टी में जन्म हुआ है और एक दिन मरकर भी इसी मिट्टी में राख हो जाना है इसलिए कहा गया है । मिट्टी हमारी माता है। मिट्टी से हमारा जितना लगाव है इतना पांच तत्वों में से किसी से लगाव नहीं क्योंकि हमें मिट्टी का ही सबसे ज्यादा सपोर्ट और सहारा मिलता है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मिट्टी के प्रकारों का अध्ययन कर सकेंगे मिट्टी के महत्व को जान पाएंगे ।

- मिट्टी से विभिन्न रोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है उनके रोगों को कैसे दूर कर सकते हैं इसका अध्ययन करेंगे।
- मिट्टी से होने वाले विभिन्न प्रकार के लाभों के बारे में उनके लक्षणों के बारे में अच्छे से हम इसमें जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मिट्टी पांच तत्व में प्रमुख है, इसमें सभी गुण पाए जाते हैं इसकी श्रेष्ठतत्व के बारे में हम जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 मिट्टी का महत्व

मिट्टी का महत्व हमारे जीवन में इस प्रकार है जैसे जल तत्व , आकाश तत्व, अग्नि तत्व और वायु तत्व का है। क्योंकि मिट्टी से ही हमारे संपूर्ण स्थूल शरीर का निर्माण हुआ है। यदि किसी प्रकार से मिट्टी तत्व में कोई भी गड़बड़ियां उत्पन्न होती हैं। तो हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि हमारा शरीर है जो वह अन्नमय कोश से बना है, क्योंकि अन्नामय कोश की उत्पत्ति अनाज से हुई है यों कहे कि हमारे द्वारा जो भी चीज खाई जाती हैं और खाई हुई चीजों से रस, रक्त, मांस, मेद , अस्ति, मज्जा और शुक्र का निर्माण होकर संपूर्ण शरीर का निर्माण होता है। इसलिए पृथ्वी तत्व सबसे महत्वपूर्ण माना गया है । मानव जीवन के लिए हमारा शरीर पांच तत्वों से बना है। जिनमें पृथ्वी तथ्य मनुष्य की उत्पत्ति उसका पालन, पोषण वृद्धि करना तथा मिट्टी में सभी रोगों को दूर करने की अद्‌भुत शक्तियां होती हैं। इससे रासायनिक समीकरण विद्वमान रहता है। जो विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में सहायक है। विष पदार्थों को दूर करने में अधिक लाभकारी है यदि किसी प्रकार के जहरीले जीव, जंतु ,सांप बिच्छू आदि काट ले तब उसे स्थान पर स्वच्छ मिट्टी को गिला करके लगा लेने पर कुछ समय पश्चात वह मिटी जीव जंतु के जहर को सुखा लेती है इसके साथ–साथ मिट्टी में सजीवता का गुण पाया जाता है। जो निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव कर देती है । जैसे पेड़ से प्राप्त फल के जो बीज होते हैं यदि उनको जमीन में जमा दिया जाए , तो वह पानी हवा पाने के पश्चात वह अंकुरित होकर एक पुनः पेड़ के रूप में विकसित होकर वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं। मिट्टी सभी प्रकार के विष को शोषण करने की क्षमता के साथ–साथ यह दुर्गंध नाशक भी है। जब हमारे वातावरण के आसपास अधिक गंदगी इकट्ठा हो जाती है। या कोई जीव जंतु पशु की मृत्यु हो जाती है । तब उसे यदि जमीन में दवा दिया जाए तो वहां उससे उत्पन्न होने वाली दुर्गंध शक्ति का नाश करके उसको पांच तत्व में विलीन करके नष्ट कर देती है । और वातावरण को स्वच्छ बना देती है। इसलिए इसमें दुर्गंध नाशक का भी गुण पाया जाता है। इसी प्रकार हमारे शरीर पर जब त्वचा पर फोड़े फुंसी घाव आदि हो जाते हैं । उनसे निकलने वाले पस आदि को दूर करके उस घाव की गंदगी को तथा उसके विस पदार्थ को बाहर निकाल कर ठीक करने का काम भी मिट्टी के द्वारा होता है। साथ ही साथ मिट्टी में विलक्षण विषहरण की शक्ति भी होती है। जिससे वह फोड़े को फोड़ कर उसके विष पदार्थ को शरीर से बाहर निकाल देती है। जिसका कारण वहां के विजाती द्रव्य बाहर निकल जाते हैं। और विजाती द्रव्यों के निकलते ही शरीर पूरी तरह से स्वच्छ व साफ होकर रोगों से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार मिट्टी में सर्दी गर्मी को रोकने की अद्‌भुत क्षमता होती है । जब व्यक्ति मिट्टी के घरों में रहता था। तो गर्मी के दिनों में मिट्टी के मकान ठंडा और ठंडा के दिनों में मिट्टी के मकान गरम प्रतीत होते थे। साथ ही साथ मिट्टी को यदि किसी प्रकार से गर्म किया जाए तो वह गरम भी हो जाती है और ठंडा किया जाए तो वह ठंडी भी हो जाती है। तभी योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाए रहते हैं जिससे कड़ी धूप और कड़ाके की सर्दी के समय उनके बदन की रक्षा मिट्टी के द्वारा होती रहे । पेट, सर पर पट्टी बांधने से तेज बुखार आदि के रोग भी दूर हो जाते हैं ।शरीर में किसी प्रकार से कोई बीमारी है, दर्द है पीड़ा है जख्म है। उसकी स्थान पर स्वच्छ मिट्टी को लगाया जाए तो निश्चित ही मिट्टी से तत्काल प्रभाव मिलता है मिट्टी में

यांत्रिक गुण होता है मिट्टी को हम अपने घर के उपकरणों बर्तनों के रूप में इसका उपयोग कर सकते हैं मिट्टी के माध्यम से हम घरों का निर्माण भी कर सकते हैं इसलिए मिट्टी का मानव जीवन में सबसे अधिक महत्व भी बतलाया गया है क्योंकि मिट्टी के बिना जीवन की कल्पना कर पाना संभव नहीं है क्योंकि भूख प्यास खान–पान रहन–सहन सब की सब मिट्टी के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं मिट्टी से ही सभी प्रकार के खनिज लवणों की उत्पत्ति होती है जब सूर्य का प्रकाश मिट्टी पर पड़ता है तब उसके माध्यम से पोटैशियम, मैग्निशियम, सल्फर, फास्फोरस, गंधक, जिंक तथा नमक आदि की भी उत्पत्ति मिट्टी से ही होती है मिट्टी से उत्पन्न पेड़ पौधे फल सब्जियां उत्पन्न करते हैं। जिनका उपयोग करके मानव अपने जीवन की रक्षा करता है इसलिए मिट्टी हमारे जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण और उपयोगी मानी गई है।

मिट्टी के महत्व के बारे में अनेकों विद्वानों ने अलग–अलग अपने मत प्रकट किए हैं।

प्रोफेसर स्ट्रांगलासा

मिट्टी के संदर्भ में कहते हैं, कि मिट्टी एक प्रकार का रेडियम है, जो शरीर की सभी ग्रंथियां को प्रभावित करके स्वस्थ की वृद्धि करने में सहायक है, मशीनों द्वारा प्राप्त रेडियम तथा बहुत ही हानिकारक होता है, जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से किसी प्रकार से कोई हानि नहीं होती, लाभ ही होता है, क्योंकि मिट्टी एक प्रकार से ईश्वर का प्राकृतिक वरदान है।

लिंडलर के अनुसार

मिट्टी संपूर्ण शरीर के लिए बहुत ही उपयोगी है, जो त्वचा के रोम छिद्रों को खोलती है, रक्त को ऊपरी भाग की ओर खींचती है, तथा रक्त के संचार को शरीर की अंदर की ओर प्रेरित करके दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है, विजाती द्रव्यों को बाहर निकलने का मिट्टी के द्वारा तत्काल होता है।

तैत्रियोपनिषद उपनिषद के अनुसार

उपनिषद में अन्नमय कोश की शुद्धि के लिए मिट्टी सबसे उपयोगी मानी गई है। क्योंकि मिट्टी से ही सभी प्रकार के अन्य आदि पदार्थ उपलब्ध होते हैं। जिनका ग्रहण करके पोषक तत्वों को प्राप्त करके मानव शरीर की वृद्धि अथवा विकास को प्राप्त होती है। ऐतरियो उपनिषद के अनुसार मिट्टी संपूर्ण पांच तत्वों में से प्रधान तत्व है। मिट्टी तत्व में अन्याचारी तत्वों की भी गुण पाए जाते हैं। क्योंकि आकाश से वायु , वायु से अग्नि , अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति हुई है।

7.4 मिट्टी के प्रकार एवं गुण

मिट्टी के अनेक प्रकार बताए गए हैं। क्योंकि इस पृथ्वी जगत पर स्थान परिवर्तन होने के साथ–साथ अनेको जगह विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। और सब के गुण अलग–अलग होते हैं । क्योंकि अलग–अलग जगह पर पाए जाने के कारण उनकी प्रकृति उनका गुण सब अलग–अलग पाया जाता है। इसलिए उनके कार्य भी अलग–अलग होते हैं। कोई मिट्टी हमारे बर्तन बनाने के काम आती है, तो कोई मिट्टी हमारे रोगों को ठीक करने की कम आती है। किसी मिट्टी का हम उपयोग अपने शरीर शुद्धि के लिए करते हैं। तो किसी मिट्टी का उपयोग हम अपनी त्वचा को निकालने तथा सौंदर्य प्रसाधन के लिए उपयोग करते हैं । और किन्ही मिट्टी का प्रयोग तो हम अपने घरों को बनाने में उपयोग करते हैं। और कई प्रकार की मिट्टी है जिसका उपयोग हम केवल कपड़े ऊपर साफ करने के उद्देश्य भी करते हैं । इस प्रकार से मिट्टी अनेकों प्रकार की पाई जाती है ।उनके गुण कर्म और स्वभाव सब अलग–अलग होते हैं । इसलिए लिए हम मिट्टी के प्रकारों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

- **काली मिट्टी**

  यह मिट्टी मध्य प्रदेश के आगे मालवा क्षेत्र में पाई जाती है। यह देखने में बहुत ही काली होती है। इसमें बालू की मात्रा कम पाई जाती है। जिसके कारण यह चिकनी होती है। जो बालों को साफ करने के उपयोग में लाई जाती है। साथ ही साथ इस मिट्टी का उपयोग हम मुख्य रूप से विष तत्वों को दूर करने तथा विष चिकित्सा में इसका उपयोग करते हैं।

- **लाल मिट्टी**

  यह मिट्टी मध्य प्रदेश के रीवा क्षेत्र में तथा उड़ीसा के बौद्ध आदि क्षेत्रों में पाई जाती है । यह रंग में लाल होती है। इसका उपयोग मुख्य रूप से घर की पुताई आदि के काम में भी लाई जाती है। लाल मिट्टी मुख्य रूप से गेरू मिट्टी के नाम से भी जानी जाती है। जिसका उपयोग हम पुताई करने पर इसका उपयोग करते हैं। शरीर की बड़ी गर्मी को दूर करने के भी काम आती है । यह पहाड़ी इलाकों में पाई जाती है।

- **मुल्तानी मिट्टी**

यह पाकिस्तान के मुल्तान क्षेत्र में पाई जाती है। जिसका उपयोग शरीर की शुद्धि व सौंदर्य प्रसाधन के लिए उपयोग में लाई जाती है । यह मिट्टी ठंडी होती है। इसलिए मेकअप आदि के कार्यों में इस मिट्टी का उपयोग किया जाता है। प्राचीन समय में जब साबुन, शैंपू आदि नहीं हुआ करते थे तब घर में माताएं या पुरुष वर्ग के सभी लोग अपनी बालों की सफाई के लिए विशेष कर मुल्तानी मिट्टी का उपयोग करते थे।

- **पीली मिट्टी**

यह उत्तर प्रदेश की नदियां व तालाबों के किनारे पाई जाती है। यह चिकनी मिट्टी के अंतर्गत आता है। इस मिट्टी का उपयोग मुख्य रूप से घाव फोड़े फुंसी आदि को दूर करने के काम में लाई जाती है इसकी भी गुण शीतलता से युक्त होती है। इसलिए यह शीतलता प्रदान करके रोगों को ठीक करने के काम में उपयोगी है।

- **बालू मिट्टी**

यह कुएं की गहराई तथा नदियों की गहराई आदि से प्राप्त की जाती है। जहां बालू के रूप में होती है। जिसका उपयोग हम पोटली बना करके सिकाई करने के काम में लाते हैं। साथ ही साथ पेट से संबंधित जब कब्ज आदि रोग उत्पन्न होते हैं तब बालू के माध्यम से इस मिट्टी का उपयोग करके रोगों को दूर करते हैं।

- **पर्वतीय मिट्टी**

यह मिट्टी पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली मिट्टी है। यह प्रदूषण आदि से मुक्त होती है। इसका उपयोग मुख्य रूप से घर बनाने तथा यह औषधि गुनों से युक्त होती है । जो फोड़े फूंसी व त्वचा रोगों के लिए विशेष लाभकारी मानी गई है । सज्जी मिट्टी यह मिट्टी शीतोष्ण प्रदेशों में पाई जाती है। जो नमक के आकार की होती है जिसका उपयोग मुख्य रूप से कपड़ा धुलने व बर्तन साफ करने के काम में ले जाती है । यह प्रकृति से अम्लीय रूप में पाई जाती है । यह विशेष रूप से औषधि बनाने के काम में भी लाई जाती है।

- **पिंडोर मिट्टी**

यह मिट्टी नदियां व तालाबों के किनारे पाई जाती है । जो पिंडोर के रूप में होती है। यह काफी चिकनी मिट्टी के अंतर्गत आता है। जो शरीर की सफाई तथा शारीरिक त्वचा रोगों में विशेष लाभकारी मानी गई है।

- **ईट भट्ठे की मिट्टी या गेरू मिट्टी**

यह मिट्टी अग्नि में पकने के करण बहूत स्वच्छ होती है जो घाव, खाज, खुजली आदि के उपयोग में अधिक लाभकारी मानी गई है।

अतः इस प्रकार मिट्टी अलग–अलग स्थान पर पाए जाने के कारण इसका उपयोग भी अलग–अलग स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता है। पहाड़ी इलाकों की मिट्टी मुख्य रूप से औषधि गुणों से युक्त होती है साथ ही साथ स्वास्थ वर्धक भी होती है। जिसके कारण वहां रहने वाले लोगों को किसी प्रकार से कोई

समस्या भी नहीं होती है। और सभी प्रकार के विजाती द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने के काम के लिए बहुत ही उपयोगी और मानी गई है। इसलिए लाल मिट्टी, काली मिट्टी , पीली मिट्टी ,मुल्तानी मिट्टी, सज्जी मिट्टी यह सभी के सभी मुख्य रूप से शरीर स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी मानी जाती है।

मिट्टी के गुण

मिट्टी पांच तत्वों में सबसे उपयोगी तत्व होने के कारण इसके बहुत सारे गुण बताए गए हैं जिनका चिकित्सा के साथ–साथ व्यक्ति के जीवन में अनेकों प्रकार से उपयोगी मानी गई है इसलिए हम मिट्टी के गुण के बारे में जानेंगे। मिट्टी के अपने कुछ बहुत सारे अपने–अपने विशिष्ट गुण होते हैं। जो सूर्य के प्रकाश के मिलने पर अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों को भी उत्पन्न करते हैं लिए मिट्टी के गुणों के बारे में हम विस्तृत जानकारी प्राप्त करते हैं।

- **बंधक का गुण**

मिट्टी में बंधक का गुण पाया जाता है जिसको हम गीली करके किसी प्रकार से हम बहते हुए पानी को भी रोक सकते हैं। और दीवारों के माध्यम से हम घर को भी बना सकते हैं इसलिए मिट्टी में बंधक का गुण पाया जाता है।

- **यांत्रिक गुण**

मिट्टी को हम किसी प्रकार से भी गीली करके यंत्र के रूप में डालकर हम उसके यंत्र और मिट्टी के बर्तन भी बना सकते हैं । और बर्तनों का अपने जीवन में उपयोग करके अपने जीवन को सरल और सहज बना सकते हैं बंधक का गुण होने के साथ–साथ मिट्टी कठोर भी होती है।

- **निर्जीविता को सजीव बनाने का गुण**

मिट्टी में निर्जीविता को सजीव बनाने का गुण भी पाया जाता है । मिट्टी में निर्जीव वस्तुओं को डालने पर उनमें सजीवता उत्पन्न हो जाती है। यह अद्भुत गुण पाया जाता है। जैसे किसी पेड़ के बीज या टहनी को मिट्टी में दवा दिया जाता है और जल से सिंचित कर दिया जाता है तो वह कुछ दिन में ही पूरी तरह से सजीव होकर पेड़ पौधों के माध्यम से वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं। इसलिए मिट्टी में सजीवता का गुण पाया जाता है।

- **कठोरता का गुण**

मिट्टी में कठोरता का गुण मिट्टी पांच तत्वों में सबसे कठोर स्थूल पाई जाती है इसलिए उसमें कठोरता का गुण भी पाया जाता है।

- **विष को शोषण करने का गुण**

विष को शोषण करने का गुण मिट्टी में एक अद्भुत शक्ति पाई जाती है यह गुरुत्वाकर्षण के कारण होती है। यह किसी जीव जंतु या विषैला सर्प, बिच्छू के डसने पर उनके विष को दूर करने के काम में लाई जाती है। इसलिए मिट्टी में विष द्रव्यों को शोषण करने का गुण पाया जाता है।

- **विद्रावक का गुण**

मिट्टी में विद्रावक का गुण पाया जाता है। जो किसी घाव या फोड़े को पीघलाकर उसे विषाक्त रहित करता है। किसी स्थान पर यदि फोड़ा हो जाता है। यदि वहां लगा लिया जाए तो वह जल्द से जल्द उसको पका कर उसके विजाती द्रव्य को बाहर निकलने का काम करती है।

- **सर्दी गर्मी को रोकने का गुण**

मिट्टी में सर्दी गर्मी को रोकने का आधुनिक गुण पाया जाता है। मिट्टी को जिस ताप के संपर्क में लाया जाता है मिट्टी उसी के सापेक्ष बन जाती है इसलिए मिट्टी को गरम भी कियाजा सकता है। और ठंड भी और गिला भी किया जा सकता है। मिट्टी का उपयोग जिस रूप में हम करना चाहे उस रूप में मिट्टी का उपयोग कर सकते हैं।

- **गुरुत्वाकर्षण शक्ति**

मिट्टी में सबसे बड़ा गुण पाया जाता है यह गुण प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर आकर्षित करने का गन रखता है । इसी कारण जो व्यक्ति इस तत्व के अधिक संपर्क में रहते हैं उनके शरीर में स्वच्छता व गंदगी कभी भी पनप नहीं पाती पृथ्वी तत्व के इसी गुरुत्वाकर्षण गुण के कारण व्यक्ति विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचा रहता है क्योंकि शरीर स्वच्छ होता है और शरीर में गंदगी नहीं आ पाती शरीर के विभिन्न अंगों पर मृदा तत्व के रूप में यदि इसका उपयोग करके हम बिजाति द्रव्यों को बाहर आकर्षित कर सकते हैं । यूं कहें की मिट्टी का उपयोग करके अपने रोगों को हम पृथ्वी तत्व की तरफ खींच सकते हैं। और हम रोगों से मुक्त हो सकते हैं।

- **अपमार्जक गुण**

पृथ्वी तत्व का दूसरा सबसे बड़ा अपमार्जक का गुण पाया जाता है। यह गुण सभी मृत्यु व सड़े हुए गले जीव जंतुओं पदार्थ का अपमार्जन करके उन्हें सदा गल करके उनको दुर्गंध से रहित करके उनको मिट्टी में सुखा देती है । और मिट्टी उन सड़े गले पदार्थ का अपमार्जन करके उन्हें खाद्य के रूप में मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने का भी काम करती है। क्योंकि संसार के सभी जीव जंतु अंत में इसी पांच तत्व रूपी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं।

- **शुद्धता का प्रमुख गुण**

मिट्टी में शुद्धता का प्रमुख गुण पाया जाता है। जिसका उपयोग करने पर शरीर की गंदगी व आसपास की जो भी गंदगी होती है। उसको शुद्ध कर देती है ऐसा भी कहा जा सकता है। कि गंदे पानी को यदि मिट्टी के बर्तन में रख दिया जाता है। तो वह पूरी तरह से शुद्ध और साफ हो जाता है। इसी प्रकार हमारे शरीर में जब अशुद्ध बढ़ जाती है। तो मिट्टी की चिकित्सा के माध्यम उसे अशुद्ध को दूर करके शरीर को शुद्ध व साफ करने का भी काम करते हैं । इसलिए मिट्टी में शुद्धता का बहुत बड़ा गुण पाया जाता है।

- **सृजनात्मक गुण**

मिट्टी में सृजनात्मक गुण पाया जाता है सृजनात्मक का अर्थ है सृजन करना अर्थात जब कोई बी इस भूमि में मिल जाता है तब वह जल तत्व और वायु तत्व के प्रभाव में आते ही मिट्टी का सहारा लेकर के उसमें सृजन की शक्ति उत्पन्न होती है और वह बीज अंकुरित रूप से उत्पन्न होकर वह बड़े पौधे के रूप लेता हुआ वृक्ष के रूप में बन जाता है इसके साथ ही साथ पृथ्वी तत्व अलग–अलग वनस्पतियों अलग–अलग रस व गुणों का भी पोषण करती है। इसलिए मृदा तत्व में सृजनात्मक का एक विलक्षण गुण भी पाया जाता है। जो प्रकृति का एक वरदान स्वरुप माना गया है।

7.5 शरीर पर मिट्टी का प्रभाव

मिट्टी हमारे शरीर के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है। इसका हमारे शरीर पर विभिन्न प्रकार का लाभ मिलता है। शरीर की बाह्य त्वचा पर प्रभाव पड़ने के साथ–साथ आंतरिक अंगों की क्रियाशीलता तथा रक्त के संचार को बढ़ाकर शरीर की समस्त क्रिया प्रक्रिया को संचालित करने का कार्य करती है। कोशिकाओं को बनाने या उनकी मरम्मत करने के साथ–साथ शरीर की मांसपेशियां तथा अस्थियों को मजबूती प्रदान करने का काम भी मिट्टी के द्वारा किया जाता है। मिट्टी का हमारे शरीर में बहुत ही उपयोगी लाभ मिलते हैं। मिट्टी का विभिन्न प्रकार के रोगों में उपयोग करके हम उनके दोशों को दूर करके रोगी

शरीर को स्वस्थ बना सकते हैं । यदि चिकित्सीय दृष्टि से देखा जाए तो मिट्टी का उपयोग हमारे शरीर की रक्त वाहिकाओं को संचालित करके उनकी क्रियाशीलता को तीव्र करने का कार्य करती है।तथा बाह्य त्वचा से संबंधित सभी प्रकार के रोग फोड़े फुंसी इत्यादि को विद्रवक शक्ति प्रदान करके उनको दूर करने का भी काम करती है। इसलिए मिट्टी का उपयोग हमारे जीवन के लिए बहुत उपयोगी मानी गई है आधुनिक चिकित्सा पृथ्वी तत्व का गहराई से अध्ययन विश्लेषण करने के पश्चात इसके गुणों को लेकर के काफी विस्तृत बातें बतलाई हैं।

प्रोफेसर स्ट्रांगलासा के अनुसार

मिट्टी एक प्रकार का रेडियम होता है । जो शरीर की सभी प्रकार की ग्रंथियां को प्रभावित करके स्वस्ति में वृद्धि करता है । यह मशीनों के द्वारा प्राप्त रेडियम प्रायः हानिकारक होता है। जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से तनिक भी हानि नहीं होती है ।

डॉक्टर लिंडलहार के अनुसार

मिट्टी त्वचा के रूम कुपों को खोलती है। और त्वचा की भी परत को पूरी तरह से शुद्ध व पवित्र करती है । साथ ही साथ ऊपरी भाग की ओर अंदर के विजाती द्रव्यों को खींचकर अंदर के दर्द को दूर करके रक्त के संचार को पूरी तरह से बनाए रखती है विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का अद्भुत काम मिट्टी करती है।

लुई कुने के अनुसार

प्राकृतिक चिकित्सा लुई कुने ने भी इसी संदर्भ में बालू के सेवन को लेकर के कई लाभ बतलाए हैं। उनका कहना है, कि जब कब्ज जैसी बीमारी के लिए विशिष्ट उत्तम चिकित्सा के लिए मिट्टी का उपयोग करना बहुत ही लाभकारी माना गया है।

फादर नीप के अनुसार

पृथ्वी पर हम यदि नंगे पैर चलते हैं । तो हमारे शरीर के सर्दी जुकाम गले की सूजन सर का ठंडा होना बहुत सारे रोग दूर हो जाते हैं। इसलिए मिट्टी के संपर्क में रहना पृथ्वी पर नंगे पैर घूमने मिट्टी के घरों में निवास करना मिट्टी में सभी प्रकार के तत्व पाए जाते हैं। पृथ्वी तत्व की उपयोगिता को ग्रहण करने के लिए विभिन्न प्रकार के शाकाहारी फल सब्जियां फूल आदि को हम यदि उपयोग करते हैं। तो मिट्टी तत्व की गुण हमारे शरीर में मिलते रहते हैं।

मिट्टी तत्व के उपयोग की विधियां

मिट्टी तत्व को निम्न रूपों में प्रयोग करके शरीर को अनेक प्रकार की बीमारियों से दूर करके अनेको लाभ प्राप्त किया जा सकते हैं । जिनमें मिट्टी तत्व की उपयोगिता मिट्टी पट्टी के रूप में मिट्टी के उपयोग को हम विभिन्न प्रकार की शारीरिक अंगों के अनुसार व रोगों के आधार पर मिट्टी पट्टियों का निर्माण करके उनकी पट्टी बनाकर के हम उसे चिकित्सा में मिट्टी पट्टी का उपयोग कर सकते हैं।

- **लेप के रूप में**

मिट्टी का उपयोग हम शरीर पर विभिन्न प्रकार के लेप के माध्यम से अपने रोग निवारण में इसका उपयोग कर सकते हैं। जब शरीर में त्वचा रोग हो जाते हैं। उन रोगों से निदान पाने के लिए मिट्टी को लेप के रूप में प्रयोग किया जाता है।

- **आहार के रूप में**

विभिन्न प्रकार के फल सब्जियां अनाज आदि सभी मिट्टी में ही उगते हैं। इसलिए उनमें उगाने के कारण उसमें मिट्टी के सभी प्रकार के गुण पाए जाते हैं । इसलिए जितना ही हम शाकाहारी भोजन का प्राकृतिक आहार का खाद्य पदार्थों का ग्रहण करते हैं। उतने ही हमारे शरीर में मिट्टी तत्व बना रहता है।

- **पंक व राज स्नान के रूप में**

मिट्टी का उपयोग हम पंक व रज स्नान के रूप में भी कर सकते हैं। प्राचीन समय में किसान इस मिट्टी में रहते थे। इस मिट्टी का उपयोग अपने शारीरिक शुद्धि के लिए स्नान करते थे। तब उसे समय उबटन के रूप में उनका उपयोग करके शरीर की अशुद्धता को दूर करते थे।

- **बालू भक्षण के रूप में**

जब कभी पेट में गैस कब्ज व अमल पित्त की अधिक समस्या बढ़ जाती है। तब उससे निजात पाने के लिए बालू भक्षण का विधान बताया गया है। बालू भक्षण बड़ी से बड़ी कब्ज जैसी असाध्याय रोगों को भी आसानी से ठीक करने का काम करती है।

- **मिट्टी बर्तन उपयोग के रूप में**

मिट्टी का उपयोग हम मिट्टी के बर्तनों के रूप में कर सकते हैं। प्राचीन समय में उन्हें मिट्टी के बर्तनों में खाना खाया जाता था मिट्टी के बर्तनों में ही पानी पिया जाता था तथा मिट्टी के बर्तन व घड़े में जल को एकत्र करके उसे शुद्ध कर लिया जाता था । इसलिए अधिक से अधिक हम मिट्टी का उपयोग बर्तन के रूप में भी कर सकते हैं।

7.6 मिट्टी की पट्टियां

मिट्टी तैयार करने की विधि

मिट्टी पट्टियों को तैयार करने से पहले हम मिट्टी को तैयार करने की विधि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे । क्योंकि मिट्टी की पट्टी बनाने से पहले अच्छी स्वच्छ मिट्टी को लेकर के उसको कुछ दिनों तक धूप में अच्छे से सुखाकर उसे पीसकर अच्छे से छलनी में छान लेना चाहिए । जिससे उसके कंकड़ पत्थर दूर हो सके , उस कंकट पत्थर रहित मिट्टी को किसी घड़े या बाल्टी में डालकर 10 से 12 घंटे तक पानी में भिगो देना चाहिए। मिट्टी जिस भी स्थान से ली गई हो वह कम से कम 1 से 2 फीट गहरी मिट्टी लेना चाहिए। फिर मिट्टी को सुखाने के पश्चात चलने के पश्चात उसे जब हम बाल्टी में 10 से 12 घंटे के लिए भिगो देते हैं। तब इस मिट्टी में जल की मात्रा का अनुपात सही होना चाहिए। मिट्टी ना अधिक गीली हो ना अधिक सुखी हो ना रोड़ी बनी हुई हो। मिट्टी प्रॉपर तरीके से भीग जानी चाहिए। मिट्टी का उपयोग लाने से पहले रात में भिगो दिया जाए तो सबसे ज्यादा अच्छा माना गया है। रात में भीगने के बाद प्रातः काल उठकर उसे मिट्टी को अच्छी तरह से निकलकर स्वच्छ बर्तन में रख लेना चाहिए तत्पश्चात उसे मिट्टी को पट्टी के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए। आइए हम मिट्टी पट्टी के बारे में आगे जानकारी प्राप्त करते हैं।

मिट्टी पट्टी अनेक प्रकार की बनाई जाती है। वह शरीर के अंगों व रोगों के आधार पर बनाकर उपचार के रूप में प्रयोग की जाती है। लिए हम मिट्टी की पत्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

- **उदर की मिट्टी पट्टी**

उदर की समस्याओं जैसे गैस बनना, अपच, भूख न लगना कब्ज या पेट में जलन होना या मूत्र संस्थान से संबंधित कोई अन्य परेशानी होना, उदर में दर्द होना । इसके उपचार में उदर की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। इससे नाभि के चार अंगुल ऊपर तथा नाभि से चार अंगुल नीचे तक के भाग को मिट्टी की पट्टी बनाकर उदर भाग पर रख दिया जाता है । इससे उदर से संबंधित सभी प्रकार रोगों से लाभ पाया जाता है।

समयावधि। 15 से 30 मिनट

सावधानियां।

गर्भवती महिलाओं को उदर की मिट्टी पट्टी का प्रयोग निषेध बताया गया है। इसलिए गर्भावस्था के दौरान माताओं को उदर की मिट्टी पट्टी नही करनी चाहिए।

- **कमर की मिट्टी पट्टी**

कमर की समस्याओं के लिए कमर की मिट्टी पट्टी का प्रयोग काफी लाभदायक माना गया है। इसके लिए मिट्टी पट्टी से संबंधित लकड़ी का फ्रेम या फाइबर का फ्रेम जो उपलब्ध हो उसमें से उदर की पट्टी की तरह कमर के भाग की मिट्टी पट्टी बना ली जाती है। फिर रोगी को पेट बल स्वच्छ स्थान पर लिटा कर उसके कमर भाग पर मिट्टी की पट्टी रख दी जाती है। जिससे कमर का दर्द कटि शूल की समस्या एवं कटि प्रदेश की सभी प्रकार की पीड़ाओं से छुटकारा मिलता है।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

ऑपरेशन वाले स्थान पर नहीं करना चाहिए । हड्डी के क्षतिग्रस्त होने पर।

- **छाती की मिट्टी की पट्टी**

छाती से संबंधित या हृदय से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं से निजात पाने के लिए छाती की मिट्टी की पट्टी का उपयोग किया जाता है । जब अस्थमा, ब्रोंकाइटिस या

हृदय से संबंधित उच्च रक्तचाप या हृदय शूल आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। साथ ही साथ जिनका स्वास लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय में मौसम के अनुसार गर्म या ठंडी मिट्टी की पट्टी का विधान बताया गया है । ये सारी चिकित्साएं योग्य चिकित्सक के निर्देशन में ही करना चाहिए । इसलिए मिट्टी की पट्टी का सावधानी से उपयोग करके उच्च स्थल पर मिट्टी की पट्टी रखकर रोगों को दूर किया जा सकता है।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

जीर्ण अस्थमा वाले व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए हृदय के ऑपरेशन वाले व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए श्वास से पीड़ित गंभीर रोगियों को नहीं करना चाहिए

- **गले की मिट्टी पट्टी**

गले की समस्याओं को दूर करने के लिए गले की मिट्टी पट्टी का विधान बताया गया है। इसमें गले के आकार की मिट्टी की चौड़ी पट्टी बनाकर गले के स्थान पर रख दी जाती है। जिससे थायराइड टॉन्सिल आदि की समस्या दूर हो जाती है।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

गले का ऑपरेशन हुआ हो या गले की हड्डी बढ़ी हुई हो या गले के कैंसर से पीड़ित व्यक्ति को नहीं करना चाहिए।

- **कान की मिट्टी पट्टी**

कान की मिट्टी पट्टी के लिए सर्वप्रथम कानों बंद करके दोनों कानों की आकार की गोल आकार की मिट्टी की पट्टीयां बनाई जाती हैं। और बारी–बारी से दोनो कानो पर मिट्टी पट्टी को रख दिया जाता है। जिससे कान का बहना, कम से सुनाई ना देना , बहरापन, कान का दर्द होना, कान में अधिक मल भर जाना है, आदि सभी समस्याएं दूर हो जाती है।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

मिट्टी कानों में ना भरे इसके लिए पहले से ही रुई से कानों को ढक कर रखना चाहिए। यदि कान का ऑपरेशन किया गया हो तो ऐसी अवस्था में कान की मिट्टी पट्टी का निषेध बताया गया है।

- **मस्तिष्क की मिट्टी पट्टी**

मानसिक विकार में मस्तिष्क की मिट्टी पट्टी का उपयोग किया जाता है। जब माइग्रेन की समस्या हो, नींद ना आए, सिर भारी–भारी लगे , चक्कर आना आदि की समस्याओं से निजात पाने के लिए मिट्टी की पट्टी को रोटी आकार में बनाकर मस्तिष्क पर रख दी जाती है। 15 से 30 मिनट रखने के पश्चात उसे हटा लिया जाता है । और मस्तिष्क को स्वच्छ गीले कपड़े से साफ कर लिया जाता है इस मिट्टी पट्टी से मस्तिष्क से संबंधित सभी समस्याएं दूर होती हैं।

समयावधि 15 से 30 मिनट

- **मेरुदंड की मिट्टी पट्टी**

पीठ दर्द या मेरुदंड से संबंधित किसी भी शिकायत के उपचार के लिए रीड के आकार की चार अंगुल चौड़ी दो अंगुल मोटी और मेरुदंड की लंबाई के आकार की मिट्टी पट्टी बना ली जाती है। फिर उसे रोगी के पृष्ठ भाग पर पूरे मेरुदंड भाग पर मिट्टी की पट्टी रख दी जाती है। मौसम के अनुसार मिट्टी की पट्टी का तापमान गर्म या ठंडा रखा जा सकता है। मिट्टी की पट्टी से निश्चित रूप से कमर से संबंधित, सर्वाइकल से संबंधित साथ ही साथ पीठ दर्द से संबंधित समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है।

समयावधि 15 से 40 मिनट

सावधानियां

जिन व्यक्तियों ऑपरेशन हुआ हो या रीड की हड्डी टूटी हुई हो या रीड में गंभीर चोट या फैक्चर हुआ हो उन व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए।

- **जोड़ो या घुटनों की मिट्टी पट्टी**

जब हाथ पैरों के जोड़ो में व घुटनों में गठिया इसकी समस्या बढ़ जाती है। उस दौरान घुटनों के जोड़ो में दर्द होने लगती है। इस प्रकार की अर्थराइट इसकी समस्या से निजात पाने के लिए घुटनों की मिट्टी पट्टी का विधान बताया गया है। इसके लिए घुटने के आकार की गोल मिट्टी की पट्टी बना ली जाती है। या सीधे तौर पर मिट्टी को गीला करके घुटने के चारों तरफ लगा लिया जाता है। 15 से 40 मिनट

रखने के पश्चात फिर उस मिट्टी को हटा लिया जाता है । इस प्रकार मिट्टी की पट्टी घुटने से संबंधित सभी प्रकार के विकारों को दूर करने का काम करती है।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

घुटनों के ऑपरेशन के दौरान या चोट लगने के दौरान या घटने की हड्डी टूटने की अवस्था में इसका उपयोग नहीं किया जाता।

- ## आंखों की मिट्टी पट्टी

आंखों की समस्याओं जैसे आंख का न दिखना, आंख से कम दिखाई देना, दूर दृष्टि दोष, निकट दृष्टि दोष, रतौंधी या आंखों में अधिक पित्त का बनना आदि की समस्याओं से निजात पाने के लिए आंख की मिट्टी पट्टी का विधान बताया गया है । जब आंखों में जलन महसूस होने लगती है । उस जलन को मिटाने में भी मिट्टी की पट्टी बहुत ही लाभकारी प्रतीत होती है। इसलिए दोनों आंखों के आकार की मिट्टी पट्टी बनाकर आंखों को किसी कॉटन या कपड़े से ढक कर उसके ऊपर मिट्टी को रख दिया जाता है। 15 से 30 मिनट रखने के पश्चात उसको हटा लिया जाता है। और आंखों के अच्छे से सफाई कर ली जाती है। इससे आंखों से संबंधित सभी समस्याएं दूर होती हैं।

समयावधि 15 से 30 मिनट

सावधानियां

आंखों का ऑपरेशन हुआ हो , कोई एलोपैथिक दवाइयां चल रही हो या चोट लगी हो। अधिक सूजन की अवस्था में आंखों की मिट्टी पट्टी नहीं देना चाहिए।

पंजों, तलवों की मिट्टी पट्टी

हाथ पैरों के पंजों व तलवों की मिट्टी का उपयोग नेत्र विकार को दूर करने आंखों की दर्शन शक्ति का विकास करने पैरों की दहशक्ति को शांत करने उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए की जाती है इसके लिए मिट्टी की पट्टी तलवों के आकार की बना ली जाती है फिर व्यक्ति को लेटा कर उसके तलवों में लगा

दी जाती है और समय 20 से 40 मिनट रखने के पश्चात उसको फिर पांव से निकल जाती है और पांव को स्वच्छ व साफ गीले कपड़े से साफ कर दिए जाते हैं।

समयावधि 25 से 40 मिनट

सावधानियां

- निम्न रक्तचाप के रोगियों को नहीं देनी चाहिए ।
- कफ रोग जैसे सर्दी, जुकाम, सांस, दमा की तीव्र अवस्था में पट्टी नहीं देनी चाहिए।
- जोड़ों में सूजन की अवस्था में यह नहीं देनी चाहिए।

7.7 मृतिका स्नान या मृदा स्नान

पृथ्वी तत्व की चिकित्सा के अंतर्गत मृदा चिकित्सा जो पंक स्नान व रज स्नान के रूप में भी काफी प्रचलित है। प्राचीन समय में लोग दंगल का आयोजन करते थे तो खुले खेत की स्वच्छ मिट्टी में दंगल जैसी प्रक्रिया अपनाते थे। उसके माध्यम से जो धूल रूप में मृदा होती थी । वह शरीर पर लगती थी जिससे शरीर की उष्णता को शरीर को उचित बनाए रखती थी। और शरीर से विभिन्न प्रकार की विजाती द्रव्यों को भी निष्कासन करने के काम में आती थी । शरीर की मांसपेशियों को हष्ट पुष्ट व स्वस्थ बनाए रखने में मृतका स्नान काफी लाभकारी मानी गई है । साथ ही साथ जब शरीर में फोड़े , फुंसी , खाज , खुजली आदि की समस्याएं उत्पन्न होती हैं तो उन त्वचीय समस्याओं को दूर करने के लिए मृतिका स्नान बहुत ही उपयोगी मानी गई है । मृतिका स्नान को दो रूपों में किया जाता है पंक स्नान तथा रज स्नान।

1. रज स्नान

पंक स्नान काफी प्रचलित है इसमें सर्वप्रथम स्वच्छ मिट्टी या खेतों की मिट्टी को बारीक करके कंकड़ पत्थर से रहित करके दंगल के स्थान पर पूरी तरह से बिखेर देते हैं। एक दंगल स्थान के रूप में बना लेते हैं । और उसी में बालू लेकर अपने शरीर पर मर्दन करते हैं। कई लोग तो उसी में कुश्ती के माध्यम से पंक को शरीर पर लगाते हैं और कुश्ती, व्यायाम और शारीरिक योगाभ्यास भी करते हैं। शरीर पर की गई मर्दन रज को शरीर पर कुछ समय के लिए रख देते हैं। उसके पश्चात उसे साफ करके और शरीर को पानी से नहला करके धुल दी जाती है। यह रज स्नान शरीर की अनावश्यक गर्मी को भी बाहर करती है। साथ ही साथ त्वचा के रोम कूपों को भी खोलती है। और शरीर के विजाती द्रव्यों का निष्कासन

करने के भी काम आती है। साथ ही साथ त्वचा के ऊपरी परत को पूरी तरह से स्वच्छ व निर्मल बनाने का काम भी करती है। और सूर्य के ताप को शरीर की त्वचा को प्रभावित होने से भी बचाती है।

समयावधि 45 से 60 मिनट

सावधानी

- क्षतिग्रस्त स्थान एवं कटे स्थान व जले स्थान पर रज स्नान नहीं करना चाहिए।
- आंख, कान , नाक और मुख के अंदर रज नही जानी चाहिएं।
- रज कंकर रहित व स्वच्छ होनी चाहिए। रज में किसी प्रकार से विषाक्त पदार्थ नहीं होने चाहिए और बहुत ही बारीक रज होनी चाहिए।

2. पंक स्नान

पंक स्नान मृदा चिकित्सा में महत्वपूर्ण चिकित्सा में से एक है जिसमें पंक स्नान करने के लिए साफ कंकड़ पत्थर से रहित स्वच्छ मिट्टी को लेकर के उसे 10 से 15 दिनो तक धूप में सुखाकर छलनी से अच्छे से छानकर कंकड़ पत्थर को अलग कर ले। फिर स्वच्छ मिट्टी को अधिक मात्रा में जल मिलाकर उसे भिगो दें । जिस प्रकार मिट्टी की पट्टी बनाने के लिए मिट्टी को रात भर भिगो देते हैं । उसी प्रकार स्नान करने से एक दिन पूर्व मिट्टी को किसी बर्तन में रात भर भिगो देना चाहिए । 10 से 12 घंटे भीगने के पश्चात उस मिट्टी को बाल्टी या किसी बड़े बर्तन में अच्छे से घोलकर रोगी को निर्वस्त्र करके पूरे शरीर पर लेप के माध्यम से लगाना चाहिए। बालों से लेकर पैर तक पूरी तरह से उसे गीली मिट्टी से स्नान कर ले मिट्टी ना ज्यादा पतली हो ना ज्यादा सुखी हो मिट्टी इस प्रकार हो जो पूरी तरह से शरीर की त्वचा पर अच्छे से चिपक सके । पंक स्नान करते समय रोगी को निर्वस्त्र करके पूरे शरीर पर पंक स्नान कराया जाता है । फिर उसे पंक स्नान करने के बाद धूप में बिठा दिया जाता है। मिट्टी सूख जाने के पश्चात पुन पंक स्नान कराया जाता है। और पुनः धूप में बैठाया जाता है। यह क्रिया 30 से 60 मिनट तक कराई जा सकती है । फिर उस रोगी को ठंडे गर्म मौसम के अनुकूल पानी से नहलाकर पूरे शरीर को सूखे तौलिए या कपड़े से पानी को साफ कर देना चाहिए । पंक स्नान की क्रिया को नदियों व तालाबों के किनारे भी किया जा सकता है। नदियां व तालाबों के किनारे की मिट्टी स्वच्छ और काफी शुद्ध पाई जाती है । जिसका जल स्तर कभी घटता है कभी बढ़ता भी है वह कीचड़ बन जाती है । पंक स्नान का सबसे महत्वपूर्ण लाभ हमारे त्वचीय रोगों में किया जाता है। यूं कहें कि पंक स्नान को करने के लिए कई विधियां भी बताई गई हैं। एक विधि में तो हम मिट्टी को स्वयं घर पर गिला करके शरीर में एक लेप के रूप में उसे लगा ले और उसके अलावा नदियां व तालाबों के किनारे जाकर हम मृदा स्नान कर सकते हैं । तीसरा है कि मनुष्य के

बराबर का गड्ढा खोदकर उसमें हल्का सा पानी भर के उसमें पंक बना ले और व्यक्ति को उसी में एक से डेढ़ घंटे के लिए बिठा दें इस प्रकार से पंक स्नान कराया जाता है।

समयवधि 20 से 45 मिनट

सावधानियां

- पंक स्नान में उपयोग की जाने वाली मिट्टी साफ सुथरी व कंकड़ पत्थर से रहित होनी चाहिए
- मिट्टी ना ही अधिक सुखी और ना ही बहुत ही ज्यादा गिली होनी चाहिए
- मिट्टी का तापमान वातावरण व मौसम के अनुसार रहनी चाहिए
- गर्मियों में कम समय अधिक समय तथा सर्दियों में कम समय पंकस्नान कराया जाना चाहिए
- कटे–फटे स्थान पर मिट्टी का सीधे तौर पर संपर्क नहीं करना चाहिए।

लाभ

मिट्टी में रेडियम तत्व पाया जाता है। जो जल के साथ संपर्क होने पर स्थापित होता है। यह रोगनाशक शक्ति को बढ़ाता है। सभी प्रकार के रोगों को आसानी से खींच लेता है । पंक स्नान से जहरीले जीव जंतुओं के काटने पर उनके विश को अवशोसित करने का कार्य करता है । गठिया व चर्म रोगों में विशेष लाभकारी है। पाचन संस्थान के रोगों जैसे कब्ज, पेट दर्द, गैस, पेप्टिक अल्सर आदि की समस्याओं में काफी लाभकारी है। सर दर्द, कमर दर्द में पंक स्नान काफी लाभकारी प्रतीत होता है। शरीर की सूजन व शरीर की अनावश्यक बढ़ी हुई गर्मी को पंक स्नान काफी अच्छे से अवशोसित कर लेता है । साथ ही साथ तंत्रिका तंत्र की अनियमितता की क्रिया नियमित्त करने का काम तथा रक्त संचार को शुद्ध करने का काम पंक स्नान के द्वारा होता है।

7.08 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. विभिन्न प्रकार के विषों का उपचार करने में कौन सी मिट्टी का उपयोग किया जाता है?

अ. लाल मिट्टी

ब. काली मिट्टी

स. गेरू मिट्टी

द. मुल्तानी मिट्टी

प्रश्न– 2. सौंदर्य प्रसाधन में उपयोग की जाने वाली मिट्टी कोन सी है?

अ. पीली मिट्टी

ब. काली मिट्टी

स. मुल्तानी मिट्टी

द. बालू मिट्टी

प्रश्न– 3. मिट्टी में कौन सा गुण पाया जाता हैं?

अ. कठोरता

ब. यांत्रिक

स. जीवनी शक्ति

द. सभी

प्रश्न– 4. कब्ज निवारण में मिट्टी का उपयोग किस रूप में किया जाता है। है?

अ. उदार की मिट्टी पट्टी

ब. बालू भक्षण

स. अ ब दोनो

द. रज स्नान

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. सिर दर्द और माइग्रेन जनित रोगों में मस्तिष्क की मिट्टी पट्टी उपयोगी मानी गई है।

प्रश्न–6. मुल्तानी मिट्टी नेपाल में पाई जाती है

7.09 सारांश

अतः इस प्रकार उपरोक्त सभी कथनों से स्पष्ट होता है कि मृदा हमारे जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है। पांच तत्वों में सबसे भारी तत्व को माना गया है । पृथ्वी तत्व में सभी अन्य चार तत्व भी सम्मिलित होते हैं। अतः इस तत्व को विभिन्न विधियों से ग्रहण किया जा सकता है। इसको आहार के रूप में हम फल, फूल, सब्जियां, अनाज को ग्रहण करके उपयोग कर सकते हैं । मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करके और मिट्टी के घरों में रहकर के ,मिट्टी की पट्टियों का उपयोग करके , मिट्टी का लेप और पंक स्नान और रज स्नान के रूप में मिट्टी के सभी गुणों को अपने जीवन में हम उपयोग कर सकते हैं। मिट्टी की पट्टी ठंडी व गर्म मौसम के अनुसार पट्टियों का उपयोग करके हम आंख , कान, गला, सिर ,पैर, घुटने , कमर,

मेरुदंड आदि से संबंधित सभी रोगों से निजात हम पा सकते हैं। इसलिए पृथ्वी तत्व की यह चिकित्सा अत्यंत लाभकारी है। इसका प्रयोग बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। किसी अच्छे और योग्य प्राकृतिक चिकित्सा निर्देशन में ही मृदा चिकित्सा का उपयोग करना चाहिए यह अत्यंत सरल और बिना खर्च की सर्वशुलभ चिकित्सा में से मृदा चिकित्सा है। जिसका बहुत ही अच्छे और सकारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 ब. काली मिट्टी

प्रश्न –2 स. मुल्तानी मिट्टी

प्रश्न –3 द. सभी

प्रश्न –4 स. अ ब दोनो

प्रश्न –5. सत्य

प्रश्न–6. असत्य

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विधियों पर प्रकाश डालिए।
2. पृथ्वी तत्व चिकित्सा हेतु मिट्टी की पट्टी बनाने की विधि एवं सावधानिया लिखिए।
3. पंक स्नान एवं रज स्नान को विस्तार से लिखिए।
4. शरीर के विभिन्न अंगों की मिट्टी पट्टी बनाने की विधि, लाभ एवं सावधानिया लिखिये।

7.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक चिकित्सा, राम गोपाल शर्मा, प्रभात पेपर बैक, नई दिल्ली।

2 सरल प्राकृतिक चिकित्सा, डा० ओ० पी० सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।

3.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डा० राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर ।

4. गायत्री महाविज्ञान, आचार्य श्रीराम शर्मा, अखंड ज्योति प्रकाशन, आगरा उत्तर प्रदेश।

5. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, डा0 नागेन्द्र कुमार नीरज, नारायण प्रकाशन, जयपुर।

इकाई – 8 सूर्य प्रकाश का महत्व, सूर्य स्नान , विभिन्न रंगों का चिकित्सीय प्रयोग।

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 अग्नि तत्व का अर्थ

8.4 सूर्य प्रकाश का महत्व

8.5 सूर्य स्नान

8.6 विभिन्न रंगों का चिकित्सीय प्रयोग

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना

अग्नि तत्व पांच तत्वों में से प्रमुख तत्वों के अंतर्गत आता है। अग्नि से ही इस संसार की समस्त क्रियाशीलता का जन्म हुआ है । जिस प्रकार शरीर में पृथ्वी, जल , अग्नि, वायु , आकाश सभी पांच तत्व मिलकर के पूरे शरीर का निर्माण करते हैं। और उसके माध्यम से शरीर की सभी क्रियाएं चलती हैं । उसी प्रकार से अग्नि तत्व सभी पाक क्रियाओं की जननी है। अग्नि से ही सभी वस्तुएं क्रियाशील होती हैं । अपनी क्रियाओ को जन्म देती है। अग्नि तत्व शरीर की उष्णता को बनाए रखने में उपयोगी है। मानव के शरीर में जब उष्णता, ऊर्जा अधिक होती है । जिसके माध्यम से वह कार्य करने में सक्षम हो पता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को क्रियाशील बनाए रखने में अग्नि तत्व बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इस अग्नि तत्व की साधना हम सूर्य स्नान , धूप सेंक, के माध्यम से कर सकते हैं। क्योंकि अग्नि का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य को माना गया है। सूर्य के प्रकाश में अनेकों प्रकार की अल्ट्रावायलेट किरण में पाई जाती हैं। उन

किरणों से हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के औषधीय लाभ भी मिलते हैं। क्योंकि सूर्य के प्रकाश में अनेको प्रकार की तरंगे पाई जाती हैं । जो भूमि पर पढ़कर अनेकों प्रकार के खनिज लवणों का उत्पादन भी करती हैं । इसलिए सूर्य हमारे लिए बहुत जी उपयोगी माना गया है। यदि सूर्य ना हो तो इस संसार की रचना तथा क्रियाशीलता , पेड़ , पौधे , मानव तथा जीव जंतु सभी की जीवन रचना संभव नहीं हो पायेगी । इसलिए सूर्य तत्व हमारे जीवन के लिए सबसे बड़ा उपयोगी माना गया है। हमारी समस्त क्रियाओ का संचालन समस्त विजाती द्रव्यों का निष्कासन और शरीर की क्रिया प्रक्रिया और वृद्धि का संचालन भी अग्नि तत्व से होता है।

8.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हम अग्नि तत्व के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे ।
- सूर्य की स्नान क्या है? उसकी विधि क्या है ?
- उससे होने वाले सभी प्रकार के लाभों से अवगत हो पाएंगे ।
- अग्नि तत्व की चिकित्सा के अनेकों प्रकार तथा अग्नि तत्व का उपयोग अपने जीवन में किन–किन विधियों के माध्यम से कर सकते हैं ? उन सभी की जानकारी इस इकाई के अंतर्गत प्राप्त करेंगे।

8.3 अग्नि तत्व का अर्थ

यह सर्व विदित है की संपूर्ण जलवायु मंडल पर मानव जीवन निर्भर करता है। यदि इस वायुमंडल में किसी एक तत्व की अधिकता या कमी हो जाती है। जिसके कारण उसका प्रभाव व्यक्ति के संपूर्ण शरीर पर पड़ता है। यदि शीत ऋतु में अग्नि की कमी आ जाती है। तो व्यक्ति के शरीर में सर्दी, जुकाम, खांसी , बहुत सारी नाना प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। यदि वही अग्नि तत्व ग्रीम ऋतु में अधिक बढ़ जाती है। तो व्यक्ति को लू लग जाना शरीर पर अनेकों प्रकार के त्वचिय रोग खाज, खुजली हो जाना, बालों को पकने लगना, असमय में ही शरीर पर झुरियां पड़ने लग जाती हैं । और विभिन्न प्रकार के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इसलिए अग्नि तत्व मानव जीवन में बहुत ही उपयोगी माना गया है। यह मानव जीवन में निम्न दो रूपों में पाया जाता है। एक जिसे हम जठराग्नि कहते हैं । दूसरा जिसे वैश्वानर जो विश्व की समस्त क्रिया , प्रजा को पूरी तरह से संचालित करके उसे प्रकाशित करने की क्रिया प्रक्रिया को बनाए रखने उपयोगी होती है। ऊर्जा यह सूर्य से उत्पन्न होती है। इन सभी प्रकार की अग्नियों से व्यक्ति की दैहिक व प्राकृतिक सभी प्रकार की क्रियाएं संचालित होती हैं। आयुर्वेद में अग्निया कुल 13 प्रकार

की बताई गई है । जिन में पंचभूत अग्नि , सप्त धातु अग्नि और जठराग्नि को प्रमुख माना है। सभी अग्नियों में जठराग्नि सबसे श्रेष्ठ है। जो शरीर की भोजन प्रणाली को संचालित करती है। उसके साथ–साथ में जितने अंग अवयव है। उनकी क्रियाशीलता को अग्नि तत्व ही बनाए रखने में सहायक है। जिस अंग की क्रियाशीलता या अग्नि तत्व की कमी आ जाती है। वह अंग धीरे–धीरे निष्क्रिय होकर अपना कार्य करना बंद कर देता है और प्राणी वहीं से विभिन्न प्रकार के रोगों का शिकार हो जाता है और जिससे उसे नाना प्रकार के रोगों का भोग करना पड़ता है।

8.4 सूर्य प्रकाश का महत्व

जैसा कि हम जानते हैं । की अग्नि प्रकृति में सूर्य के रूप में सबसे अधिक पाई जाती है। क्योंकि सूर्य ही संसार की सबसे बड़ा अग्नि तत्वों का स्रोत है। जिसे संसार की आत्मा भी कहा गया है। व्यक्ति अग्नि तत्व से सूर्य से अपने आरोग्य की प्रार्थना भी करता है सामान्यत पृथ्वी को हम अपनी माता के रूप में पूजते हैं। उसे स्वीकार करते हैं । उसे पर उपजाने वाला अन्न को ग्रहण करके अपने जीवन शैली को चलते हैं । इस प्रकार सूर्य को हमारी संस्कृति में सबसे बड़ा माना गया है। इसलिए कहा गया है यज्ञ पिता गायत्री माता पिता अर्थात सूर्य जो वास्तव में से संसार की एक पिता की भांति सब पर एक समान दृष्टि रखकर सब की रक्षा और उनकी पालन पोषण की व्यवस्था भी सूर्य करता है। वास्तव में सूर्य ही संसार को उत्पन्न करने वाला है क्योंकि सृष्टि के सभी पदार्थों का मूल सूर्य ही है। पृथ्वी और सूर्य दोनों के बीच चंद्रमा उपस्थित है किंतु इन तीनों की प्रक्रिया से ही दिन रात की प्रक्रियाएं पूर्ण होती हैं । और उसी के आधार पर प्रकृति अपने नए–नए तरह–तरह के फल, फूलों, अनाजों को उत्पन्न करती है । जिसे मानव खाकर अपने जीवन को संचालित करता है। संसार में पाए जाने वाले विभिन्न पदार्थ जैसे सोना, चांदी, जस्ता, तांबा, लोहा, हीरा, मणि, नीलम आदि धातु सूर्य की किरणों से ही चमकते हैं। अर्थात सूर्य की किरने में अल्ट्रावायलेट किरणें पाई जाती है जो पृथ्वी पर टकराती हैं । जिनसे अभ्रक , जस्ता सोडियम , रेडियम , मैग्नीशियम, पोटेशियम , कैल्शियम, पदार्थ का उत्पन्न होना सूर्य का ही परिणाम है। सूर्य के प्रकाश से पेड़ों में फल फलते हैं। विभिन्न प्रकार की औषधियां उत्पन्न होती हैं। सूर्य के प्रकाश से ही पेड़ पौधे अपना भोजन प्रकाश संश्लेषण की सहायता से प्राप्त करते हैं । और यदि सूर्य ना हो तो किसी प्रकार की औषधि व फसलों की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए सूर्य इस संसार का सबसे बड़ा ऊर्जा का स्वरूप माना गया है । जो संपूर्ण विष्व को चलाने में सहायक है।

सूर्य प्रकाश का उपयोग हमारे दैनिक जीवन में अनेकों प्रकार से प्राप्त होता है। जो हमें प्रातः काल ताजी धूप के रूप में मिलता है। जिससे व्यक्ति को विटामिन डी की प्राप्ति होती है । और उसी के साथ संपूर्ण जगत को प्रकाश के रूप में मिलता है। उस प्रकाश से पशु, पक्षी ,संपूर्ण जगत अपनी दैनिक दिनचर्या की शुरुआत करता है। इसलिए वेदों में सूर्य को सबसे उपासनीय और पूजनीय माना गया है।

क्योंकि सूर्य के प्रकाश से ही जीव जगत और वनस्पतियों सभी फलित होती हैं। इसके प्रकाश के माध्यम से सभी पशु पक्षियों का पोषण होता है। स्वयं एक ऐसी कुंजी है। जो संपूर्ण जगत को विकसित करने का काम करती है। संपूर्ण जगत में वृद्धि विकास सक्रियता और स्वस्थ को बनाए रखने में सूर्य तत्व सबसे लाभकारी है। मानव अपने जीवन का पोषण दो तरह से करता है । एक तो सीधे तौर पर सूर्य के प्रकाश के माध्यम से दूसरा खाद्य पदार्थ व जल वायु के माध्यम से प्रथम स्थिति में मनुष्य जब प्रातः काल सूर्य की प्रत्यक्ष रोशनी के संपर्क में आता है। तो उसकी किरणें संपूर्ण शरीर में एक आभा के रूप में उत्पन्न होती है। और जितनी देर तक व्यक्ति सूर्य के प्रभाव में रहता है। उतने ही समय में संपूर्ण किरणें शरीर की क्रियाशीलता को बनाकर शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में लाभकारी है।

द्वितीय स्थिति में जब हम प्रकृति में खेतों में फल, फूल, अनाज , पेड़ पौधों को लगाते हैं। तब सूर्य के प्रकाश से साग सब्जियों की उत्पत्ति होती है और उसी के माध्यम से सूर्य के प्रकाश की किरणों से हर उत्पन्न होता है उस आहार को मनुष्य ग्रहण करके सूर्य तत्व का अपने जीवन में लाभ लेता है मानव की सभी प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति या मानव जीवन की वृद्धि उसके अंदर दबे या सभी प्रकार के नाना प्रकार के नकारात्मक प्रवृत्तियों को दूर करने में सूर्य तत्व सबसे लाभकारी माना गया है। इसीलिए हमारी भारतीय संस्कृति में कहा गया है। नित्य सूर्य का ध्यान करेंगे अपनी प्रतिभा प्रखर करेंगे।

8.6 सूर्य स्नान

अग्नि तत्व हेतु सूर्य के प्रकाश का सेवन हम अनेक प्रकार से कर सकते हैं। दिन प्रतिदिन की जिंदगी में हम अपने खान–पान आहार के माध्यम, रहन–सहन के माध्यम तथा विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों के माध्यम से सूर्य के प्रकाश को हम अपने जीवन में लाभ लेते हैं। हम अन्य विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

- सूर्य में घूमने से।
- दैनिक सूर्य स्नान।
- सूर्य स्नान।
- सूर्य दर्शन।
- सूर्य नमस्कार।
- सूर्य उपासना।
- सूर्य किरण से साथ धूप में तेल मालिश करना ।
- सूर्य के प्रकाश में पानी भरकर स्नान करना।

- रंगों के माध्यम से सूर्य की चिकित्सा करना।
- रंगों का ध्यान के माध्यम से सूर्य के प्रकाश को ग्रहण करना।
- सूर्य भेदी प्राणायाम के माध्यम से।
- अग्निसार की क्रिया के माध्यम से सूर्य तत्व की प्राप्ति करना ।
- चक्र पर ध्यान के माध्यम से सूर्य के प्रकाश का सेवन करना ।
- विभिन्न रंगों के कपड़ों व पर्दों आदि का प्रयोग करके सूर्य के प्रकाश का उपयोग करना।
- विभिन्न रंगों के फलों, सब्जियों आदि का प्रयोग करके सूर्य के प्रकाश को ग्रहण करना।
- पानी, मिश्री, तेल, दूध, शक्कर आदि का सूर्य की किरणों से ऊर्जित ,अवशोषित करके आहार के रूप में ग्रहण करके सूर्य के तत्व को अपने जीवन में उपयोग करना।

सूर्य स्नान सूर्य स्नान की अनेकों विधियां हैं जो निम्नलिखित हैं

साधारण धूप स्नान

सप्त किरण स्नान या धूप स्नान इसे साधारण धूप स्नान के नाम से जाना जाता है। सूर्य की सप्त रश्मियों को जब अपने शरीर पर धारण करते हैं। तो उसे साधारण धूप स्नान कहा जाता है। सूर्य में लाल, नारंगी , हरी, नीली एवं बैंगनी किरणें पाई जाती है इन किरणों से सूर्य युक्त है । इन सप्त किरणों को एकत्रित होने से एक श्वेत रंग की उत्पत्ति होती है। इन किरणों में रोग को नष्ट करने वाली अद्भुत शक्ति पाई जाती है। अंग्रेजी में सन ऑफ बाथ के नाम से जाना जाता है क्योंकि सूर्य में अनेकों रोगों को दूर करने की बात बताई गई है। प्राचीन समय में हिप्पोक्रेट्स ने जब प्राकृतिक चिकित्सा की उत्पत्ति की तब लोगों को विभिन्न प्रकार के सूर्य स्नानों के माध्यम से रोगों को दूर किया करते थे सर्दी के मौसम में सामान्यत सभी धूप में बिना कपड़ों के बैठते हैं। और अपने शरीर की धूप सिकाई भी करते हैं। और आनंद भी लेते हैं । परंतु रोगी को उचित लाभ पहुंचाने के लिए विशेष रीति नियमों के माध्यम से सूर्य स्नान कराया जाना चाहिए ।और इसमें सावधानियां को भी ध्यान रखना चाहिए।

साधारण शरीर से सभी कपड़ों को हटाकर के प्रातः कालीन स्वर्णिम धूप का सेवन करना चाहिए या धूप स्नान सर्दियों के दिनों में 1 से 2 घंटे तक किया जा सकता है। परंतु गर्मियों की दिनों में इसे 15 से 45 मिनट तक करना चाहिए।

सावधानी

- उच्च रक्तचाप के रोगियों को नहीं करना चाहिए।
- माइग्रेन से संबंधित रोगियों को पित्त बढ़ने की अवधि में नही करनी चाहिए।

- चक्कर आने की स्थिति में नहीं करना चाहिए।
- धूप स्नान के समय सिर को छाया में रखना चाहिए
- सिर को गले रुमाल या हल्के केले के पत्ते से ढक कर रखना चाहिए।
- धूप स्नान से पूर्व सिर मुख गर्दन की अच्छी तरह से सफाई कर लेना चाहिए।
- बहुत अधिक तेज धूप में धूप स्नान नहीं लेना चाहिए ।
- इसके लिए प्रातः काल का समय सबसे उपयोगी और सर्वोत्तम बताया गया है ।
- धूप स्नान का समय रोज धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए प्रारंभ में थोड़ी देर करना चाहिए। किंतु धीरे–धीरे उसे समय सीमा अधिक करनी चाहिए।
- धूप स्नान लेते समय कुल समय के चारों भाग करके पीठ ,पेट ,दाहिनी करवट, बाई करवट लेट कर समान रूप से धूप लेनी चाहिए।
- महिलाओं को कम से कम कपड़े पहनकर या पतला कपड़ा लपेटकर धूप स्नान करना चाहिए।
- स्नान करने के स्थान पर तेज हवा का आवागमन नहीं होना चाहिए।
- स्थान खुला होना चाहिए स्वच्छ होना चाहिए ताकि शरीर को धूप पर्याप्त मात्रा में मिल सके ।
- सूर्य स्नान के बाद अच्छी तरह ठंडे जल से नहा कर शरीर के प्रत्येक अंग की अच्छे से सफाई कर लेनी चाहिए।
- स्नान के तुरंत बाद भोजन नहीं करना चाहिए कम से कम 1 से 2 घंटे के अंतराल में भोजन करना चाहिए।

धूप स्नान के तुरंत बाद शरीर में स्फूर्ति का अनुभव होना अच्छा माना गया है। लेकिन यदि व्यक्ति को किसी प्रकार के कष्ट की अनुभूति होती है। तो अगले दिन धूप स्नान नहीं करना चाहिए।

सूर्य प्रकाश के सेवन की विधियां

नियमित रूप से बिना समय व्यतीत किए रोज करना चाहिए। यदि ऐसा करने से व्यक्ति को पूर्ण लाभ की प्राप्त होती है सर्दी के धूप स्नान का समय 12:00 से 2:00 के बीच का होना चाहिए। जबकि गर्मी के दिनों में प्रातः 8:00 बजे से 10:00 बजे और साय 3:00 बजे से 5:00 बजे के बीच का समय उचित माना गया है। हृदय रोगी एवं बुखार से पीड़ित व्यक्तियों को सूर्य स्नान नहीं करना चाहिए । उचित रूप से स्नान करने से शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है एवं हड्डियां मजबूत भी होती हैं। और शरीर को पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी की प्राप्ति होती है और विभिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति मिलती है और शरीर की कमजोरी दूर होती है

• पसीना लाने के लिए धूप स्नान

सूर्य स्नान का या दूसरा तरीका है इस स्नान के लिए धूप में बैठने से पूर्व गर्म पानी पी लेना चाहिए गर्म पानी पीने के काम से कम 25 से 35 मिनट में ही शरीर में पसीना निकलने लगता है। यदि व्यक्ति को पसीना नहीं आता है तो ऐसी स्थिति में 30 से 40 मिनट तक धूप में रहना चाहिए। फिर धूप स्नान के पश्चात ठंडे जल से स्नान करके आवश्यक गर्म पानी पीने के कम से कम 25 से 35 मिनट में ही शरीर में पसीना निकलने लगता है यदि व्यक्ति को पसीना नहीं आता है तो ऐसी स्थिति में 30 से 40 मिनट तक धूप में रहना चाहिए। यदि फिर भी किसी प्रकार से पसीना नहीं निकलता है। तो धूप स्नान को वहीं पर रोक देना चाहिए। धूप स्नान के पश्चात ठंडे जल से स्नान करके सिर को स्वच्छ जल से साफ करके भीगे तोलिया से आवश्यक पानी को साफ कर लेना चाहिए और रोगी को विश्राम के लिए भेज देना चाहिए और बीच–बीच में गर्म पानी पिलाते रहना चाहिए।

इस स्नान का मुख्य उद्देश्य होता है शरीर के रोम को खोलने एवं शरीर पर पसीना लाना।

• रिकली का धूप स्नान

धूप की प्रचलित विधियों में रिकली का धूप स्नान बहुत ही प्रचलित माना गया है। इस विधि में पूरे शरीर से कपड़े उतार कर धूप स्नान कराया जाता है। साथ ही सिर में किसी प्रकार से कोई कपड़ा छतरी की छाया में रखा जाता है। यूं कहें कि सर को किसी छाया में रखते हैं या स्नान सूर्य उदय के तुरंत बाद लिया जाता है। इस विधि में स्नान से पहले दिन रोगी के पैरों को ही धूप में अच्छी तरह से स्नान कराया जाता है। दूसरे दिन पूरे पैरों को धूप में स्नान कराया जाता है। इस प्रकार अगले दिन जांघों तक से अंगों के भाग को धूप स्नान कराया जाता है। फिर अगले दिन कमर के भाग तक के शरीर को स्नान कराया जाता है। फिर धीरे–धीरे शरीर के नाभि भाग फिर सीने के भाग तक को स्नान कराया जाता है। पहले दिन रोगी को पांच–पांच मिनट के बाद तीन–तीन मिनट के हिसाब से कुल 9 मिनट तक स्नान करना चाहिए। दूसरे दिन इसी प्रकार 5 मिनट के बाद 6 मिनट तीसरे दिन प्रति बार 9 मिनट इसी प्रकार 33 मिनट करके कल 9 मिनट तक बढ़कर दसवें दिन में 3 बार आधे आधे घंटे करके प्रयोग करते हैं इस प्रकार 15 दिन में तीन बार स्नान लिया जाता है। हर स्नान के बाद रोगी को 5 मिनट के लिए छाया में रखा जाता है उसके बाद पसीना आने पर पूरे शरीर को गीले तौलिया से अच्छी तरह से उसको साफ कर देते हैं । फिर रोगी को आराम के लिए भेज देते है।

• कूने का धूप स्नान

सूर्य स्नान की विधियों में कूने का धूप स्नान बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है। इस विधि में शरीर के समस्त कपड़ों को हटाकर रोगी को धूप में लेटाया जाता है। शरीर को सिर से लेकर पैर तक के भाग पर

किसी प्रकार का कोई कपड़ा नहीं रखते हैं । कमर के भाग को केले की पत्तियों व आयुर्वेदिक औषधियां के पत्तों से ढक देते हैं। यदि पत्तियां नहीं मिलते हैं। तो उसे स्थान को गीले कपड़े से ढक देते हैं। इस प्रकार करने से शरीर गर्म हो जाता है और शरीर से विषाक्त पदार्थ पसीने के माध्यम से बाहर निकलने लगते हैं। आधे घंटे से लेकर डेढ़ घंटे तक व्यक्ति को यह धूप स्नान कराया जाता है। धूप स्नान के बाद कमरे में ठंडा पानी से सर के सर से पैरों तक नहला देते हैं । और तुरंत उसे सूखे तौलिए से पानी को अच्छी तरह से साफ कर देते हैं। इसके पश्चात कटि स्नान या मेहन स्नान भी कराया जाता है। यह रोगी की अवस्था पर निर्भर करता है। शरीर में पुनः गर्मी के लिए धूप में टहलने आदि क्रियाएं भी कराई जाती हैं । कूने का यह धूप स्नान काफी अच्छा माना गया है जो विभिन्न प्रकार के रोगों में काफी लाभदायक प्रतीत होता है।

- **भीगी चादर के माध्यम से धूप स्नान**

उत्तर पूर्वी भारत में छठ पूजा के दौरान माताएं पानी में भी कर सूर्य अर्ग को दान करती हैं। दौरान उनके गीले कपड़ों से सूर्य की प्रकाश की किरणें व्याप्त होकर उनके शरीर को स्वस्थ वर्धक बनाए रखती हैं । इस स्नान में बिना कपड़ों के रोगी को धूप में लेटने के लिए भेज दिया जाता है । और उसके बाद शरीर को सुखे कंबल या चादर से गले तक ढक दिया जाता है। जब शरीर गर्म हो जाता है तब सूखे कपड़े को हटाकर एक दूसरे कपड़े को ठंडा पानी में भिगोकर उसके शरीर को ढक दिया जाता है । सिर पर गीला तोलिया और चेहरे पर छाया बनाए रखते हैं जांघों के नीचे के हिस्से को सूखे कपड़ों से ढक दिया जाता है। यह स्नान 20 से 40 मिनट तक लिया जाता है । यह स्नान के अंत में मेहन स्नान अवश्य करना चाहिए।

- **जीवनी बढ़ाने हेतु धूप स्नान**

यह स्नान कमजोर निर्बल रोगियों की जीवनी शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य किया जाता है। इसके लिए रोगी को निर्वस्त्र करके प्रातः कालीन स्वर्णिम धूप में बिठाकर सूर्य के ध्यान को करने के लिए कहा जाता है। सूर्य की सप्त किरणों को अपने शरीर के अंग प्रत्यङ्गो में अनुभव करने की क्रिया को कहा जाता है। इस प्रकार ध्यानात्मक सूर्य स्नान के रूप में भी जीवनी शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से यह स्नान बहुत ही लाभकारी और प्रभावी मानी गई है।

- **बुद्धि को प्रखर व तेजस्विता बनाने वाला धूप स्नान**

गायत्री परिवार के संस्थापक पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने बुद्धि को प्रखर व तेजस्वी बनाने के लिए सूर्य के ज्ञान को बहुत महत्वपूर्ण बताया है उन्होंने कहा है नित्य सूर्य का ध्यान करेंगे अपनी प्रतिभा

प्रखर करेंगे। अर्थात सूर्य के ध्यान से हमारे शरीर की नकारात्मक विचारधारा दूर होती है। और सूर्य की तरह प्रकाशित सकारात्मक हमारे जीवन में बढ़ती है। जिससे हमारी स्मृति पावर का विकास होता है। और हमारे अंदर चिंता तनाव जैसी विभिन्न प्रकार की मानसिक बीमारियां दूर होती है और हमारी बुद्धि प्रखर और तेजस्वी बन जाती है।

इस स्नान के लिए प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में सूर्य उदय से पहले उठकर नित्य क्रिया कर्म करके खुले स्वच्छ स्थान पर बैठ जाना चाहिए। जब लाल रंग का सूर्य निकलने लगे तब सूर्य की लालिमा को अपने चेहरे पर और शरीर में अनुभव करते हुए सूर्य के गुणों को ध्यान किया जाता हैं।

ठंडी पट्टी के साथ धूप स्नान

इस स्नान में रोगी को एक टब में पानी से गीली पट्टी लगा़ दी जाती है उस पर रोगी को निर्वस्त्र रूप से लेटा दिया जाता है उसके बाद उसे टब के ऊपर फिर से पुनः रोगी को ढकते हुए एक गीली चादर बिछा दी जाती है । और उसे तब को धूप में रख दिया जाता है। धूप की जब प्रकाश किरणे उसे पर पड़ती है। तब धीरे–धीरे वह चादर सूखने लगती है । उसकी उष्णता रोगी के शरीर में प्रवेश करती है। जिससे विभिन्न प्रकार के रोग दूर होते हैं और शरीर में स्वास्थ्यवर्धक लाभ मिलता है।

- **रंगीन शीशे के बीच से करने को गुजर कर सूर्य स्नान**

इस विधि में रोगी के शरीर के सभी कपड़ों को हटाकर उसे एक कांच की बनी प्रिज्म के अंदर बैठा दिया जाता है। या कांच के टब में उसे ढक दिया जाता है। उसके ऊपर से सूर्य के प्रकाश में इस कांच के बॉक्स को रखा जाता है। ऐसा बॉक्स जिसमें रंगीन कांच लगे होते हैं। यदि रंगीन कांच ना मिले तो उसे कांच के बने हुए बॉक्स के अंदर रोगी को लिटा दिया जाता है और फिर कांच के ऊपर विभिन्न प्रकार के रंगीन झिल्लियों व कपड़े को ढक कर सूर्य के रंगीन करने के द्वारा शरीर की चिकित्सा की जा सकती है।

8.6 विभिन्न रंगों का चिकित्सीय प्रयोग

सूर्य की किरणों को जल में समाहित करके विभिन्न रंगों के द्वारा चिकित्सा की जाती है । इसमें सर्वप्रथम कांच की रंगीन बोतल लेकर के या सादी बोतलों के ऊपर रंगीन सेलोफिन पेपर से चारों तरफ अच्छे से लपेटकर उसके अंदर जल को भर दिया जाता है। उस जल को कम से कम 8 घंटे धूप में रख दें और उसके बाद उसे पानी का प्रयोग रोगी के रोगों के आधार पर किया जाता है जिन रंग का जल तैयार करना हो उसे रंग के सेलोफिन पेपर का उपयोग किया जाता है। जिसे लाल रंग का प्रयोग करना है तो लाल रंग के सेलोफिन पेपर का प्रयोग करें और उसके पश्चात रोग के अनुसार उसे जल का दवा के रूप

में ग्रहण करना चाहिए। अलग–अलग प्रभाव पड़ता है अलग–अलग रोगों में अलग–अलग रंग अपना प्रभाव दिखाकर उसे रोगों को दूर करने का काम करते हैं। इसलिए सूर्य में सभी प्रकार के सप्तरंग समाहित हैं।

- **तेल में सप्त रंगों को सूर्य के प्रकाश द्वारा समाहित**

जिस प्रकार जल में सूर्य की करने को बोतलों के माध्यम से प्रवेश कर कर जल को तैयार किया जाता है उसी प्रकार रंगीन कांच की बोतलों में सरसों का तेल या नारियल का तेल को 30 दिन प्रतिदिन 8 घंटे धूप में रख देना चाहिए। दिन में 8 घंटे रखने के पश्चात उसे अच्छे से ठंडा जगह रख देना चाहिए उसके बाद फिर उसे अगले दिन धूप में रख देना चाहिए। इस प्रकार 30 दिन बाद उसे तेल को मालिश के रूप में उपयोग करके रोगों से पीड़ित स्थान पर तेल का उपयोग करके रोगों से निजात पाया जाता है।

- **चीनी मिश्री आदि में सूर्य की सप्त रंगों को समाहित करके उपयोग में लाना**

जिस प्रकार तेल और जल को रंगीन बोतलों में भरकर सूर्य के प्रकाश में कलर युक्त बोतलों के माध्यम से विभिन्न रंगों से युक्त प्रकाश की किरणों से जल और तेल को समाहित करके उपयोग किया जाता है। उसी प्रकार चीनी मिश्री आदि को भी हम कांच के बर्तनों में भरकर उसके ऊपर कलर युक्त सेलोफिन पेपर लगाकर धूप में रखकर उसका उपयोग कर सकते हैं धूप में 20 से 30 दिन रखना चाहिए उसके बाद रोगों आधार पर चीनी मिश्री का दूध के साथ आहार के रूप में सेवन करना चाहिए इससे बहुत ही प्रभावी लाभ मिलते हैं।

विभिन्न रंगों का चिकित्सीय प्रयोग

- **लाल रंग**

सूर्य के प्रकाश में सबसे अधिक 80% केवल लाल किरणें पाई जाती हैं । जो इंफ्रारेड किरणे होती हैं। जो प्राणी के स्नायु मंडल को क्रियाशील बनाकर उनको उत्तेजित करके शरीर की क्रियाशीलता अंगों की क्रियाशीलता बनाए रखती है साथ ही सभी प्रकार की रक्त कोशिकाओं को निर्माण करने में काफी लाभकारी है । लाल रंग की किरणें गर्मी को बढ़ाती है रक्तहीनता, गठिया, एनीमिया, पीलिया आदि रोगों में लाल रंग काफी लाभकारी माना गया है। लाल रंग का उपयोग करने से हमारे शरीर में ऊर्जा तेजस्विता प्रखरता बनी रहती है।

- **नारंगी रंग**

यह रंग शरीर में गर्मी को बढ़ाता है। इस रंग में लाल और पीले रंग का सम्मिश्रण पाया जाता है ।इसका उपयोग जीर्ण रोगों में किया जाता है। यह रंग अधिकतर अस्थमा, स्वास रोग, कब्ज, नसों की बीमारियां ,लकवा आदि की व्याधियों में उत्तम औषधि के रूप में माना गया है। मूत्राशय की शिथिलता की किरणें जल में प्रवाहित करके इसका उपयोग बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। जिसके आश्चर्य जनक लाभ भी प्राप्त होते हैं।

- **पीला रंग**

पीला रंग बुद्धि विवेक एवं ज्ञानवर्धन के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना गया है यह रंग मस्तिष्किय विकारों को दूर करने पाचन शक्ति को बढ़ाने तथा पेट संबंधी सभी रोगों को दूर करती है यह रंग मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस भाग को पूरी तरह से उत्तेजित करके उसकी क्रियाशीलता को बढ़ाती है जिससे मस्तिष्क के अग्रभाग में होने वाली सभी प्रकार की क्रियाएं संचालित होती हैं और व्यक्ति के बुद्धि का विकास होता है जिस व्यक्ति में चिड़चिड़ापन, गुस्सा, क्रोध,नकारात्मकता सभी प्रकार के मानसिक रोग दूर होते हैं मानसिक रोगों में पीला रंग बहुत ही उपयोगी माना गया है हरा रंग यह आंखों तथा त्वचा से संबंधित रोगों के लिए बहुत ही असाध्याय लाभकारी है या भूख को बढ़ाता है जिन लोगों में खुजली, नासूर, चेचक आदि चर्म रोग होते हैं उन सब में हरे रंग का बहुत ही लाभ बताया गया है। यह रंग बहुत ही शीतल होता है जो प्रकृति के गुणों में सबसे प्रिय माना गया है।

- **आसमानी रंग**

यह रंग ठंडक और शांति दायक होता है इससे विद्युत शक्ति की प्राप्ति होती है जब शरीर में गर्मी की अधिकता हो उसे समय इस रंग का प्रयोग करना चाहिए शरीर की गर्मी या उष्णता को दूर करने में यह अधिक लाभकारी है शरीर में उत्पन्न ज्वर, श्वास, सिर दर्द ,अतिसार ,संग्रहणी, मस्तिष्क के रोग, प्रमेह, पथरी व मूत्र विकार आदि सभी में इस रंग का उपयोग बहुत ही लाभकारी माना गया है यह सभी रंगों में श्रेष्ठ है यह शरीर की शीतलता बनाए रखता है शरीर की अनावश्यक गर्मी को दूर करता है तथा रोगों को भी दूर करने में काफी लाभकारी है

- **नीला रंग**

नीला रंग यह शरीर में शांति दायक व ठंडा होता है शरीर की अनावश्यक गर्मी को दूर करता है साथ ही साथ शरीर में बड़े हुए पित्त को भी दूर करता है पित्त के कारण शरीर में बनने वाली गैस से जलन व शरीर पर खुजली, खाज आदि की समस्याओं को दूर करने का काम करता है यह रंग लाल रंग के बढ़ जाने पर मनुष्य में ज्वर, अतिसार, पेट में मरोड़ आदि की समस्याओं को दूर करता है नीला रंग आंखों के लिए बहुत ही लाभकारी है आंखों की जलन को दूर करता है नेत्र रोगों को दूर करने में

लाभकारी है यह नीला रंग दूरदृष्टि दोष तथा निकट दृष्टि दोष दोनों को दूर करने में अधिक प्रभावी माना गया है इसलिए इन सप्त रंगों को स्वस्थ विज्ञान में बहुत ही लाभकारी प्रतीत और बहुत ही महत्वपूर्ण बताया गया है।

बैंगनी रंग यह रंग नीला और लाल रंग के सम्मिश्रण से बना होता है जो रक्त की शुद्ध को बनाए रखना है साथ ही साथ रक्त की शीतलता को भी बनाए रखना है शरीर की अशुद्धियों को दूर करके रक्त को शुद्ध करके सभी प्रकार के अंग अवयवों की रक्षा करना तंत्रिका तंत्र की रक्षा करना आदि कार्य इस रंग के द्वारा होते हैं।

8.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. सूर्य के प्रकाश में कितने प्रकार की किरणें पाई जाती हैं है?

अ. 7 प्रकार

ब. 5 प्रकार

स. 10 प्रकार

द. 12 प्रकार

प्रश्न– 2. कौन से धूप स्नान में कमर को पत्तों से ढक कर स्नान कराया जाता है?

अ. रिकाली का धूप स्नान

ब. कुने का धूप स्नान

स. साधरण धूप स्नान

द. प्रिज्म युक्त धूप स्नान

प्रश्न– 3. बुद्धि विवेक एवं ज्ञानवर्धन के लिए कौन सा रंग सबसे उपयुक्त माना गया हैं?

अ. लाल रंग

ब. पीला रंग

स. हरा रंग

द. सफेद रंग

प्रश्न– 4. कब्ज निवारण में कोन से रंग के युक्त जल का उपयोग किया जाता है। है?

अ. नारंगी रंग

ब. नीला रंग

स. काला रंग

द. पीला रंग

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. गर्मियों के दिनों में तेज धूप और खूब तेज चलती हवा में भी धूप स्नान कराया जा सकता है।

प्रश्न–6. साधारण धूप स्नान प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए जो शरीर के सभी प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण मानी गई है।

8.8 सारांश

अतः इस प्रकार मानव जीवन और प्रकृति के विकास में सूर्य, ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत के रूप में सभी को प्रकाशित करता है। सूर्य के प्रकाश से हमें अग्नि तत्व की प्राप्त होती है। अग्नि तत्व से हमारे शरीर में ऊर्जा, उष्णता बनी रहती है। उसी ऊर्जा के सहारे हम अपने जीवन के दिन प्रतिदिन के सभी क्रियाकलाप और कार्यों को करते हैं। हमारे शरीर में किसी प्रकार से ऊर्जा की कमी आ जाती है। तो हम पूरी तरह से रोग ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए अग्नि तत्व हमारे जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसी अग्नि तत्व से शरीर की पाकक्रिया संचालित होती है। और उसी पाकक्रिया के परिणाम स्वरुप हमारे शरीर के सभी अंग अवयव क्रियाशील होते है। और अन्न, से रस ,रक्त , मांस मेद , अस्थि , मज्जा और शुक्र अर्थात सप्त धातु निर्मित होती हैं। इन धातुओं का निर्माण करने में सप्त धातु अग्नि बहुत उपयोगी है । और इसी के साथ–साथ में जठराग्नि हमारे शरीर की पाचन प्रणाली को सबसे अधिक प्रभावित करती है। जिस पर पाक क्रिया संपूर्ण होती है। उसके साथ–साथ में इस संसार की सभी गतिविधि को चलाने में सूर्य तत्व यूं कहें अग्नि तत्व बहुत उपयोगी है। सूर्य के प्रकाश से ही इस जगत में सभी पेड़, पौधे, फल , फूल, सब्जियां , अनाज, दालें सब उगती हैं और इस सूर्य के प्रकाश से धरती में सभी प्रकार के खनिज लवण उत्पन्न होते हैं। उन खनिज लवण से हमारे शरीर में सभी प्रकार के पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। इसलिए हमारे जीवन के लिए सूर्य से प्राप्त अग्नि तत्व बहुत उपयोगी है। सूर्य तत्व की उपासना साधना की विधि की बात करे तो कई प्रकार से विधि बताई गई है। जिसमें रिकलि का धूप स्नान, कुने का धूप स्नान , साधारण धूप स्नान, तेल में सूर्य की प्रकाश की किरणों को समाहित करके उपयोग करना। जल में सूर्य की करने को समाहित करके उपयोग करना। साथ ही साथ कांच के प्रिज्म के द्वारा शरीर पर सूर्य की किरणों द्वारा सिकाई करना । यह सब के सब हमारे जीवन में सूर्य से प्राप्त अग्नि तत्व को बढ़ाने के काम में आते हैं। सूर्य तत्व में सप्त किरणें बैंगनी, नीला, लाल, हरा, पीला, नारंगी आसमानी, इस सभी रंग हमारे शरीर की सभी क्रियो को संचालित करती हैं। तथा उनमें उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है। इसलिए हमारे शरीर के लिए अग्नि तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण तत्वों में से एक तत्व है। जिसकी पूर्ति हम सूर्य साधना या सूर्य स्नान धूप स्नान के माध्यम से करते हैं।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 अ. 7 प्रकार

प्रश्न –2 कुने का धूप स्नान

प्रश्न –3 ब. पीला रंग

प्रश्न –4 अ. नारंगी रंग

प्रश्न –5. असत्य

प्रश्न–6. सत्य

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अग्नि तत्व द्वारा की जाने वाली चिकित्सा विधियों को विस्तार से वर्णन करें।
2. धूप स्नान को विस्तार से समझाइये।
3. सूर्य किरण चिकित्सा से आप क्या समझते है? इसकी प्रयोग विधियो तथा लाभो का वर्णन कीजिए।
4. रंगों के विभिन्न रोगों के उपचार हेतु विस्तार से वर्णन कीजिए।

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आयुविज्ञान – डॉ० राकेश जिन्दल
2. भारतीय दर्शन की रूप रेखा– हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा.
3. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान डा० शरण प्रसाद
4. अखण्ड ज्योति अगस्त 2002– पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

इकाई –09

वायु का महत्व, वायु का आरोग्यकारी प्रभाव, वायु स्नान

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 वायु तत्व का अर्थ व महत्व

9.4 वायु तत्व का परिभाषा

9.5 वायु का आरोग्यकारी प्रभाव, वायु स्नान

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत प्राकृतिक चिकित्सा में पांच तत्वों के अंतर्गत आने वाले महत्वपूर्ण वायु तत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वायु तत्व हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी है । क्योंकि व्यक्ति जल अन्न के बिना कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है । किंतु वायु के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। क्योंकि वायु ही हमारे जीवन की प्राण शक्ति है। क्योंकि प्राण निकल जाने के बाद मानव जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसलिए वायु तत्व हमारे जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है जो जीवनी शक्ति के रूप में इस संपूर्ण जगत में व्याप्त है । इस इकाई में वायु की साधना उससे होने वाले लाभ उसके प्रयोग विधि आदि की जानकारी तथा उससे रोगों का निदान कैसे किया जा सकता है। यह सभी जानकारी प्राप्त करेंगे । वायु तत्व के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्राणायाम स्वर आदि की साधना कैसे कर सकते हैं इस इकाई के अंतर्गत विस्तार से समझेंगे।

9.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अंतर्गत वायु तत्व से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वायु तत्व का अर्थ एवं परिभाषा का अध्ययन करेंगे ।
- वायु तत्व के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे वायु तत्व से होने वाले लाभों को समझेंगे।
- वायु तत्व की साधना हेतु प्राणायाम की क्रियाविधि और उसकी उपयोगिता के बारे में समझेंगे।

9.3 वायु तत्व का अर्थ एवं महत्व

अभी तक तो पंचतत्व में दूसरा सबसे प्रमुख तत्व है। इसे संस्कृत में वात के नाम से जाना जाता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में इस हवा भी कहते हैं। जो व्यक्तियों की नासिका के माध्यम से ग्रहण की जाती है। जो प्राणों को श्वसन क्रिया के माध्यम से संपूर्ण शरीर को जीवित व क्रियाशील बनाए रखने के लिए ली जाती है । वायु मनुष्य के लिए ही नहीं यह संपूर्ण प्रकृति जगत के लिए जीवन का आधार है। संपूर्ण जगत में यह विद्यमान होने के साथ–साथ यह सर्व सुलभ है। क्योंकि इसे आहार के रूप में भी माना गया है। जिस प्रकार स्थूल शरीर के लिए अन्न , रस आदि की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार प्राणमय कोश को बनाए रखने के लिए वायु बहुत अवस्यक मानी गई है।तथा जीवन की प्रक्रिया सभी अंग अवयवों का संचालन करने के लिए वायु तत्व की भी काफी आवश्यकता होती है। अन्न, जल आदि खाद्य पदार्थों के बिना तो कुछ दिन तक जीवित रह जा सकता है । किंतु वायु के बिना एक सेकंड भी जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। वायु को रसायन रूप से जाना जाता है इसमें कई प्रकार की गैस है मिली रहती हैं। परंतु ऑक्सीजन और नाइट्रोजन अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। वायु में नाइट्रोजन लगभग 78 तथा ऑक्सीजन की प्रतिशतता 21 पाई जाती है। बाकी 1 प्रतिशत अन्य गैसे भी होती हैं जीवधारी श्वसन क्रिया के द्वारा वायु को ग्रहण करते हैं। और फेफड़ों के द्वारा ऑक्सीजन को अवशोषित करके उसे रक्त के माध्यम से पूरे शरीर में भेज दिया जाता है। और वही ऑक्सीजन युक्त रक्त सभी अंगों की क्रियाशीलता को बनाकर उन्हें सुचारू रूप से संचालित करने का काम करता है । बाकी अन्य गैसे वायु के रेचक करने पर बाहर निकल जाती हैं।

वायु के आधार पर ही मानव की जीवन प्रक्रिया निर्भर करती है। जिस व्यक्ति की जितनी आयु होगी वह उसके प्राणों पर निर्भर करती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को लंबी गहरी सांस के साथ वायु को ग्रहण करना चाहिए। जिससे शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक हो और व्यक्ति की आयु दीर्घ आयु हो उसका जीवन काफी लंबा होता है। वायु को इस अर्थ में हम जान भी सकते हैं। कि संसार

में जितने भी प्राणी है । उन सभी प्राणियों में जितना दीर्घ उनका स्वसन प्रक्रिया होती है उतने ही उनका जीवन काल भी होता है । इस कथन को हम एक उदाहरण से जान भी सकते हैं। यदि मनुष्य से लेकर के सूक्ष्म जीव तक भी कोई व्यक्ति या जीव है। तो वह 1 मिनट में कम से कम 16 से 18 बार सांस लेता है तथा 80 से 120 वर्ष के लगभग अपना जीवन होता है। परंतु यदि एक कुत्ते के स्वसन को देखा जाए तो वह 1 मिनट में कम से कम 35 से 50 बार सांस लेता है। और उसका जीवन लगभग 14 से 20 वर्ष तक की आयु प्राप्त होती है। इसी प्रकार से जिस व्यक्ति की वायु श्वसन क्रिया बहुत ही लघु होगी उसका प्राण अधिक होगा और प्राण जिसका अधिक होगा। उसकी जीवनी शक्ति अधिक होगी और उसका जीवन दीर्घायु होगा। इसलिए व्यक्ति को लंबी गहरी सांस के साथ स्वसन क्रिया करनी चाहिए।

श्वसन क्रिया नासिका के द्वारा ली गई सांस जो फेफड़ों के माध्यम से छानकर रक्त में ऑक्सीजन को मिलाकर के आगे बढ़ाने वाली प्रक्रिया है । वहां तक सीमित नहीं रहती है। स्वसन प्राणी के संपूर्ण शरीर में होता है। प्रत्येक शरीर की एक–एक कोशिका स्वसन क्रिया करती है । वह ऑक्सीजन को ग्रहण करती है। और शरीर के विजाती द्रव्य को बाहर निकाल कर शरीर को स्वस्थ बनाने का भी काम करती है । वायु को प्राण भी कहते हैं। इस तथ्य की पुष्टि अनेक रूपों में मिलती है। प्राण से ही प्राणमय कोष बनता है । और उसी से आत्मा संपूर्ण शरीर में विचरण करती है। आत्मा की रक्षा भी प्राणमय कोश से होती है।

वायु को प्राण भी कहा जाता है। इस ज्ञान की जानकारी अनेक ग्रंथो में भी देखने को मिलती है। वायु चिकित्सा सम्बन्धी अनेक धर्म ग्रंथों ऋग्वेद में इस प्रकार पाई गई है।

"वाल आ वातु भेषज शंभु मर्याभुवोहदे । प्राण आर्याष तारिषत् ।।,

अर्थात् वायु वह प्राण है। जो हमे दीर्घ आयु प्रदान करती है। तथा यह वायु हमारे हृदय में शान्ति , निश्चलता उत्पन्न करके सुख प्रदान करती है। इसी प्रकार ऋग्वेद में कहा गया है,

"यददो वात ते गई मृतस्य निधिर्हितः ततोनो देहि जीवसे ।,,

अर्थात् हे वायु ! आपके भीतर जो अपूर्व अमृत का भण्डार है। इस अमृत का कुछ अश हमे दीर्घ जीवन के लिए प्रदान करें।

इसी तरह के अनेक उदाहरण हमारे धर्म ग्रंथो, प्राचीन साहित्यों में देखने को मिलते है।

प्राण शब्द की व्युत्पति गति संचालन तथा कम्पन से की जाती है। प्राण से सम्पन्न अथवा पूर्ण होकर ही सब प्राणियों तथा जीवों में जीवन का संचार करता है। प्राण के होने पर सृष्टि और जीवन , जगत की कल्पना की जा सकती है। वायु के बिना जीवन और जगत की कल्पना में कर पाना मुश्किल है। इसलिए

सभी जीव प्राणवायु के पर आश्रित है, प्राण के रूप में ईश्वर सम्पूर्ण जगत में फैला हुआ है। जहा श्वास प्रश्वास की क्रिया है। सभी देवतागण भी इस प्राण रूपी उर्जा की उपासना करते है।

प्राणो ह सूर्यचन्द्रमाः प्राणमाडु प्रजापतिम् ।।

अतः प्राण की उपमा सूर्य और चन्द्रमा के गुणो से की गई है और उसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अर्थात् प्राण ही प्रेरक सूर्य है। जो आनन्ददायक चन्द्रमा है, उसे ही मनुष्यों का प्रजापति भी कहा गया है। प्राण उर्जा संपूर्ण आकाश मण्डल में चारों ओर फैली हुई है। उसे ही प्राण सभी प्राणियों के लिए सुखकारी हितकारी, वृद्धि कारक माना गया हैं ।तथा शरीर को आरोग्य एवं हृदय को आनिन्दत करता है। इसी प्रकार वायु के द्वारा ही प्राकृतिक की धरोहर अन्न, वनस्पति, औषधि और सभी को जीवन प्राप्त होता है।

ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्व प्राण जिन्वसि ।। (अर्थवेद)

अर्थात् प्राण से ही औषधिया उत्पन्न होती है। और विकसित भी होती है। अर्थवेद में प्राण और आयुष्य की प्राप्ति का साधन कहा गया है तथा आयु को प्राण और प्राण को ही आयु के रूप में भी बताया गया है। जो इस प्रकार है–

आयु प्राण प्राणो वा आयु." (अर्थवेद)

" प्राण आयु प्रदान करने वाली है। जिस जीव में जितना अधिक व दीर्घ प्राण होगा उतना ही दीर्घ जीवन व आयु वह प्राप्त करता है।

याज्ञवल्य ऋषि ने प्राणवायु को शक्ति की उपमा दी है। उसी प्रकार

सर्वमेव त आयुर्न्ति ये प्राण ब्रह्मोपासते।"

(तैति.उप.बहा)

अर्थात जो जगत ब्रह्म की उपासना प्राण रूप में करते है। वे पूर्ण जीवन अर्थात् दीर्गायु को प्राप्त होते है।

इस प्रकार की कई रचनाये हमारे वेद–उपनिषदो में देखने को मिलती है। "जिससे प्राण की सर्वव्यापी विश्वरूपता, दिव्य प्रतिरूपत्ता सर्वशक्तिशाली, सर्वता एकतत्वता विविधरूपता आदि रूपो में देखने को मिलता

है। पंच प्राण–मनुष्य में जीवन शक्ति का आधार है। प्राण परम तत्व है। यह प्राण पांच प्रकार के होते है। पांच प्राण शरीर के भिन्न– भिन्न अंगों में रहकर उनको गति प्रदान करते है।

प्राणांडणना ध्यान उदान प्रमानाउन उत्येतत्सर्व प्राण एवं।

प्राण शक्ति से परिपूर्ण वायु है जो प्राण अपान, समान, उदान और व्यान पांच रूप से शरीर में व्याप्त है। यदि प्राणों के प्रकार का वर्णन की बात की जाए तो तैतरीय उपनिषद में कहा गया है :–

प्राणो व्यानोपान उदानः समानः ।
इसी प्रकार तैतरीय उपनिष्द में –
प्राणोडपानः समान उदानो व्यानाः ।
तथा प्राणोडपानो व्यान समान उदानः

उपरोक्त प्रकार से पंच प्राणो के प्रकारो का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान का विस्तार निम्न प्रकार से प्रस्तुत है।

जैसे तन्त्रागय में वर्णन मिलता है

प्राणोडपानः समानष्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मोडथ कृकरो देवदत्तो धनञजयः ।।

उपरोक्त दस प्रकार की वायु शरीर की सभी नाडियो में प्राण के रूप में संचरण करते है। प्रथम पंक्ति में मुख्य प्राण तथा दूसरी पंक्ति में उपप्राणों का उल्लेख किया गया है।

उपनिषद के अनुसार :–
दषद्वारपुरं देहं दषनाडीमहापथम् । दषभिर्वायुभिर्व्याप्तम..

इस तरह ये सभी दशो द्वारो वाले शरीर में दस वायु के रूप में व्याप्त भी है।

शाण्डिल्य उपनिषद के अनुसार :–

प्राणोपानसमानोदानव्याना नागकूर्मकृकरदेवदत्तधनअजया
एते दषवायव ऐर्वासु नाडीषु चरन्ति।

ब्रह्मविद्या उपनिषद के अनुसार :–

कर्मेन्द्रियैर्युक्ता क्रियाशक्तिबलोघता ।

पञ्चज्ञानेन्द्रियैर्युक्ता ज्ञानशक्तिबलोघता ।।

अर्थात पंच उपप्राण के कार्य हमारे शरीर की पाचो कर्मन्द्रियों के कार्यों से सम्बन्धित है।तथा इसके द्वारा 'ज्ञान शक्ति और क्रियाशक्ति क्रियाशील होती है। इन पाचो उपप्राणो के विशेष कार्य भी बताए गए है।

- नाग उपप्राण के कारण डकार उत्पन्न होती है । चैतन्य का विकास होता है।
- कूर्म उपप्राण के द्वारा पलक झपकना व देखने की क्रिया होती है ।
- कृकल उपप्राण के द्वारा भूख–प्यास आदि के साथ पाक क्रिया भी सम्बन्धित है जो पाचन तंत्र को मजबूत बनाता है।
- देवदत्त के द्वारा जंभाई उत्पन्न होती है।
- धनजय पूरे शरीर में फैला रहता है तथा मृत्यु के पश्चात शरीर को सड़ा गला कर उसे प्रकृति में विलीन कर देता है। यह पांचो प्रकार के उपप्राण मुख्य प्राणों की अनुपस्थिति में सम्पूर्ण सरीर को संतुलित बनाए रखते है।

9.4 वायु तत्व की परिभाषाः–

❖ वायु विभिन्न गैसो का समिश्रण है, जिसमे अनेक प्रकार की गैसे जैसे आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन इत्यादि शामिल है।

❖ शरीर के लिए उपयोगी प्राकृतिक गैसो का मिश्रण जिसके द्वारा प्राणी को जीवन प्राप्त करता है। यही प्राण वायु कहलाती है।

❖ वातावरण में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार के गैसो के मिश्रण आक्सीजन कार्बन–डाई आक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक एसिड, आर्द्रता आदि द्वारा बना कवच वायु कहलाता है।

❖ चरक संहिता के अनुसार :– वायुस्तयन्त्रधरः अर्थात् शरीर के तन्त्र, यन्त्र को धारण करने वाले तत्व को वायु कहते है।

❖ शरीर के भीतर संचरण करने वाली प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान तथा पांच उपप्राण, रूप उर्जा ही वायु कहलाते है।

- **पांच प्राण**

पांच प्राणों का उल्लेख वेद,पुराणों, उपनिषदों के साथ–साथ आयुर्वेद में बहुत ही विस्तार पूर्वक बताया गया है। पांच प्राण पूरे संपूर्ण शरीर की क्रियाशीलता को बनाए रखते हैं । और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का विकास करते हैं । और यही पांच प्राण के माध्यम से शरीर पूरी तरह से क्रियाशील होकर गति को प्राप्त होता है । चलिए पांच प्राणों के बारे में हम विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

पांच प्राण निम्नलिखित हैं।

- **प्राण वायु**

पांच प्राणों में सबसे प्रमुख प्राण को माना गया है । जिसका स्थान हृदय को माना गया है । हृदय के समस्त समीप रहने के कारण यह हृदय की क्रियाशीलता को पूरी तरह से संचालित करता है। हृदय से होने वाले सभी प्रकार के रोगों का निराकरण भी इसी प्राण के माध्यम से होता है। जिस व्यक्ति में प्राण वायु की कमी होती है। उसके अंदर घबराहट, चिंता, अवसाद के साथ– साथ निम्न रक्तचाप की क्रियाएं बढ़ जाती है। और व्यक्ति को हृदयघात जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। और इसी प्राण से अन्य चार प्राण संचालित होते हैं। क्योंकि आत्मा की उत्पत्ति प्राणों से मानी गई है। जहा जीवात्मा निवास करती है। आत्मा का स्थान भी हृदय स्थान माना गया है । इसलिए प्राणों में सबसे प्रमुख होने के कारण यह प्राण सबसे उत्तरदाई है और हृदय के सभी कार्यों का संचालन करता है।

- **अपान वायु**

अपान दूसरी प्रमुख वायु है। जिसका स्थान उपस्थ अर्थात गुदा भाग को माना गया है। जो गुदा भाग से लेकर जानू आदि प्रदेशों से संबंधित सभी

क्रियाकलापों को संचालित करता है। इसी की उपस्थिति में प्राणी भी कार्य करता रहता है। यह वायु मलमूत्र तथा शरीर के सभी विजातीय द्रव्यों को निष्कासन करने के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदाई है। साथ ही साथ नपुंसकता बांझपन, बच्चे ना होना, पेट की गड़बड़ियां, मूत्र संस्थान से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं को निजात करने में अपान वायु सबसे महत्वपूर्ण है ।

- **उदान वायु**

उदान प्राण शरीर के कंठ भाग से ऊपर के समस्त अंगों को क्रियाशील बनाता है। जिसमें आंख, नाक, कान जिससे सुनना, देखना ,स्वाद ,लेना स्वास तथा चेहरे की सभी प्रकार की मस्तिष्किय क्रियाकलाप इसी वायु के माध्यम से संचालन होता है । थैलेमस, हाइपोथैलेमस के साथ–साथ पिट्यूटरी और पीनियल ग्रंथि के हारमोंस भी इसी उदान वायु के माध्यम से संबंधित है । थायराइड ग्रंथि को सबसे ज्यादा क्रियाशील बनाने में उदान वायु ही उत्तरदाई है।

- **समान वायु**

पांच प्राणों में समान वायु नाभि के पास पाई जाती है। यह सामान वायु भूख से संबंधित है शरीर की समस्त अग्नियों को प्रदीप्त करने उनको क्रियाशील बनाने तथा शरीर की सभी पाक क्रियाओ का संचालन सामान वायु से होता है। इससे शरीर में भूख लगना तथा सभी प्रकार की अपच संबंधित समस्याओं को दूर करने में सहायक है। इसी से आमाशय, अग्नाशय, यकृत तिल्ली व छोटी आंतों के सभी कार्य संचालित होते हैं।

- **व्यान वायु**

व्यान वायु संपूर्ण शरीर में पाई जाती है। जो शरीर की त्वचा भाग में उपस्थिति रहती है। यह वायु संपूर्ण शरीर के प्रत्येक अंगों तक रक्त के संचालक को पूरी तरह से नियंत्रित करती है। रक्त के सभी कार्यों को अंग प्रत्यङ्गो तक ले जाने तथा प्रत्येक शरीर की क्रिया को समान रूप से आवश्यकता के अनुसार उनका निर्देशित करती है । इस वायु का क्षेत्र संपूर्ण शरीर माना गया है । रक्त संचार उपापचयी क्रियाएं मांसपेशियों का संचालन अस्थियों उपस्थियों एवं संधियों की गतियां आदि सभी के कार्य इसी वायु से निर्देशित होते हैं। अतः इस प्रकार उपरोक्त सभी पांच प्राण जो शरीर की क्रियात्मक इकाई के रूप में शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। उनके साथ–साथ में उपप्राण भी कार्य करते हैं। यदि एक

प्राण कमजोर होता है तो उपप्राण उसको बैलेंस करने का काम करता है। इन पांच प्राणों के साथ–साथ उप प्राण भी रहते हैं। दोनों की उपस्थिति से सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। यदि कोई एक प्राण कमजोर होता है तो दूसरा प्राणों से मजबूत बनाने का कार्य भी करता है।

9.5 वायु का आरोग्यकारी प्रभाव, वायु स्नान

वायु तत्व की शुद्धि के लिए पवन स्नान बहुत महत्वपूर्ण बतलाया गया है। क्योंकि जिन व्यक्तियों में वायु की कमी होती है। उनके अंदर प्राण तत्व की भी कमी पाई जाती है। जब प्राण तत्व कमजोर हो जाता है। तो मनुष्य विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाता है। और बीमार पड़ जाता है। जिससे उसकी जीवन और दिनचर्या पूरी तरह से बाधित होती है। उसकी दिनचर्या से लेकर के सभी प्रकार की क्रियाकलाप बाधित होते हैं। और वह अपने जीवन में प्रगति नहीं कर पता है। और रोग ग्रस्त होकर अपने जीवन के अल्प समय में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए प्रकृति ने हमें वायु जैसे एक महत्वपूर्ण जीवनी शक्ति प्रदान की है । उस जीवनी शक्ति को हम अपने जीवन में धारण करके अपने जीवन को दीर्घ आयु बना सकते हैं। वायु पान की विधियों की बात करें तो वायु साधना अनेक प्रकारों से की जा सकती है । जिनमें योग साधना भी बतलाई गई है।

यदि योग की बात की जाए तो योग में प्राणायाम के माध्यम से वायु साधना की जाती है महर्षि घेरण्य और स्वात्माराम जी ने आठ प्रकार के प्राणायाम बतलाएं हैं । इन प्राणायाम के बहुत ही प्रभावी लाभ देखने को मिलते हैं। जिन में सूर्यभेदी, उज्जयी, शीतली, भस्त्रिका , भ्रमरी ,मूर्छा और केवली / प्लाविनी को प्रमुख माना गया है। इसके साथ–साथ आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने गायत्री महाविज्ञान में प्राणाकर्षण ध्यानात्मक प्राणायाम बताया है जो प्राण तत्व को सबसे अधिक बढ़ाने का कार्य करता है। ऐसे प्राणायाम को करने से हमारे शरीर में वायु तत्व की कमी नहीं रहती है। महात्मा गांधी ने कहा था कि प्रातः कालीन वायु का सेवन हजारों औषधीय के बराबर है। यदि कोई व्यक्ति सुबह प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में उठकर ताजी और ठंडी प्रकृति की वायु का सेवन करता है, तो उसमें किसी प्रकार के रोग नहीं होते हैं। वह हमेशा स्वस्थ और दीर्घ आयु जीवन व्यतीत करता है। विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो प्रातः कालीन की वायु में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत अधिक होती है। और ऑक्सीजन हमारे शरीर के लिए जीवनी शक्ति के रूप में कार्य करती है । ऑक्सीजन हमारे शरीर की समस्त क्रियात्मक इकाई कोशिका की क्रियाशीलता तथा ऊर्जा को प्रयुक्त करने का कार्य भी करती है। इसलिए पवन स्नान मानव जीवन के लिए एक वरदान के रूप में बतलाया गया है। जो प्रकृति के द्वारा प्राप्त होता है। चलिए हम पवन स्नान के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें।

- **पवन स्नान**

वास्तव में पवन स्नान को वायु स्नान के नाम से भी जाना जाता है। इसे अंग्रेजी में एयर बाथ कहते हैं। हमारी साधारण भाषा में ब्रह्म मुहूर्त में भ्रमण करना इसी को पवन स्नान के नाम से भी जाना जाता है । जब प्रातः कालीन सूर्य उदय से पूर्व ठंडी वायु में हल्के कपड़े पहनकर नासिका के द्वारा वायु को ग्रहण करते हैं। और वातावरण में घूमते हैं। इसी को पवन स्नान कहा जाता है। लेकिन यदि इस विधि और विधान से किया जाए तो बहुत ही इसके लाभकारी परिणाम देखने को मिलते हैं। पवन स्नान की विधि के बारे में चर्चा करते हैं। पवन स्नान करने से पूर्व हम कुछ बातों को यदि अच्छे से समझ लें , तो हमारे लिए वह पवन स्नान बहुत ही लाभकारी प्रतीत होगा। पवन स्नान कई प्रकार से किया जा सकता है। बड़े–बड़े शहरों या घने बस्तियों में यदि घूमने की जगह ना हो तो हम अपने कमरे की खिड़कियों को यदि खोलकर अच्छे से रहते हैं और प्रकृति की स्वच्छ वायु का पान करते हैं। तब यह पवन स्नान कहलाता है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं या खुले स्थान पर रहते हैं तब हम हल्के कपड़े शरीर पर डालकर प्रातः कालीन भ्रमण व्यायाम और प्रकृति में विचरण करते हैं। तब यह पवन स्नान कहलाता है। यदि किसी प्रकार से हम बंद कमरे में कूलर एसी व इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से हवा को ग्रहण करते हैं। तब वह पवन स्नान नहीं कहलाता है। इसलिए एयर कंडीशन हवा को नहीं लेना चाहिए। प्रकृति के द्वारा जो प्राप्त स्वच्छ और शीतल वायु है। उसी से पवन स्नान करने से लाभ मिलते हैं।

विधि

पवन स्नान की सामान्य विधि है। सर्वप्रथम प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना चाहिए विस्तार त्यागने के पश्चात हमको पूरी तरह से हाथ पैरों को जल से स्वच्छ करके और शौच आदि के उपरांत प्रातः कालीन सूर्य उदय से 2 घंटे पूर्व से लेकर सूर्योदय के 2 घंटे बाद तक के समय हम वायु स्नान कर सकते हैं शरीर पर हल्के कपड़े को डालकर कम से कम 50 कम से 100 कदम तक प्रतिदिन लंबी गहरी सांस के साथ भ्रमण करना चाहिए। इस प्रक्रिया को पवन स्नान कहते हैं। जिनका किसी प्रकार से वातावरण में चलने फिरने में दिक्कत आती हैं। उनको सामान्यत किसी एक स्थान पर बैठाकर लंबी गहरी सांस के माध्यम से वायु को महसूस करना और वायु को ग्रहण करना चाहिए यह पवन स्नान है।

पवन स्नान हमेशा शुद्ध स्थान में ही करना चाहिए। अशुद्ध स्थान की वायु का सेवन से स्वसन संबंधित दोष उत्पन्न होते हैं ।साथ ही साथ खांसी, जुखाम, सर्दी व फेफड़ों से संबंधित रोग उत्पन्न होकर शरीर दुर्बलता को प्राप्त होता है। इसलिए स्वच्छ स्थान पर पवन स्नान करना चाहिए ।पवन स्नान करने का सबसे आसान तरीका है। हम अपनी क्षमता के अनुसार पवन स्नान का समय निर्धारित कर सकते हैं । टहलते समय दीर्घ लंबी श्वसन करते हुए सामान्य रफ्तार से ना ज्यादा तेज ना ज्यादा धीमे मध्य अवस्था से चलना चाहिए । किसी से किसी प्रकार की कोई बातचीत नहीं करना चाहिए। और ना ही किसी प्रकार से वाद्य यंत्रों का श्रवण करना चाहिए। सिर्फ लंबी गहरी सांस के साथ–साथ प्रकृति की ठंडी–ठंडी वायु को महसूस करना

चाहिए या पवन स्नान है। सर्दी के दिनों में मोटे कपड़ों को पहन कर बाहर घूमना चाहिए। सर्दी लगने की अवस्था में पवन स्नान नहीं करना चाहिए। बुखार,सर्दी, जुकाम या किसी असाध्य रोग से ग्रसित होने पर पवन स्नान नहीं करना चाहिए।

पवन स्नान की सावधानियां

- पवन स्नान हमेशा स्वच्छ साफ वातावरण में करना चाहिए।
- शरीर पर ना अधिक कपड़े न हो और ना ही बहुत ही कम कपड़े हो हल्के कपड़ों में पवन स्नान अति उत्तम माना गया है।
- तेज धूप में पवन स्नान नहीं करना चाहिए।
- तेज चलती ही वायु में पवन स्नान नहीं करना चाहिए। आंधी तूफान जैसी स्थिति में कभी भी पवन स्नान नहीं करना चाहिए।
- सर्दी ,बुखार, अस्थमा के मरीज को भी पवन स्नान से बचना चाहिए।

- जल से भीगे वस्त्र को पहनकर पवन स्नान नहीं करना चाहिए और साथ ही हल्की बारिश जैसी स्थिति में भी पवन स्नान नहीं करना चाहिए।
- पवन स्नान सायं कालीन की अपेक्षा प्रातः काल सबसे उपयुक्त माना गया है।
- पवन स्नान कभी भी बंद कमरे में नहीं करना चाहिए।
- पवन स्नान एयर कंडीशन यंत्रों के द्वारा और कूलर आदि के द्वारा प्राप्त वायु से कभी नहीं करना चाहिए.
- गरम वायु से भी पवन स्नान नहीं करना चाहिए। शीतल हल्की और वातावरण के अनुकूल प्रकृति वायु से ही पवन स्नान करना चाहिए।

पवन स्नान के लाभ

पवन स्नान के लाभ की बात की जाए तो यह शरीर के समस्त अंगों को क्रियाशील बनाकर उन्हें सक्रिय करता है ।शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है ताजगी महसूस कराता है। शरीर से आलस्य प्रमाद को दूर करता है। साथ ही साथ रक्त के संचार को सुव्यवस्थित करता है। और शरीर में रक्त कोशिकाओं की भी वृद्धि करता है। त्वचा को चमक और तेज प्रदान करता है। बेहोशी थकावट को दूर करता है। वात, पित्त और कफ को संतुलित करके शरीर को स्वस्थ बनाए रखना है।

- **प्राणायण के द्वारा वायु साधना**

जिन व्यक्तियों को प्रातः कालीन उठकर टहलने में अनेक समस्याएं आती हैं। उन व्यक्तियों को प्रातः कालीन सभी प्रकार की क्रियाओ से निवृत होकर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुख करके लंबी गहरी सांस को भरना चाहिए और कुछ समय रोक कर फिर धीरे–धीरे सांस को छोड़ देना चाहिए ।यह प्रक्रिया प्राणायाम कहलाती है। इसके द्वारा आश्चर्यजनक लाभ की प्राप्त होती है

।

प्राणायाम में व्यक्ति को स्वास्थ्य की क्रिया ना तेज और न धीमी रखनी चाहिए सामान्य अवस्था में लंबी गहरी सांस लेकर अपनी क्षमता के अनुसार फेफड़ों में भर ले और रोककर कुछ पश्चात उसे छोड़ दे इसी प्रक्रिया को निरंतर करते रहना चाहिए जिसे प्राणायाम के माध्यम से किया जाता है। या योग साधनाओं के अंतर्गत आने वाली प्रक्रिया है । जो हमारे समस्त नाड़ियों को शुद्ध करके हमारे रक्त संचार और अंग अवयवों को पूरी तरह से मजबूत बनाती है। और सभी प्रकार के रोगों को दूर करती है।हमारे योग ग्रन्थों में प्राणायाम का काफी महत्व बताया गया है। प्राणायाम जो जीवनी शक्ति को बढ़ाने के साथ–साथ शरीर को निरोगता प्रदान करने का भी काम करता है। घेरण्य संहिता और हठप्रदीपिका , शिव संहिता आदि ग्रन्थों में प्राणायाम की विस्तृत चर्चा की गई है। जिसे अपना कर व्यक्ति अपने समस्त रोगों को दूर कर सकता है। आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने गायत्री महाविज्ञान में प्रार्थना प्राणायाम की सुगम क्रियाएं बतलाई हैं। जिसमे

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा ।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः ॥46॥

सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली

- **सहित प्राणायाम** जो सागर्भ और निर्गभ अवस्था में बीज मंत्रों के साथ और बीज मंत्र रहित अवस्था में किए जाते हैं ।

- **सूर्य भेदी प्राणायाम** नासिका से श्वास को ग्रहण करना कुछ समय रोकना और फिर बाई नासिका से सांस को धीरे–धीरे करके छोड़ देना यह प्रक्रिया सूर्य विधि प्राणायाम कहलाती है।

- **उज्जाई प्राणायाम** में दोनों नासिका से सांस को धीरे–धीरे कंठ और हृदय को स्पर्श करते हुए कुंभक करते हैं। फिर धीरे–धीरे मुख में प्रचलन उसे करके उसे जालंधर बंद लगाकर रोका जाता है। तत्पश्चात भी धीरे–धीरे स्वास वायु को छोड़ दिया जाता है।

- **शीतली प्राणायाम** में वायु को जिव्हा को गोल करके वायु को पान करना ही शीतली प्राणायाम है । वायु को जिह्वा माध्यम से पान करते हैं। और फिर दोनों नासिका से निकाल देते हैं।

- **भस्त्रिका प्राणायाम** लोहार की धौकनी के समान वायु को दोनों नासिका से समान रूप से उदर में भरना फिर धीरे–धीरे उदर को चलाकर फिर छोड़ देना चहिए ।

- **भ्रामरी प्राणायाम** दोनों कानों को तर्जनी उंगली से बंद करके अर्धरात्रि में जो जीव जंतु झींगुर या जीव जंतु की आवाज होती हैं। उनको श्रवण करने की प्रक्रिया को भ्रामरी प्राणायाम कहा गया है। किंतु हठप्रदीपिका में भ्रमर गुंजन के साथ वायु को पूरक किया जाता है तथा भ्रामरी गुंजन के साथ वायु का रेचक किया जाता है।

- **मन को मूर्छित** करने वाला या मनोंमूर्च्छा प्राणायाम समस्त विषयों को मन से हटाकर मन को निर्मल बनाने वाला आज्ञा चक्र में ध्यान को केंद्रित करके किया जाता है।

- **केवली प्राणायाम** सोहम साधना के माध्यम से किया जाता है। जिसमें वं के साथ जीवात्मा को ध्यान करते हुए पूरक तथा हं मंत्र के साथ रेचक किया जाता है।

प्राणाकर्षण प्राणायाम

यह प्राणायाम प्रातः कालीन किया जाने वाला प्राणायाम है। जो ब्रह्म मुहूर्त में प्रातः काल की समस्त क्रियाओं से निवृत होकर इस साधना के लिए शांति दायक स्वच्छ व खुले वातावरण में आसन या बिछावन बिछा कर या पर सुखासन अथवा पद्मासन की स्थिति में बैठकर मेरुदंड को सीधा और नेत्र बंद करके करना चाहिए। यह प्राणायाम ध्यानात्मक प्राणायाम के अंतर्गत आता है। जो भावनाओं के साथ किया जाता है।

इसमें नासिका के दोनो छिद्रों से स्वास को लेना पूरक किया जाता है।फिर उसे यथा संभव रोक कर उसे फिर पुनः धीरे–धीरे बाहर निकाला जाता है। और श्वास बाहर निकालने के बाद कुछ देर बाह्य कुम्भक करना चाहिए। फिर तुरंत ही

धीरे–धीरे पूरक करके प्राणों को पूरी तरह से फेफड़ों में भर लेना चाहिए और फिर उसे धीरे–धीरे छोड़ देना चाहिए यह क्रिया बारंबार की जाती है। तब यह एक प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम को करते समय ध्यान यह करना है कि समस्त वातावरण में श्वेत बदल चारों तरफ प्राण के रूप में लहरा रहे हैं। वह प्राण हमारी नासिका के माध्यम से हमारे फेफड़ों के अंदर जाकर समस्त शरीर के अंग अवयवों को चमकीला बना रहे हैं । प्रत्येक अंग, अवयव , नस नाड़ियों में वह प्रवेश करके उन्हें निर्मल तेजस्वी बना रहे हैं। ऐसी भावना करते रहना चाहिए और जब स्वास को बाहर निकलते हैं तब यह भाव करना है। कि हमारे शरीर के जितने भी नकारात्मक, विजाती द्रव्य हैं वह काले धुएं के रूप धीरे–धीरे बाहर निकल रहे हैं। यह प्राणायाम बार–बार करने से व्यक्ति की भावनाओं के साथ–साथ व्यक्ति की आचरण में पवित्रता, प्रखरता, शरीर में तेजस्विता उत्पन्न होती है।

9.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. पांच प्राणों में सबसे श्रेष्ठ कौन सा प्राण है?

अ. प्राण

ब. अपान

स. समान

द. व्यान

प्रश्न– 2. पवन स्नान के माध्यम से कौन से तत्व की चिकित्सा की जाती है?

अ. अग्नि तत्त्व

ब. जल तत्व

स. मृदा तत्व

द. वायु तत्व

प्रश्न– 3. वायु तत्व शरीर के कौन से तंत्र से संबंधित है ?

अ. पाचन तन्त्र

ब. स्वसन तन्त्र

स. अस्थि तंत्र

द. उत्सर्जन तंत्र

प्रश्न– 4. बुद्धि विकास के लिए कौन सा प्राणायाम सर्वोत्तम है?

अ. उज्जयी प्रणायाम

ब. शीतली प्रणायाम

स. प्रणाकर्षण प्रणायाम

द. केवली प्राणायाम

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में पवन स्नान करना सर्वोत्तम माना गया है।

प्रश्न–6. जीवनी शक्ति के विकास में प्राणायाम सर्वोत्तम उपाय माना गया है।

9.7 सारांश

अतः इस प्रकार पांच तत्वों में वायु तत्व दूसरा प्रमुख तत्व है जो प्राणी के जीवन का विकास करके उसे दीर्घायु प्रदान करने का कार्य करता है। वायु हमारे शरीर में संपूर्ण अंग अवयव में प्राणों के माध्यम से व्याप्त है। योग ग्रंथो में वायु को प्राण के स्वरूप में बतलाया है। यह प्राण संपूर्ण शरीर में 10 रूपों में व्याप्त है। जो पांच प्राण तथा पांच उपप्राण के रूप में जाना जाता है। जिसमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान प्रमुख है । इसके साथ–साथ नाग, कूर्म , क्रिकल, देवदत्त और धनंजय के रूप में यह सभी प्राण मिलकर संपूर्ण प्राणमय कोष का विकास करते हैं। और जिस से प्राणी की जीवनी शक्ति का विस्तार होता है। जीवन में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण होता है। इसी प्राणों को शुद्ध और संतुलित करने के लिए पवन स्नान की विधि बताई गई है। क्योंकि पवन स्नान से हमारे शरीर में सभी अंगों को ऊर्जा मिलती है । पवन स्नान की बात कही जाए तो प्रातः कालीन स्वच्छ निर्मल शुद्ध वायु

का पान करने की बात कही गई है। जिसे हम प्रातः कालीन ब्रह्म मुहूर्त में उठकर खुली हवा में जाकर प्रकृति के द्वारा बहती वायु को लंबी गहरी सांस के माध्यम से हम अपने शरीर में धारण करते हैं। उसका विस्तार करते हैं। तब यह पवन स्नान कहलाता है। वायु साधना को हम प्राणायाम के माध्यम से भी कर सकते हैं। क्योंकि प्राणायाम हमारे जीवनी शक्ति को विस्तार करने में और अंग अवयवों की क्रियाशीलता को सबसे अधिक बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का योगदान करते हैं। इसलिए पांच तत्वों में सबसे प्रमुख तत्व वायु तत्व है। इसकी साधना निरंतर करती रहनी चाहिए।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 अ. प्राण

प्रश्न –2 द. व्यायु तत्व

प्रश्न –3 ब. स्वासन तन्त्र

प्रश्न –4 स. प्रणाकर्षण प्रणायाम

प्रश्न –5. सत्य

प्रश्न–6. सत्य

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. वायु क्या है? वायु के प्रकारों का विस्तार से वर्णन करे।
2. वायु के महत्व को विस्तार से वर्णन करे।
3.पवन स्नान की विधि का विस्तार से वर्णन करे।
4.प्राणायाम द्वारा वायु सेवन को विस्तार से वर्णित करे।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल डा0 राकेश – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान।
2. आचार्य श्रीराम शर्मा – गायत्री महाविज्ञान ।

2. रोग और योग – डा० स्वामी कर्मानन्द

3. भोजन और स्वास्थ्य डा० ओमकार नाथ।

4. प्राकृतिक आहार के चमत्कार– डा० नन्द किशोर शर्मा।

5. प्राकृतिक चिकित्सा – उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय ।

6. आचार्य श्रीराम शर्मा – पंचकोषी साधना एवं उपलब्धियां।

चतुर्थ खण्ड – अभ्यंग / उपवास

परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा **[** MAYO-106 **]** पाठ्यक्रम का यह चतुर्थ खण्ड है, जिसका शीर्षक अभ्यंग/उपवास चिकित्सा के संदर्भ में बताया गया है, जिसमे। अभ्यंग / उपवास से होने वाली चिकित्सा के बारे परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–10 अभ्यंग चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त व उपयोग।

इकाई–11 अभ्यंग की विधियां व अभ्यंग में प्रयुक्त तेल, विभिन्न रोगों में अभ्यंग का प्रयोग व सावधानियाँ

इकाई–12 उपवास का अर्थ, उपवास के चिकित्सीय लाभ, उपवास सम्बन्धी भ्रामक धारणायें, उपवास के नियम, उपवास के प्रकार–दीर्घ, लघु, पूर्ण, अर्ध, जल उपवास, प्राकृतिक आहार, रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत अभ्यंग का परिचय, सिद्धांत, अभ्यंग की विधियां , अभ्यंग में प्रयुक्त तेल, विभिन्न रोगों में अभ्यंग का प्रयोग के साथ साथ उपवास का परिचय, उपवास के चिकित्सीय लाभ, उपवास सम्बन्धी भ्रामक धारणायें, उपवास के प्रकार, प्राकृतिक आहार, रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार, आदि के विषय में विस्तार पूर्वक जान सकेंगे।,

इकाई – 10 अभ्यंग चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा, सिद्धान्त व उपयोग

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 अभ्यंग चिकित्सा का अर्थ

10.4 अभ्यंग की परिभाषा

10.5 अभ्यंग चिकित्सा के सिद्धांत

10.6 अभ्यंग चिकित्सा के उपयोग

10.7 अभ्यंग चिकित्सा के गुण

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.9 सारांश

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों इस इकाई के अंतर्गत हम शरीर की पेशी तंत्र, अस्थि तंत्र को सशक्त व मजबूत बनाने के साथ–साथ निरोग रखने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। अभ्यंग हमारे शरीर की थकावट को दूर करके मांसपेशियों को शिथिल करके शरीर को आराम प्रदान करता है। अभ्यंग से हमारे शरीर का रक्त परिसंचरण तेजी से होता है। और रक्त का स्त्राव पूरे शरीर में समान रूप से चलता है। शरीर की अस्थि तंत्र, पेशीय तंत्र और तंत्रिका तंत्र के साथ–साथ रक्त परिसंचरण तंत्र काफी प्रभावित होता है । और रक्त के माध्यम से शरीर के सभी विजातीय द्रव्यों को निष्कासन करने में अभ्यंग बहुत महत्वपूर्ण चिकित्सा का कार्य करता है। यह अभ्यंग चिकित्सा प्राचीन समय से चली आ रही चिकित्सा है । जो शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार

मकान की मजबूती उसकी नींव में होती है। उसी प्रकार मनुष्य की उसके शरीर और जीवन की मजबूती उसके बचपन में की गई मालिश चिकित्सा से होती है। इसलिए मालिश हमारे जीवन के लिए एक वरदान के रूप में है। जिन व्यक्तियों को मालिश बचपन में अपनी मां के द्वारा मिल जाती है। उनका शरीर पूरी जिंदगी भर के लिए स्वास्थ्य और निरोग बना रहता है। और काफी मजबूत रहता है। इसलिए यह हमारी चिकित्सा बच्चे, जवान, युवा और वृद्ध सभी के लिए समान रूप से बहुत ही लाभकारी और उपयोगी मानी गई है। लिए इस इकाई में हम अभ्यंग से जुड़ी समस्त जानकारी प्राप्त करेंगे । अभ्यंग से होने वाले लाभ उसकी परिभाषा और उसकी विधि के साथ–साथ उनकी सावधानियां को विस्तार पूर्वक जानेंगे।

10.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में हम अभ्यंग चिकित्सा के अर्थ व परिभाषा को जान सकेंगे।
- इस इकाई अभ्यंग चिकित्सा के सिद्धान्तो से परिचित होगें।
- अभ्यंग से को जाने वाली चिकित्सा की उपयोगिता को समझ सकेगे।
- इस इकाई में अभ्यंग के लाभों और सावधानियों को जान सकेंगे।
- मालिश के गुणों से आप सभी परिचित होगे।

10.3 अभ्यंग का अर्थ एवं स्वरूप

अभ्यंग को सामान्य भाषा में मालिश भी कहा जाता है। अभ्यंग चिकित्सा आयुर्वेद की प्राचीनतम चिकित्सा का भाग है। अभ्यंग दो शब्दो से मिलकर बना है। अभि + अंग जिसमे तेल की क्रिया की जाती है। अभ्यंग एक प्रकार का आयुर्वैदिक मालिश है , जिसमें शरीर को औषधि युक्त , वात पित्त, कफ को दूर करने वाले तेल से मालिश की जाती है।। इसमें तेल की मात्रा अधिक रखी जाती है। और उस तेल में कुछ औषधियाँ मिलायी जाती हैं। जो मौसम में परिवर्तन, गलत आहार–विहार, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में कमी आने पर, असंतुलित आहार की वजह से, उचित व्यायाम की कमी आदि कारणों से ये दोष दिखाई देते हैं। यही अभ्यंग कई प्रकार की शारीरिक व मानसिक बीमारियों को दूर करने में सहायक हैं। रोगी की प्रकृति को अनुसार अभ्यंग किया जाता हैं। जो शरीर की रक्त परिसंचरण प्रणाली एवं मांसपेशियों को सशक्त व मजबूत बनाने के उद्देश्य की जाती है। जिसमें मांसपेशियों को जोड़ों को उनके स्थान को रगड़ना मसलने की क्रिया को मालिश कहते हैं।

अभ्यंग हमारे स्नायु मंडल को सशक्त बनाता है। प्राचीन समय में माताएं अपने छोटे बच्चों को सुबह प्रातः कालीन सूर्य की किरणों में विभिन्न प्रकार के मौसम के अनुसार तेलों से उपयोग करके अभ्यंग किया करती थी। अभ्यंग करने से हमारे सप्त धातु में पुष्ट होती हैं। शरीर की मांस धातु , अस्थि , मज्जा, धातुएं सबसे अधिक प्रभावित होती है। जिससे शरीर का रक्त संचार बढ़ता है। और शरीर की ऊपरी त्वचा के रोम कूप भी खुलते हैं। जिससे शरीर की सभी विजाती द्रव्य त्वचा के बाहर निकल भी जाते हैं। और शरीर पूरी तरह से हष्टपुष्ट बन जाता है। शरीर को स्वस्थ और दीर्घायु बनाने में मालिश बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। स्नायु संस्थान के लिए मालिश बहुत उपयोगी है । जिसका उपयोग प्राचीन समय में कसरत, व्यायाम कुश्ती , आदि के माध्यम से किया करते थे। जिसे शरीर में होने वाले सभी प्रकार के रक्त संचालन श्वसन क्रिया, पाचन क्रिया एवं मल विसर्जन के साथ–साथ रक्त परिसंचरण में सबसे अधिक सहायता मिलती है । मालिश से सभी प्रकार के रक्त विकार भी दूर होते हैं। क्योंकि हमारी नस नाड़ियों में बहने वाला रक्त पूरी तरह से शुद्ध होता है। शरीर की थकावट दूर होती है। मन को शांति मिलती है। साथ ही साथ रक्त संचार में रुकावट डालने वाले सभी प्रकार के विजाती द्रव्यों का निष्कासन होता है। जो विजतीय द्रव्य हमारे पसीना, मूत्र आदि के माध्यम से बाहर निकल जाते हैं। जिससे हमारा शरीर हष्ट, पुष्ट और मजबूत बनता है। शरीर की मांसपेशियां सबल बनती हैं ।

रक्त संचार और नाड़ी संस्थान उत्तेजित होकर सभी प्रकार के हमारे हार्मोनल डिसबैलेंसी दूर करता है हमारे हार्मोन सुचारू रूप से अपना कार्य करते हैं। शरीर में जब हम आहार ग्रहण करते हैं, तब उस आहार के साथ विभिन्न प्रकार के विष तत्व भी हमारे शरीर में चले जाते हैं। खाए हुए विष तत्व को रोगियों के शरीर से निकलने के लिए मालिश अचूक चिकित्सा मानी गई है । इसी प्रकार मालिश का प्रयोग विभिन्न तरीकों से शरीर के ऊपरी अंगों पर किया जाता है । मालिश का प्रभाव रक्त परिसंचरण , अस्थि तंत्र , पेशीय तंत्र एवं तंत्रिका तंत्र पर बहुत ही आश्चर्यजनक पड़ता है। अभ्यंग से रोगों से मुक्ति दिलाने में बहुत ही उपयोगी है। प्राकृतिक खाद्य पदार्थ हमारे स्वास्थ्य का पोषण करते हैं। और प्रकृति में रहकर हम प्रकृति के आधार पर ही औषधीय का सेवन करते हैं। उसी प्रकार से प्रकृति में हमारे शरीर की सौंदर्य की वृद्धि भी करता है। और सभी प्रकार के रोगों के उपचार में भी मदद करता है। मनुष्य को जन्म से ही मालिश की बहुत जरूरत पड़ती है। क्योंकि बचपन में शरीर बहुत ही बहुत ही नाजुक होता है। उसकी सशक्तता और मजबूती लायक लाने के लिए माताएं बच्चों का प्रातः कालीन धूप में सरसों के तेल, घी , नारियल के तेल व विभिन्न प्रकार की औषधि तेलों से मालिश करते थे। जिससे बच्चों की हाथ पैर व शरीर की पेशियां पूरी तरह से मजबूत होती थी। उनका जीवन दृढ़ और शक्तिशाली परिक्रमी बनता था। और उनका जीवन दीर्घायु को प्राप्त होता था। हर कोई मनुष्य जाने अनजाने में मालिश की प्रक्रिया को जरूर अपनाता है। प्राचीन काल से मालिश क्रिया का दर्शन मिलता है।

आयुर्वेद में इसका बहुत ही महत्वपूर्ण प्रयोग बताया गया है। आयुर्वेद में अभ्यंग के नाम से भी जाना जाता है। इसके बहुत सारे गुण और सावधानियां की भी बात कही गई है।

यदि हम इसका उपयोग सावधानीपूर्वक करते हैं। तो निश्चित रूप से अध्ययन का हमें बहुत ही लाभ मिलते हैं। सभी प्रकार के रोगों में अलग–अलग औषधीय के तेल का उपयोग करके रोगों को दूर किया जाता है। घर–घर में प्रचलित यह मालिश चिकित्सा मुगलों और बादशाह के समयबहुत ही प्रचलित थी। प्राचीन समय के राजा, महाराजा, सामंत नवाब, मालिश के बहुत शौकीन थे । तब हमारे देश के हकीम उनकी मालिश करने के लिए जाया करते थे । मालिश हमारे शरीर को बहुत ही शक्तिशाली और मजबूत बनाता है। साथ ही साथ शारीरिक गर्मी, विभिन्न प्रकार के मौसमी, वातावरण से बचने का भी कार्य करता है। समस्त शरीर के रोगों को दूर करने का भी काम करता है। चलिए मालिश की परिभाषा के बारे में विस्तार पूर्वक जानेंगे।

10.4 अभ्यंग (मालिश) की परिभाषा

अभ्यंग आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणालियों में से महत्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति है। जो शरीर की थकावट व शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने के साथ–साथ शरीर की सुंदरता को भी बढ़ाने का कार्य करता है।और मांसपेशियों को सशक्त बनाकर शरीर को अधिक जीवन प्रदान करने का कार्य करता है। अभ्यंग की परिभाषा निम्नलिखित है।

- **जर्मनी के सी. जी. डोर के अनुसार**

मालिश शरीर की त्वचा एक आवरण या प्राकृतिक चादर के समान है, जिसकी स्वच्छता एवं सुन्दरता के लिये मालिश वरदान के समान है। अभ्यंग का निरंतर प्रयोग आवश्यक करना चाहिए है।

- **एस. वी. गोविन्दम के अनुसार**

"अभ्यंग कष्ट को निवारक करने वाला तथा स्वाभाविक स्वरूप देने उत्तक आदि में पुनः ऊर्जा लाने तथा सभी आंतरिक अंगों को क्रियशील एवं सशक्त करने की सभी चिकित्सकीय प्रविधियों में प्राचीनतम विधि है।

- **जे. एम. जुस्सावाला के अनुसार**

मालिश एक ऐसा शब्द है , जिसे अभ्यंग के नाम से जाना जाता है,जो सामूहिक स्तर पर व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप से शारीरिक ऊत्तको के प्रबंध कौशल के महत्व को

दर्शाता है। जो कि हाथों के माध्यम से भली प्रकार स्नायुतंत्रों, मांसपेशियों तथा सामान्य रक्तसंचार को प्रभावित करने के लिये संपन्न किया जाता है।

- **हॉफमैन्स के अनुसार**

"मालिश से शरीर निरोग एवं स्वस्थ बना रहता है। इससे रोग मिटते हैं। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। शरीर सुडौल एवं सुन्दर वा मजबूत बनता है"

- **लीटर के अनुसार**

आधुनिक शब्द 'मसाज अरबी शब्द मांस्स' से बना है, जिसका अर्थ है मांसपेशियों को हाथ से दबाने और जोड़ों पर मालिश करने की कला है। अभ्यंग अंगों को और लचीला और क्रियाशील बनाती है। शरीर को दीर्घ आयु प्रदान करता है।

सामान्य शब्दों में अभ्यंग की परिभाषा

1. शरीर मन और आत्मा इन तीनों को स्वस्थ बनाए रखने के लिए मालिश अभियान काफी लाभकारी है। इससे शारीरिक मानसिक लाभ की प्राप्ति भी होती है। बल्कि सभी नस नाड़ियां इससे प्रभावित होकर वह उनमें रक्त का संचार अच्छे से होता है।
2. मालिश प्राकृतिक चिकित्सा की वह शाखा है। जो शरीर की मांसपेशियों संधियों पर दबाव डालकर विजाती द्रव्यों को बाहर निकाला जाता है।
3. मालिश शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का विकास करने के साथ–साथ हमारे अंगों को मजबूत बनाने के उद्देश्य से की जाती है। 500 ईसा पूर्व हीरोकिड्स ने जिमनास्टिक में थके हुए लोगों की मालिश द्वारा थकावट दूर करने के काम में उपयोग करते थे। शरीर की थकावट दूर करने का यह मालिश अद्भुत चिकित्सा पद्धति है।

आयुर्वेद चिकित्सा में अभ्यंग

आयुर्वेद चिकित्सा में अभ्यंग को महत्वपूर्ण माना गया है, अभ्यंग विशेष रूप से वात रोगों एवं वेदना को हरने वाला माना गया है। अभ्यंग को तैल के माध्यम से किया जाता है। इसलिए इसे तैलाभ्यंग के नाम से जाना जाता है।

- **तैलाभ्यंग** से जरा (बुढापा) , विश्राम दायक, आयु को बढ़ाने और पुष्ट करने वाला माना गया है, यह निद्रा आदि कम करके , त्वचा पे निखार लाकर रोगों को दूर करता है। अभ्यंग से शरीर दृढ़ बनता और त्वचा में कोमलता आती है। अभ्यंग से शरीर में रक्त संचार बढ़ता है । और तैल से त्वचा को स्नेह प्राप्त होता है, जिस से त्वचा मृदु एवं कोमल होती है। शरीर की त्वचा से रूक्षता का नाश होने के कारण त्वचा का फटना आदि रोगों से मुक्ति मिलती है। सिर में तैल अभ्यंग करने से सिर का दर्द, वली , पलित आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।
- **शिरोअभ्यंग** से अच्छी निद्रा आती है। शिर के अभ्यग से केशों में होने वाले यूका , पिपिलिका आदि कीड़ों का नाश होता है। कर्ण पूरण करने से कान से रोग नहीं होते एवं कान में जमा होने मैल नहीं हो पाता।

"सार्षपं गन्ध तैलष्च यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
अन्यद्रव्य युतं तैलं न दुश्यति कदाचन।।"

अभ्यंग में सरसों का तेल, सुगन्धित पुष्पों का तैल, पुष्पवासित और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से युक्त तैल से किया जा सकता है। तैलो में तिल का तैल जो वात और कफ नाशक माना गया है इसलिए तिल का तैल मालिश करने के लिए सबसे श्रेष्ठ माना गया है।

- **चरक संहिता –**

मालिश से वात रोग, शान्त होते हैं।तथा तैलाभ्यंग से मेहनत एवं पीड़ा हरने की क्षमताबढ़ जाती है।

10.5 अभ्यंग चिकित्सा के सिद्धांत

अभ्यंग चिकित्सा जो शरीर के पेशीय तंत्र को सशक्त और मजबूत बनाकर समस्त रोगों को दूर करने का काम करती है। और साथ ही साथ शरीर को निरोग बनाकर दीर्घ जीवन प्रदान करने का कार्य करती है। अभ्यंग चिकित्सा से अन्य को शारीरिक व मानसिक लाभों की प्राप्त होती है। जिसमें सबसे प्रमुख शरीर की शिथिलता और थकावट को दूर करने का कार्य करती है। आइए अभ्यंग चिकित्सा के सिद्धांतों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें। अभ्यंग चिकित्सा के निम्नलिखित सिद्धांत हैं।

1. व्यावहारिकता का सिद्धांत

अभ्यंग चिकित्सा के व्यावहारिक पक्ष को समझना बहुत जरूरी है। अभ्यंग चिकित्सा करने वाले का व्यवहार कैसा है। वह किस प्रकृति का है। इन सभी बातों को ध्यान रखना अति आवश्यक है। इसलिए चिकित्सा वाले व्यक्ति को विनम्र, दयालु और शिष्टाचार आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। और साथ ही साथ मालिश लेने वाले व्यक्ति के प्रति क्या सोच रखता है। वह किसी प्रकार से कोई भेदभाव तो नहीं करता है। इन सभी बातों का विशेष ख्याल रखना चाहिए ।

2. शिष्टाचार का सिद्धान्त

अभ्यंग चिकित्सा में शिष्टाचार होना अति आवश्यक है। जहां पर शिष्टाचार होता है। वहां परस्पर सहयोग और सेवा भाव का व्यवहार होता है । इस चिकित्सा से अभ्यंग लेने वाले और अभ्यंग देने वाले दोनों के बीच एक आत्मीयता का संबंध बन जाता है। जिससे एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए इस चिकित्सा को सहयोग भाव पूर्ण करते हैं।

3. आत्मीयता का सिद्धान्त

इस चिकित्सा में चिकित्सा देने वाले और चिकित्सा लेने वाले के बीच परस्पर आत्मीयता का संबंध होना चाहिए। जहां आत्मीयता का संबंध होता है। वहां पर हर दुख, दर्द एक दूसरे को अपना समझकर सेवा भाव से चिकित्सा करते हैं। इसलिए अभी चिकित्सा में आत्मीयता का होना अति आवश्यक है। वहां पर सहयोग के भाव से एक दूसरे की मदद करते हैं। तो चिकित्सा करने वाले व्यक्ति को पूरी तरह से ईमानदारी जिम्मेदारी के साथ–साथ अपने गुण और स्वभाव को सहयोग और सेवा की भांति अभ्यंग चिकित्सा करके रोगी को लाभ प्रदान करना चाहिए।

5.वैज्ञानिकता का सिद्धान्त

अभ्यंग चिकित्सा करने तथा अभ्यंग को लेने वाले दोनों व्यक्तियों को अभ्यंग के वैज्ञानिक पक्ष को पूरी तरह से जानना भी अति आवश्यक है। जब तक हम इसकी वैज्ञानिकता को नहीं समझेंगे तब तक इसके लाभों से पूरी तरह से वंचित रह जाएंगे। यह हमारे शरीर के अस्थि तंत्र, पेशी तंत्र और तंत्रिका तंत्र के साथ–साथ रक्त परिसंचरण तंत्र को सक्रिय बनाकर रोग प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाता है। जिससे शरीर के विजाती द्रव्यों का निष्कासन होकर शरीर स्वस्थ और सुशील बनता है।

6.विश्वास का सिद्धान्त

अभ्यंग चिकित्सा लेने वाले व्यक्ति को इस चिकित्सा पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। विश्वास के सिद्धांत के आधार पर ही कोई भी चिकित्सा कार्य करती है । जिस व्यक्ति को जितना

अधिक इस चिकित्सा पर विश्वास होगा वह उतना ही इस चिकित्सा से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर पाएगा।

"जाकी रही भावना जैसी" के सिद्धांत के आधार पर जिसकी जैसी विचारधारा और भावना रहेगी वैसी ही चिकित्सा का लाभ भी मिलेगा । इसलिए चिकित्सा पर विश्वास होना अति आवश्यक है । क्योंकि कई लोगों को आयुर्वेद योग और प्राकृतिक चिकित्सा पर भरोसा नहीं करते। इसलिए भरोसा होना अति आवश्यक है तभी यह चिकित्सा कार्य कर पाएगी और इस चिकित्सा से सारे लाभ मिलते हैं। क्योंकि जहां विश्वास है। और भरोसा है, वहीं व्यक्ति का मन इंद्रिय और चिंतन स्थापित होता है। इसलिए जहां चिंतन मन पूरी तरह से स्थिर हो जाता है। वहीं से रोग स्वतः ही चले जाते हैं। इसलिए अभ्यंग चिकित्सा के प्रति अभ्यंग देने वाले व्यक्ति और अभ्यंग लेने वाले व्यक्ति दोनों को पूरी तरह से एक दूसरे पर विश्वास होना चाहिए। विश्वास होने पर चिकित्सा लेने वाले व्यक्ति पर इसका प्रभाव बहुत अधिक होता है और जल्द से जल्द रोगों से छुटकारा भी मिलता है।

7.सकारात्मकता का सिद्धांत

सिद्धांत के आधार पर चिकित्सा का सकारात्मक व्यक्तियों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति सकारात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। और चिकित्सा के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक होता है। तो उनके जीवन में इस चिकित्सा का बहुत ही अत्यंत टॉनिक की तरह लाभ प्राप्त होते हैं । इसलिए इस चिकित्सा के प्रति सकारात्मक व्यक्तियों को ही चिकित्सा का लाभ अधिक मिलता है। आत्मीयता का संचार इस चिकित्सा में चिकित्सा लेने वाले और चिकित्सा देने वाले दोनों के बीच सकारात्मक व्यवहार होना चाहिए। जिनके मन में सकारात्मक का भाव होता है। वह एक दूसरे की सेवा भाव से चिकित्सा करते हैं। सेवा भाव से की गई चिकित्सा अत्यंत लाभ प्रिय होती है। और जल्द से जल्द रोगी के रोग को ठीक करके उसे निरोग बनाकर दीर्घ जीवन की प्राप्ति करता है। इसीलिए सकारात्मक के साथ–साथ भावनात्मक सिद्धांत के रूप में एक दूसरे के प्रति प्रतिबद्ध होकर चिकित्सा करनी चाहिए।

8.लिंग विशेष का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अंतर्गत चिकित्सा तभी अच्छी और सफल मानी जाएगी जब समान लिंग वाले एक दूसरे प्रति चिकित्सा में सहयोग करते हैं। तब इसका लाभ अधिक मिलता है। अर्थात महिलाओं की चिकित्सा के लिए महिला चिकित्सक ही होना चाहिए। और पुरुष चिकित्सा के लिए पुरुष चिकित्सक ही होना चाहिए। तभी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और कहीं ना कहीं भावनात्मक रूप से एक दूसरे की चिकित्सा को साधारण तरीके से कर सकेंगे। इसलिए एक दूसरे के प्रति यूं कहें कि अभ्यंग चिकित्सा में पुरुष और महिलाओं की चिकित्सा के लिए पुरुष और महिला चिकित्सक का चयन करना ही चाहिए। उनके करने से चिकित्सा प्रभावी व लाभकारी होती है। छोटे शिशुओं, बच्चों के संदर्भ में

यह बात लागू नहीं होता है। क्योंकि बच्चे मां के ममता और स्नेह के कारण यह पारिवारिक प्रवेश में पलते और बड़े होते है। जिसमें वात्सल्य , स्नेह आदि गुणों के कारण मां अपने बच्चों की यह चिकित्सा कर सकती है। किंतु युवा , प्रौढ़ अवस्था और बुजुर्ग अवस्था में हमेशा समान लिंग के चिकित्सा और रोगी का होना अति आवश्यक है।

9. नियमितता का सिद्धांत

अभ्यंग में समय का बहुत महत्वपूर्ण महत्व बताया गया है। क्योंकि अभ्यंग का समय प्रातः कालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणों के समय माना गया है। यदि उस समय हम अभ्यंग करते हैं । तो निश्चित रूप से सूर्य के द्वारा प्राप्त सभी प्रकार के लाभ भी हमें मिलेंगे और चिकित्सा में चिकित्सा अधिक लाभकारी सिद्ध होगी इसलिए हमेशा समय पर ही चिकित्सा करनी चाहिए।

10. स्नेह द्रव्यों के सिद्धांत

यह अभ्यंग चिकित्सा स्नेह द्रव्यों के सिद्धांत पर कार्य करती है । यह शरीर की पूरी त्वचा को घर्षण और मर्दन के माध्यम से शरीर में स्नेह उत्पन्न करके पूरे संपूर्ण मांसपेशियों को शिथिल बनाने का कार्य करती है। जब हम किसी तेल के माध्यम से चिकित्सा करते हैं। तो ऊपरी त्वचा पूरी तरह से तेल से स्नेहित हो जाती है। और उससे शरीर की मांसपेशियों पर घर्षण आसानी से हो जाता है। और इस चिकित्सा का लाभ मिलता है। यह चिकित्सा शरीर के जोड़ों, गठिया, अर्थराइटिस कमर दर्द, घुटने दर्द, पीठ दर्द, कंधे दर्द, सिर दर्द आदि शरीर में बहुत ही लाभकारी मानी गई है। इसलिए इस चिकित्सा के लिए तेल आदि का उपयोग किया जाता है। प्रकार अभ्यंग चिकित्सा बहुत ही उपयोगी भी मानी गई है। यह चिकित्सा इन सिद्धांतों के आधार पर कार्य करके शरीर को नाना प्रकार के रोगों से मुक्त करके शरीर की थकावट को दूर करती है। और शरीर को निरोग करके मांसपेशियों को सशक्त और मजबूत बनाकर के शरीर को दीर्घायु प्रदान करने का कार्य करती है।

10.6 अभ्यंग के उपयोग

अभ्यंग शरीर की पुष्टि और स्वास्थ्यवर्धक बनाए रखने की आयुर्वेदिक प्रक्रिया है। जो प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत आती है। जिसमें किसी औषधि या तेल से संपूर्ण शरीर को रगड़ रगड़ कर पूरी तरह से मांसपेशियों को उत्तेजित करके रक्त के संचार को बढ़ाकर शरीर की थकान को दूर किया जाता है। अभ्यंग की आवश्यकता बचपन से ही महसूस होने लगती है। जब शिशु जन्म लेता है। तब से मां बच्चे की देखरेख और प्रातः कालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणों में घी या औषधि तेल से मालिश करती

है । जिस बच्चे को शुरुआत में जन्म के समय अच्छी मालिश प्राप्त होती है। उस बालक का विकास बहुत ही सुदन तरीके से होता है। वह बचपन से ही होनहार, निडर ,परिक्रमी साहसी और सौंदर्य युक्त शरीर की प्राप्ति करता है। वह बहुत मेधावी प्रज्ञा बुद्धि को प्राप्त होता है।और बड़ा होने पर उसका जीवन दीर्घायु को प्राप्त होता है। यह अभ्यंग हमारे भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से सदियों से चली आ रही चिकित्सा है। इसका दिन प्रतिदिन की जिंदगी में प्रत्येक व्यक्ति कहीं ना कहीं इसका उपयोग अवश्य करता है। मानव के साथ–साथ पशु ,पक्षी सभी अभ्यंग की क्रिया को किया करते हैं प्राचीन समय में राजा महाराजा और सैनिक जब युद्ध करके आते थे। तब उनकी मालिश के द्वारा शरीर की थकावट को दूर किया जाता था ।

भारत देश में जब नवाबों का जमाना था तब भी बड़े–बड़े नवाब मरदन की क्रिया के द्वारा शरीर की थकावट को दूर किया करते थे। और प्राचीन समय में मनोरंजन खेल आदि के अंतर्गत बड़े–बड़े दंगलों का आयोजन कराया जाता था। जिसमें कुश्ती आदि के माध्यम से शरीर का मर्दन करके शरीर को हष्ट पुष्ट और बलवान बनाया जाता था। यह ताकत अभ्यंग के द्वारा ही शरीर को प्राप्त होती थी।और अपने शरीर की शिथिलता को दूर करके आनंद की प्राप्त करते थे । पशु पक्षी जानवर भी अपने छोटे–छोटे बच्चों को खेल–खेल के माध्यम से एक प्रकार का अभ्यंग ही करते हैं। जिससे उनके दौड़ने की, चलने की और सभी प्रकार की क्रियाएं सीखते हैं। जिससे उनकी आत्मरक्षा भी हो सके परंतु वर्तमान समय में मानव अपनी भौतिकवादी प्रगति में इतना अस्त–व्यस्त जीवन जीने लगा जिसके कारण उसका आहार बिहार, खान–पान, रहन–सहन सब पूरी तरह से विकृतियों से घिर गया और वह समय का दुरुपयोग करते–करते जीवन रूपी संपदा का भी दुरुपयोग करने लगा । प्राचीन समय में ऋषि मुनि और भारत के सभी लोग ब्रह्म मुहूर्त में जागरण करके सुबह के सभी पाक क्रियो से निवृत होकर योग, व्यायाम, आसन ,प्राणायाम ,सुबह प्रातः काल ठंडी वायु में भ्रमण करके प्रकृति की दी हुई औषधीय का सेवन करते हुए । 100 साल तक जीवन व्यतीत करता था। किंतु वर्तमान समय का मानव देश रात तक जागने और सुबह देर तक सोने की जो आदत बना लिया है। इससे उसके जीवन में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगे और वर्तमान समय का मानव 60 साल की ही उम्र में अपने जीवन लीला को समाप्त करके इस दुनिया से चला जाता है। इसलिए हमारे शरीर की शुद्धि और शरीर को शुद्धरण बनाने के लिए आयुर्वेद द्वारा या प्राकृतिक चिकित्सा अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अभ्यंग से हमारे शरीर की मांसपेशियां फूल जाती हैं। उनमें रक्त का संचार तेजी से बढ़ता है। और सप्त धातु में पुष्ट होती हैं, पुष्ट धातु ही हमारे शरीर को दीर्घायु प्रदान करती हैं। विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में भी आयुर्वेद की अभ्यंग चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण मानी गई है। क्योंकि यह सर्व सुलभ और आसानी से की जा सकती है। इस अभ्यंग से हमारे शरीर की मांसपेशियां गतिशील होती हैं। और रक्त का संचार तीव्र होता है। जिससे शरीर की सभी विजाती द्रव्य बाहर निकल जाते है और शरीर को स्वस्थ बनाने का कार्य करते हैं। और हमारे शरीर की लाल रक्त कोशिकाओं ष्ष्वेत रक्त कोशिकाओं और प्लेटलेट्स आदि कोशिकाएं शरीर को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करती हैं । और शरीर की सभी मांसपेशियां मजबूत बनती हैं। शरीर के जोड़ आदि की समस्याएं ठीक होती

है। जिनमें अर्थ्रराइटिस, गठिया संधि का उतरना, नस का चढ़ जाना, शरीर की दुर्बलता, शरीर में उत्पन्न हो रहे वात रोग ये सभी के सभी रोग इस अभ्यंग चिकित्सा से जल्द ही ठीक हो जाते हैं। शरीर के आंतरिक स्वास्थ्यवर्धक तथा रोगो का नाश करने हेतु, दोनो ही दृष्टियों से अभ्यंग बहुत ही उपयोगी है। वात रोग से सम्बन्धित जितने भी विकार है, उन्हें दूर करने के लिए अभ्यंग सर्वश्रेष्ठ उपचार बताया गया है।

आयुर्वेद चिकित्सा के ग्रथों में अभ्यंग की उपयोगिता के बारे में कहा गया है–

वमन कफनाशाय वातनाशाय मर्दनम्।
शयन फ्तिनाशाय, त्वरनाशाय लड नम्।।

अतः इस प्रकार वमन क्रिया करने से कफ समान होता है। अभ्यंग करने से वात सम्बन्धी रोगो का नाश होता है। विश्राम करने से पित्त सम्बन्धी रोगो दूर होते है। उपवास करने से बुखार का नाश होता है।

जब वात विकार सम्बन्धी कोई रोग के लक्षण उत्पन्न होते है तो शरीर के किसी अंग–विशेष में दर्द का अनुभव होता है। इस स्थिति में अभ्यंग अर्थात् मालिश के द्वारा उस पीड़ा का निवारण करके विशेष लाभ लिया जा सकता है। प्रायः हम सभी के जीवन में देखने को मिलता है कि जब सिर में दर्द होता है । तो पिण्डलियों, भुजाओं, हाथों, पैरो का गर्दन आदि में अभ्यंग करते है। यदि किसी अनुभवी व्यक्ति के द्वारा यह अभ्यंग उपचार किया हो , सभी प्रकार के रोगों का शमन होता है।

आयुर्वेद के सिद्धान्त के समान ही प्राकृतिक चिकित्सा का भी वही सिद्धान्त है कि चिकित्सा करनी पड़े इससे अच्छा तो यह है कि रोग उत्पन्न ही न हो। स्वास्थ शरीर के लिए प्राकृतिक जीवन शैली की अपनाया जाय । प्राकृतिक चिकित्सा के अर्न्तगत शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अभ्यंग चिकित्सा प्राचीन समय से लाभकारी सिद्ध हुई है। अभ्यंग से शरीर की शक्ति बढ़ती है इसलिए अनिवार्य नित्य कर्म की तरह अभ्यंग को दिनचर्या का आवश्यक अंग के रूप में उपयोग किया जाना चाहिये।

1.बाल्य काल में उपयोग

जीवन में अभ्यंग की आवश्यकता सर्वप्रथम शिशु अवस्था में होती है। जब शिशु जन्म लेता है। तब से उसके शरीर का अभ्यंग करना प्रारम्भ कर दिया जाता है । बलयवस्था प्रारंभ होने पर उसकी तरह–तरह के तेलों आदि के माध्यम से मालिश की जाने लगती है। हमारे देश में तो 6 माह तक के शिशुओं की मालिश अनिवार्य बतलाई गई है । जिसको शुद्ध घी मक्खन जैतून का तेल आदि के माध्यम से सुबह की प्रातः कालीन स्वर्णिम धूप में की जानी चाहिए। जिससे बच्चों को विटामिन डी की

प्राप्ति होती है । और उनकी हड्डियां मांसपेशियां पूरी तरह से सशक्त और मजबूत बनती हैं। जिससे उनका विकास बहुत अच्छे और सुंदर ढंग से होता है। उनके शरीर में किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं रहती । बाल्यकाल में मालिश चिकित्सा बहुत लाभकारी मानी गई है। क्योंकि जिस वृक्ष की शाखाएं मजबूत होती हैं, उनकी जड़ों की प्रारंभ में परवररिश अच्छे से की जाती है। इस प्रकार बच्चों के जीवन को अच्छा बनाना है। तो उनका बचपन में मालिश करना अति आवश्यक है। बच्चों का शरीर हस्टपुष्ट शक्तिशाली , बुद्धिमान यदि बनाना है जन्म से ही मालिश कराई जानी चाहिए। प्रतिदिन दैनिक दिनचर्या आदि में मालिश को शामिल करके स्वास्थ वर्धक दृष्टि से इसका उपयोग करते रहना चाहिए। बाल्यकाल में मालिश होने से बच्चों की सर्दी , खांसी, जुकाम, बुखार आदि सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं। और शरीर पूरी तरह बलवान और मजबूत बनता है । जो सभी प्रकार के रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाकर बीमारियों से बचा रहता है।

2.अभ्यंग चिकित्सा का शारीरिक उपयोग

रक्त परिसंचरण तंत्र की सक्रियता हेतु यह चिकित्सा हमारे रक्त संचार को सबसे अधिक उत्तेजित करके, धमनियां और शिराओं में बहने वाले रक्त का संचार करके लाल रक्त कोशिकाओं की वृद्धि करता है। और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर शरीर की चयापचय क्रिया को तीव्र करके शरीर को स्वस्थ बनाए रखने का कार्य करता है। और हमारी समस्त धातुओं की वृद्धि और पुष्टि करता है

3.स्नायु संस्थान पर अभ्यंग का उपयोग

मानव के स्नायु को उत्तेजित करके उनको सशक्त बनाने का कार्य अभ्यंग के द्वारा किया जाता है। जिससे स्नायु विकार दूर होकर शरीर में हल्कापन महसूस होता है। और शरीर को आराम मिलता है। स्नायु हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका तक जाकर उनकी क्रिया प्रतिक्रिया को करने का कार्य भी करते हैं। इसलिए स्नायु का स्वस्थ होना अति आवश्यक है।

3.पेशी संस्थान के लिए उपयोग

अभ्यंग हमारी मांसपेशियों को सशक्त और मजबूत बनाए रखने के लिए बहुत उपयोगी है। शरीर की समस्त मांसपेशियां अभ्यंग के द्वारा सक्रिय हो जाती हैं। जब शरीर की पेशियां को तेल के द्वारा मालिश किया जाता है। तब उनमें रक्त का संचार तीव्र होता है। और तीव्र रक्त संचार होने से शरीर के सभी दूषित पदार्थ रक्त के माध्यम से छनकर वह शरीर से बाहर हो जाते हैं। जिससे मांसपेशियां सुसंगठित बनती हैं। और उनकी सक्रियता बढ़ जाती है। और त्वचा रोग होने की संभावना हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है।

5. पाचन संस्थान के लिए उपयोगी

पाचन संस्थान के लिए अभ्यंग चिकित्सा बहुत उपयोगी मानी गई है । अभ्यंग करने से उदर की पेशियां मजबूत बनती हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जिससे खाये गए अन्न का पाचन बहुत ही तीव्र और सुपाच्य ढंग से होता है। साथ ही साथ कब्ज जैसी समस्याएं दूर होती हैं। भूख अच्छी लगती है हाथों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। और आंतों से मल का निष्कासन भी बढ़ता है। यकृत और अग्नाशय को पूरी तरह से क्रियाशील करके उनकी ग्रंथियों को सक्रिय भी बनाया जाता है। इसलिए अभ्यंग पाचन संस्थान के लिए बहुत उपयोगी है।

6.आंतरिक अंगों के लिए उपयोगी

यह अभ्यंग चिकित्सा शरीर के आंतरिक अंग किडनी जिसको वृक्क के नाम से भी जाना जाता है। अभ्यंग का उपयोग करके वृक्क की क्रियाशीलता बढ़ाई जाती है। और रक्त में रक्त के माध्यम से शरीर के विजाती द्रव्यों को निष्कासन करने में बहुत उपयोगी है। क्योंकि रक्त का छानने की प्रक्रिया वृक्क के माध्यम से होती है। और वृक्क का इंस्पेक्शन और वृक्क में पथरी जैसी समस्याओं का निदान भी अभ्यंग चिकित्सा से आसानी से होता है।

7.पेशीय संस्थान के लिए उपयोगी

मालिश पेशीय संस्थान के लिए बहुत ही उपयोगी चिकित्सा बतलाई गई है। क्योंकि मालिश का सीधा प्रभाव हमारे मांसपेशियों और त्वचा की ऊपरी परत पर सबसे अधिक पड़ता है। शरीर की ऊपरी त्वचा में होने वाले रक्त विकार के माध्यम से विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग हो जाते हैं। उन रोगों को दूर करने के लिए मालिश चिकित्सा की जाती है। मालिश चिकित्सा से रक्त का संचार तेजी से होता है। और शरीर की प्रत्येक कोशिका जो मांसपेशियों की क्रियाशीलता बढ़ाकर रोगों को दूर करने का कार्य करती हैं। इससे त्वचा मुलायम बनी रहती है त्वचा की चमक बढ़ती है। और रोम कूप साफ हो जाते हैं। और शरीर से भी विजातीय द्रव्य आसानी से निकलने लगते हैं।

8.स्वसन तंत्र के लिए उपयोगी

अभ्यंग हमारे श्वसन तंत्र के लिए बहुत उपयोगी है। जो ऑक्सीजन युक्त वायु का जीवन के लिए होना अति आवश्यक मानी गई है जो हमारे रक्त कोशिकाओं में ऊर्जा के माध्यम से शरीर की क्रियाओ को संचालन करने के लिए क्रिया करती है। स्वसन तंत्र की क्रियाशीलता हमारे अभ्यंग क्रिया के द्वारा बहुत ही आसानी से क्रियाशील होती है। साथ ही साथ शरीर की कमजोरी, जोड़ों के दर्द आदि को दूर किया जाता है।

9.अस्थि तंत्र पर के लिए उपयोगी

मालिश चिकित्सा हमारे अस्थि तंत्र को बहुत ही मजबूत बनाता है। बचपन में जब मां अपने बच्चों को अभ्यंग करती है। तब बच्चे की हड्डियां मजबूत होती हैं । और मजबूत हड्डियों पर शरीर का निर्माण होता है। इसलिए हमारी हड्डियों को मजबूत करने के लिए यह अभ्यंग चिकित्सा अत्यंत लाभकारी मानी गई है । जिसकी हड्डियां तेज कठोर और विकसित होती हैं। उसका जीवन हमेशा दीर्घायु को प्राप्त होता है। इसलिए हमारे जीवन के लिए अभ्यंग बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है।

10.7 अभ्यंग चिकित्सा के गुण

- अभंग हमारे शरीर स्वस्थ की वृद्धि के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण चिकित्सा मानी गई है। इसके निम्नलिखित गुण होने चाहिए।
- अभ्यंग चिकित्सक ऐसा होना चाहिए रोगी के साथ अपनी भावनाओं को जोड़ सके।
- इस चिकित्सा के लिए नियमितता बहुत जरूरी है । नियमित एक समय पर यह चिकित्सा करने से विशेष लाभ मिलते हैं। अनियमितता होने पर इसके लाभ नहीं मिल पाते।
- अभ्यंग चिकित्सा के लिए अनुशासन विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। अनुशासन के दायरे में ही मालिश चिकित्सा करनी चाहिए। जिससे ना तो चिकित्सा करने वाले को किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं होती है। और अभ्यंग चिकित्सा लेने वाले के लिए अनुशासन बहुत जरूरी है।
- चिकित्सक को साफ सुथरे और अच्छे कपड़े पहनना चाहिए। जिससे उसके व्यक्तित्व में अच्छा से निखार आता है। और रोगी के मन में एक प्रसन्नता का भाव भी लाता है । यदि किसी प्रकार से गंदगी या किसी प्रकार से कोई कमी होगी तो रोगी के मन में भी उसके प्रति मन में कोई ना कोई कमी रह जाएगी। जिससे इस चिकित्सा का पूर्ण लाभ नहीं मिल पाएगा।
- मालिश करने वाला पूरी तरह से शारीरिक मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए।क्योंकि कमजोर व्यक्ति किसी दूसरे की मालिश नहीं कर सकता।
- मालिश करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए और किसी कुशल मार्गदर्शन में पहले अच्छे से मालिश चिकित्सा सीख लेनी चाहिए, तत्पश्चात इसका उपयोग दूसरों पर करना चाहिए।
- अभ्यंग करने वाले के हाथ न अधिक ठंडा होने चाहिए ना गरम ,नाखून साफ हो हाथों में किसी प्रकार से कोई अंगूठी या कोई गहना ना पहने हो और अभ्यंग करते समय किसी प्रकार से कोई कठोरता नहीं बरतनी चाहिए।

- अभ्यंगकर्ता का मन व हृदय पूरी तरह से पवित्र होना चाहिए। उसमे सेवा भाव से सामने वाले की अभ्यंग करना चाहिए।
- अभ्यंगकर्ता को हमेशा संवेदनशील होना चाहिए। संवेदनशील होने से प्रसन्नता का भाव बनता है। मालिश करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व ईमानदारी , जिम्मेदारी से पूर्ण होना चाहिए और मन में सकारात्मक चिंतन और भावनात्मक विकास भी होना चाहिए। जिससे आप सभी अभ्यंग क्रिया अच्छे से संपन्न की जा सके और इसके होने वाले सभी लाभों को लिया जा सके।

10.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. अभ्यंग चिकित्सा कौन से तत्व से संबंधित चिकित्सा है?

अ. अग्नि तत्त्व

ब. आकाश तत्व

स. जल तत्व

द. वायु तत्व

प्रश्न–2. अभ्यंग का मुख्य रूप से कौन से तंत्र पर प्रभाव पड़ता है?

अ. पेशीय तंत्र

ब. उत्सर्जन तंत्र

स. तांत्रिका तंत्र

द. कोई नही

प्रश्न– 3. अभ्यंग चिकित्सक के गुण हैं ?

अ. निर्मल स्वभाव वाला

ब. सेवा भावी

स. सात्विक विचारों वाला

द. उपरोक्त सभी

प्रश्न–4. मालिश ..... निषेध है?

अ. मोटापा

ब. अस्थमा

स. त्वचा पर फोड़े एवं जले स्थान

द. निम्न रक्त चाप

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. मालिश चिकित्सा बाल्यावस्था से ही सबसे उपयुक्त मानी गई है।

प्रश्न–6. मालिश चिकित्सा कभी भी किसी भी समय किसी भी अवस्था में की जा सकती है।

10.9 सारांश

प्रिय पाठक हमने इस इकाई के अंतर्गत अभ्यंग की उपयोगिता उसके महत्व के साथ–साथ उसके सिद्धांतों की विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त की। अभ्यंग जो हमारे शरीर को दीर्घायु प्रदान करने में सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है। अभ्यंग हमारे शारीरिक , मानसिक स्वास्थ्य के साथ–साथ हमारे जीवन को उन्नतशील और दीर्घायु प्रदान करके रोगों से दूर करने का कार्य करता है। अभ्यंग बाल्यकाल से प्रारंभ होकर आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि अभ्यंग के कारण ही शरीर की सभी गतिविधियां संचालित होती हैं। और उन गतिविधियों के सहारे हमारे जीवन , उन गतिविधियों पर निर्भर करता है। हृदय की संरचना उसकी क्रियाशीलता, फेफड़े की क्रिया , उत्सर्जन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, पेशीय तंत्र, तंत्रिका तंत्र और अस्थि तंत्र सभी इस मालिश क्रिया के द्वारा बहुत ही स्वास्थ्य और मजबूत बनते हैं।

से शरीर की मांसपेशियां मजबूत बनती हैं । इससे शारीरिक व मानसिक शांति की प्राप्त होती है। स्नायु और पेशियां को बल मिलता है। जिससे रक्त संचार अच्छे से होकर के शरीर के सभी विजाती द्रव्यों को बाहर निकलने का कार्य करता है। हमारे शरीर के आंतरिक अंग, छोटी आंत बड़ी, आंत लिवर, किडनी , अग्नाशय , संबंधित सभी कार्य पूरी तरह करते हैं। जिन बच्चों की नियमित मालिश होती है। उनकी बुद्धि तीव्र गति से विकसित होती है। और वह प्रखर बुद्धि वाले और अच्छे व्यक्तित्व के रूप में विकसित होते हैं। दिन भर की क्रिया को करने के बाद शरीर की पूरी थकान को मालिश दूर करने का काम करता है। इसलिए मालिश क्रिया को पूरी तरह से विश्वास और सकारात्मक भाव से अपनाना चाहिए। और इसके पूरे लाभों को अपने जीवन के लिए उपयोगी मानकर इसका प्रतिदिन के दैनिक कार्यों में जोड़कर लाभ लेना चाहिए। अभ्यंग जीवन को निरोग बनाने का और दीर्घायु प्रदान करने का बहुत अच्छा दैनिक अभ्यास माना गया है।

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 ब. आकाश तत्व

प्रश्न –2 अ. पेशीय तंत्र

प्रश्न –3 द. उपरोक्त सभी

प्रश्न –4 स. त्वचा पर फोड़े एवं जले स्थान

प्रश्न –5. सत्य

प्रश्न–6. असत्य

10.10 निबंधात्मक प्रश्न–

1. अभ्यग चिकित्सा पद्धति के सिद्धांतो एवं उपयोग का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. अभ्यग चिकित्सा का मानव शरीर में पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तार से वर्णन करें।
3. बाल्यजीयन पर इसका महत्व बताइये?
4. अभ्यग चिकित्सक के गुणों को समझाइये?

10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डा0 अनंत प्रकाश गुप्ता – शरीर रचना एव क्रिया विज्ञान।
2. सत्यपाल – वैज्ञानिक मालिश
3. प्रो० रामहर्ष सिह – स्वस्यवृत विज्ञान
4. राकेश जिन्दल – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान
5. आचार्य बालकृष्ण – आर्युवेद सिद्धान्त रहस्य ।
6. डॉक्टर सरस्वती काला – प्राकृतिक चिकित्सा एक समग्र पद्धति

इकाई –11 अभ्यंग की विधियां व अभ्यंग में प्रयुक्त तेल, विभिन्न रोगों में अभ्यंग का प्रयोग व सावधानियाँ

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 अभ्यंग करने वाले व्यक्ति के गुण

11.4 अभ्यंग के प्रकार

11.5 अभ्यंग चिकित्सा की विधियां

11.6 अभ्यंग चिकित्सा में प्रयुक्त तेल

11.7 विभिन्न रोगों में अभ्यंग का प्रयोग एवं सावधानियां।

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

अभ्यंग की प्रक्रिया को व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की जिंदगी में किसी न किसी रूप में अपनाता आ रहा है। प्राचीन समय में जब बूढ़े बुजुर्ग लोग या व्यक्ति कार्य करके अपनी थकान को दूर करने के लिए अपने दिन प्रतिदिन की जिंदगी में किसी न किसी रूप में अभ्यंग अपनाता आ रहा है । जब वह अपने से बड़ों या आपसी लोगों के प्रति मिलते हैं , उनसे हाथ मिलाते हैं, उनके सिर पर हाथ को रखते हैं, पीठ को थपथपाते हैं, या किसी प्रकार से उनको शांतवना देने के लिए व्यक्ति के प्रति सहानुभूति शारीरिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से करते हैं। तो यह कहीं ना कहीं आपसी प्रेम सहयोग, आत्मीयता का आभास उत्पन्न होता है। पहले प्राचीन समय में बूढ़े बुजुर्ग लोग बच्चों के सिर पर हाथ रखकर उनके आशीर्वाद देते थे। कंधे को थपथपाकर उनकी शाबाशी और उनके हौसलों को बढ़ाने का काम कर देते हैं।

किंतु जब इन्ही थपकियों को हम सही तरीके से क्रम बद्ध ढंग से रोग उपचार के लिए यदि उपयोग करने लगते हैं। तब यह चिकित्सा के रूप में काफी प्रभावशाली देखने को मिलती है। हमारे सभी प्रकार की शारीरिक अभिव्यक्तियां जब दूसरों के शरीर पर सिस्टमैटिक तरीके से रोगों के उपचार के लिए की जाती हैं। तब उसे मालिश की विधियां की जाती है। इस इकाई के अंतर्गत मालिश चिकित्सा करने वाले व्यक्ति के गुण, मालिश के प्रकार और मालिश की विधियों के साथ–साथ विभिन्न रोगों में प्रयोग की जाने वाली अभ्यंग चिकित्सा का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इस इकाई के माध्यम से

- अभ्यंग करने वाले व्यक्ति के गुणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- अभ्यंग के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- अभ्यंग में प्रयोग होने वाले अलग–अलग तेलों का महत्व क्या है? इसके बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- अभ्यंग की विभिन्न विधियों के बारे में विस्तार पूर्वक जानेंगे।
- विभिन्न रोगों में अभ्यंग के क्या–क्या लाभ मिलते हैं? और उन रोगों में अभ्यंग कैसे किया जाता है? इनमे प्रमुख सावधानियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

अभ्यंग के प्रकार एवं विधियां

अभ्यंग की विधियों कि यदि बात की जाए तो देशकाल , स्थिति और वातावरण के अनुसार अलग–अलग बतलाई गई है। विभिन्न देशों की विभिन्न प्रकार की जलवायु के आधार पर अभ्यंग का आविष्कार किया गया। उष्ण कटिबंधीय एवं शीत कटिबंधीय प्रदेशों में मालिश के अलग–अलग प्रकार व विधियां बताई गई हैं। जिनका उपयोग स्वस्थ की रक्षा के लिए किया जाता है । लिए हम अभ्यंग के प्रकारों के बारे में जानेंगे।

- तेल मालिश
- सूखी मालिश
- पांव से मालिश
- ठंडी मालिश
- गरम ठंडी मालिश

- पाउडर मालिश
- बिजली मालिश

11.4 अभ्यंग के प्रकार

1.तेल मालिश

इस अभ्यंग की विधि में मुख्य रूप से तेल का उपयोग किया जाता है। जिसमें तिल का तेल, नारियल का तेल, जैतून का तेल व विभिन्न प्रकार के दर्द नाशक, वात नाशक और कफ नाशक औषधि तेलों का उपयोग करके मालिश की जाती है । जो बच्चों से लेकर बूढ़े बुजुर्ग महिलाओं आदि सबके लिए सर्व उपयोगी बताया गया है।

2.सूखी मालिश

इस अभ्यंग में शरीर की त्वचा पर बिना किसी औषधि तेल या पदार्थ से जाती है यह सिर्फ समान्य रूप से स्वच्छ हाथों से ही शरीर के अंगों को मर्दन करके उनकी अकड़न और थकावट को दूर करके की जाती है। इसे सूखी मालिश कहा जाता है ।

3.पांव से अभ्यंग

पांव से मालिश इसे पादागात भी कहा जाता है । यह आयुर्वेद की पंचकर्म क्रिया के अंतर्गत की जाने वाली अभ्यंग प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। यह केरल आदि प्रदेशों में शरीर को तेल आदि से युक्त करके पैरों से शरीर के अंगों की मालिश की जाती है। इस मालिश को पादाअभ्यंग कहा जाता है।

4.ठंडी मालिश

गर्म प्रदेशों में ठंडा तेल व पदार्थों के माध्यम से शरीर को शीतलता पहुंचने के उद्देश्य से की जाती है। जब शरीर की आवश्यकता से अधिक गर्मी बढ़ जाती है। उस गर्मी को दूर करने के लिए ठंडी मालिश की जाती है। जिसमें विभिन्न प्रकार के ठंडे तेलों का प्रयोग किया जाता है।

5. गरम ठंडी मालिश

शरीर की थकावट व रोगों को दूर करने के उद्देश्य की जाती है। इसमें पहला गरम मालिश की जाती है उसके बाद मांसपेशियों को शीतलता पहुंच कर उनकी थकावट को दूर किया जाता है।

6. पाउडर मालिश

इस मालिश में शरीर पर तेल आदि का उपयोग न करके पाउडर का उपयोग किया जाता है। जिसमें ठंडा पाउडर व सामान्य पाउडर का इस्तेमाल करके पूरे शरीर को मालिश से युक्त किया जाता है। इस मालिश का एक सामान्य साधारण हमारे हठयोगियों के जीवन में देखा जाता है। जो भस्म आदि को पूरे शरीर पर लगा करके वातावरण में निवास करते हैं। इससे उनके शरीर में किसी प्रकार के वातावरण के दुष्प्रभाव नहीं पड़ते हैं।

7. बिजली से मालिश

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार की मालिश चिकित्सा पद्धतियों का आविष्कार होने के कारण विभिन्न प्रकार के बिजली के उपकरणों के माध्यम से मालिश की जाती है। इसमें विभिन्न प्रकार के बिजली के उपकरण लेकर के शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यङ्गो को अच्छे से मालिश किया जाता है। इसमें तेल, क्रीम व अन्य शारीरिक त्वचा को लाभ पहुंचाने वाले पदार्थ का उपयोग किया जाता है।

11.5 अभ्यंग की विधियां

भारतीय चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा आदि सभी में तेल के अभ्यंग की बात बतलाई गई है। जिसमें मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के औषधि तेलों का उपयोग करके शरीर के रोगों को दूर करने के उद्देश्य की जाती है। इसलिए भारत देश में तैल अभ्यंग सबसे अधिक प्रचलित है। जो निम्न विधियों के माध्यम से की जाती है।

1.स्पर्श

इस क्रिया में सर्वप्रथम तेल को शरीर के समस्त अंगों में धीरे–धीरे ऊपरी त्वचा पर लगाकर हल्का दबाव स्पर्श के माध्यम से दिया जाता है दबाव सिर्फ या मांसपेशियों तक ही रहता है जो हल्का स्पर्श के रूप में किया जाता है

लाभ

इस स्पर्श विधि से शरीर में रक्त का संचार तेजी से होता है मांसपेशियों की जकड़न चोट लगा सूजन नस नाड़ियों की उत्तेजना आदि से संबंधित रोग दूर होते हैं।

2. घर्षण

अभ्यंग की दूसरी विधि घर्षण है। इसे घिसने की क्रिया भी कहा जाता है। शरीर की ऊपरी त्वचा को स्पर्श करने के बाद उसको धीरे–धीरे दबाव देते हुए घर्षण करते हैं। यह घर्षण शरीर के उदर , हृदय शरीर के कोमल अंगों पर हल्के रूप में किया जाता है। जोड़ों पर इसका अधिक विशेष ध्यान देते हुए घर्षण की जाती है। सूजन, चोट, टूटे हुए स्थान पर घर्षण नहीं करते हैं। बाकी स्वस्थ अवस्था में दबाव डालते हुए घर्षण करना चाहिए।

लाभ

यह घर्षण विधि जोड़ों के दर्द, साइटिका, मोटापे, कमर दर्द, बदन दर्द आदि में सहायक है।

3. थपथपाना

इस विधि में हाथों की हथेलियां को ढीली करके शरीर पर घर्षण किए गए समस्त अंगों पर धीरे–धीरे थपकी के माध्यम से की जाती है ।

लाभ

यह क्रिया उन रोगियों के लिए लाभकारी है । जिम रक्त का संचार काम होता है , पागलपन और तंत्रिका तंत्र से संबंधित बीमारियों में अधिक लाभकारी है। यह क्रोध को शांत करता है। नस नाड़ियों की दुर्बलता को दूर करके शरीर को लाभ पहुंचता है। बच्चों को सुलाने में भी सहायक है।

4. बेलना

अभ्यंग की इस विधि में शरीर की त्वचा को थपथपाने के बाद यह पीठ और पेट की मांसपेशियों को पड़कर आगे की ओर बेलने हुए बढ़ाते हैं। जिस प्रकार रोटी को बेला जाता है । उसी प्रकार से हाथों के माध्यम से मांसपेशियों को पड़कर आगे की तरफ बेलन किया जाता है।

लाभ

यह क्रिया मोटापे में विशेष लाभकारी है। जोड़ों के दर्द, कमर दर्द , साइटिका आदि रोगों में प्रभावशील है।

5. मरोड़ना

यह विधि अधिकतर हाथ व पैरों की मांसपेशियों में की जाती है। घर्षण करने के बाद हाथ , पैरों हथेलियां की ग्रिप बनाकर उसे गोल रूप में दाई से बाई ओर घुमाया जाता है। या घुमाव की प्रक्रिया बड़ी ध्यानपूर्वक की जाती है। हड्डियों के जोड़ों आदि को तेजी से न घुमाकर उसे हल्के रूप में घुमाया जाता है। कंधे, कूल्हे भाग को करना बहुत ध्यानपूर्वक करना चाहिए।

लाभ

यह व्यक्ति की थकावट को दूर करता है। मांसपेशियों की को शिथिल करता है । वात रोगों और लकवा जैसी रोगों में अत्यंत लाभकारी है।

6. दलन करना या दलना

इस प्रक्रिया में मांसपेशियों को हाथों का दबाव डालते हुए शरीर के इधर–उधर की तरफ किया जाता है । यह क्रिया मुख्य रूप से पीठ पर की जाती है। परंतु नाभि और हृदय के आसपास के कोमल स्थान पर नहीं करनी चाहिए। मेरुदंड को इसका केंद्रीय बिंदु मानकर उसे पर पूरी तरह से दलन करते हुए मांसपेशियों पर अभ्यंग किया जाता है ।

लाभ

यह विधि मोटापा, वात रोग, शरीर की दुर्बलता, श्वसन क्रिया आदि से संबंधित रोगों को दूर करता है।

7. मुक्कामार या पीटना

इस विधि में दोनों हाथों की हथेलियां को मुट्ठी बंद करके मालिश किए हुए शरीर की प्रत्येक मांसपेशियों पर मुक्का मारते हुए क्रिया करते हैं। उंगलियां का दबाव ही सिर्फ मांसपेशियों पर पढ़ना चाहिए । मुट्ठी नीचे की ओर थोड़ी हल्की खुली रहनी चाहिए। यह विधि स्वस्थ व्यक्तियों की लिए की जाती है।

लाभ

इससे कमर हाथ पांव कंधा पृष्ठ पर आदि पर किया जाता है और इससे सभी प्रकार के शारीरिक दर्द दूर होते हैं।

8. खड़ी थपकी

इस विधि में दोनों हाथों की हथेलियां को आपस में मिलाकर उंगलियों के माध्यम से शरीर पर खड़ी थपकी दी जाती है। यह थपकी अभ्यंग करने वाले व्यक्ति की हाथों की उंगलियों को ढीला करके की जाती है।

लाभ

यह वात रोग में अधिक लाभकारी है साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्ति के लिए आरामदायक है।

9. उंगलियों को चलाना

इस क्रिया को खुले हाथों के माध्यम से किया जाता है। इसमें अभ्यंग करने वाले व्यक्ति को अपनी उंगलियों को ढीली करके अपनी भूजाओं को शिथिल करके बारी–बारी से मांसपेशियों को उंगलियों से खींचना और उंगलियों को उस पर चलना चाहिए।

लाभ

यह मांसपेशियों को शिथिल बनती है

10. कटोरी थपकी

हाथों की उंगलियों को आपस में मिलाकर दोनों हथेलियां को कप के आकार में बना लेना चाहिए। कटोरी नुमा बनाकर उसे शरीर पर धीरे–धीरे थपकी के माध्यम से क्रिया को चाहिए। इसे कटोरी थपकी कहा जाता है।

लाभ

इस विधि से शरीर की पसलियां और मांसपेशियां मजबूत बनती हैं । फेफड़े आदि को शक्ति मिलती है । बच्चों की मालिश में इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए जो शरीर की दृढ़ता प्रदान करती है।

11. कंपन करना

इस विधि में किसी विधि में हाथों की उंगलियों से शरीर की मांसपेशियों को हल्का–हल्का उठाकर के छोड़ना चाहिए। और उस पर झनझनाहट करके पेशियों को शिथिल करना चाहिए।

लाभ

विधि शरीर की थकावट को शीघ्र दूर करती है। रक्त के संचार को बेहतर बनाकर निद्रा की प्राप्ति कराती है। यह रोगियों के साइटिका, अनिद्रा जैसी बीमारियों में विशेष लाभकारी है।

अभ्यंग करने वाले चिकित्सक के गुण

1.जागरूकता एवं समय का उपयोग –

मसाज करने वाले चिकित्सक को हमेशा समय का सदुपयोग और जागरूक रहना चाहिए क्योंकि प्रत्येक चिकित्सा समय पर दी जाती है तब निश्चित रूप से उसका पूरा लाभ मिल पाता है।

2. अभ्यंग में नियमित लगनशील

चिकित्सक को अभ्यंग की क्रिया में निरंतर लग्नशील रहना चाहिए। जब वह निरंतर अभ्यास के कार्य को करता रहता है। तो उसके कर्मों में कुशलता और दृढ़ता आती है। और अभ्यंग की क्रिया में दिन प्रतिदिन में सुधार आता रहता है। इसलिए हमेशा चिकित्सक को नियमितता का गुण धारण करके अभ्यंग क्रिया की चिकित्सा में लगनशील रहना चाहिए।

3. अनुशासन शीलता

अभ्यंग के सभी नियमों का पालन करते हुए अभ्यंगकर्ता को अनुशासन को बनाए रखना चाहिए। अभ्यंग के समय न तो अभ्यंग चिकित्सक को स्वयं रोगी से बात करनी चाहिये और न ही रोगी को किसी से बात करने देना चाहिए।

4. अभ्यंगकर्ता का व्यक्तित्व

अभ्यंग करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व आंतरिक और बाहर दोनों रूप से बहुत ही स्वच्छ और पवित्र होना चाहिए। उसकी विचारधारा एक सेवाभाविक के समान और स्वच्छ पवित्र होनी चाहिए। ऊपरी व्यक्तित्व की बात की जाए तो स्वच्छ कपड़े रहन–सहन साफ सुथरा होना चाहिए।

5. शारीरिक व्यक्तित्व

अभ्यंग करने वाले चिकित्सा का शारीरिक व्यक्तित्व हमेशा निरोग और स्वास्थ्य होना चाहिए। जिससे वह अभ्यंग करते समय रोगी को अभ्यंग का पूरा लाभ दिला सके । कमजोर, दर्द पीड़ित, रोगी व्यक्तित्व वाले चिकित्सक अभ्यंग चिकित्सा नहीं कर सकते इसलिए। शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति ही अभ्यंग करना चाहिए।

6. योग्यता एवं सकुशल

अध्ययन करने वाले व्यक्ति को पूरी तरह से अभ्यंग से संबंधित ज्ञान में कुशल और योग्य होना चाहिए। वह शाब्दिक ज्ञान एवं व्यवहारिक ज्ञान दोनों से परिपूर्ण होना चाहिए । तभी वह अच्छे से अभ्यंग चिकित्सा कर सकता है।

8. स्वच्छता संबन्धी आवश्यक बातें

अध्ययन करने वाले व्यक्ति को हमेशा हाथों से संबंधित स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए । नाखून कटे होने चाहिए , हाथों में किसी प्रकार से कोई कड़ा, घड़ी, अंगूठी आदि कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। हाथ पूरी तरह से साफ होने चाहिए । अभ्यंग करने से पूर्व हाथों को अच्छी तरह से साबुन से धूल लेना चाहिए। इसके साथ ही साथ धूम्रपान से रहित होना चाहिए, नशा आदि मादक द्रव्यों का सेवन से रहित होना चाहिए, और अभ्यंग का तेल अभ्यंग की जगह, अभियान का कक्ष और अभ्यंग से संबंधित टेबल पूरी तरह से साफ होनी चाहिए।

9. भावनाशील

अभ्यंग करने वाले व्यक्ति को पूरी तरह से भावनाशील होना चाहिए। वह रोगी के प्रति सेवक की भांति उसकी अभ्यंग चिकित्सा करनी चाहिए । वह सिर्फ इसे एक व्यवसाय ना मानकर सेवा भाव से परिपूर्ण होकर एक चिकित्सा के रूप में चिकित्सा देनी चाहिए।

10. लिंग आधारित समानता

अभ्यंग चिकित्सा हमेशा सामान्य लिंग के व्यक्तियों को ही करनी चाहिए। यदि अभ्यंगकर्ता पुरूष वर्ग का है तो वह पुरुष वर्ग के ही रोगी को अभ्यंग करे। यदि अभ्यंगकर्ता महिला तो वह महिलाओ का ही अभ्यंग करे

12. संवेदनशीलता का गुण

अभ्यंग करता के अंदर संवेदनशीलता का गुण होना चाहिए। तभी वह सामने वाले व्यक्ति के दर्द और पीड़ा को महसूस कर सकता है । यदि अभ्यंग करते समय रोगी को किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव होता है । तो उसके प्रति तुरंत से संवेदनशील होकर उसकी रक्षा करते हुए उसकी चिकित्सा का लाभ देना चाहिए।

11.6 अभ्यंग चिकित्सा में प्रयुक्त तेल

भारतीय अभ्यंग चिकित्सा में मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के तेलों का उपयोग किया जाता है। जिसमें वात नाशक तेल, दर्द निवारक तेल, शरीर को ठंडक पहुंचाने वाला तेल ,शरीर को गर्म उत्पन्न करने वाले तेल , आदि का प्रयोग किया जाता है। आइए हम विभिन्न रोगों में प्रयुक्त होने वाले अभ्यंग के लिए तेल के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. जैतून का तेल

कमजोर व्यक्तियों की नसों को उत्तेजित करके रक्त के संचार को बढ़ाने और शरीर को उष्णता पहुंचने के उद्देश्य से जैतून के तेल का प्रयोग किया जाता है। जैतून का तेल पित्त वर्धक होता है। यह वात को नाश करके जोड़ों के दर्द, कमर दर्द ,बदन दर्द व बुजुर्ग रोगियों के उपचार के लिए किया जाता है। यह तेल बच्चों के लिए भी काफी लाभकारी होता है। बच्चों की मांसपेशियों को मजबूत अस्थियों को मजबूत करने में विशेष लाभकारी है।

2.नारियल का तेल

नारियल का तेल प्राकृतिक रूप से ठंडा होता है। जिसका उपयोग शरीर की त्वचा को चमकदार और शरीर की ऊपरी त्वचा की खुरदर्ता को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। यह तेल गर्मियों के दिनों में काफी उपयोगी है। इससे शरीर के वात व पित्त रोग दूर होते हैं। और कफ की वृद्धि करके दुबले पतले रोगियों के रोग को उपचार करने में सहायक है । तथा बालों के लिए भी यह काफी लाभकारी माना गया है।

3.बादाम का तेल

यह प्रकृति रूप से गर्म होता है। जो शरीर की त्वचा रोगों और सूजन इतिहास में काफी लाभकारी है। यह शरीर की त्वचा के साथ–साथ सर दर्द बदन दर्द रोगों में काफी लाभकारी है। इसका उपयोग नीले रंग की बोतलों में बंद करके उसे सूर्य के प्रकाश से समाहित करके उपयोग करना चाहिए।

4.तिल व सरसों का तेल

तिल और सरसों का तेल प्रकृति रूप से पित्त वर्धक होता है। जो शरीर के पाचन इत्यादि के लिए काफी लाभकारी है। इसका उपयोग कफ रोग को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। यह मोटे व्यक्तियों पर मालिश के रूप में उपयोग करके उनके मोटापे आदि को दूर करने में अधिक लाभकारी है। इसका उपयोग उत्तरी भारत में खाद्य रूप में भी उपयोग किया जाता है। सर्दी आदि से उत्पन्न रोगों को दूर करने में काफी लाभकारी है।

5.अरंडी का तेल

अरंडी का तेल मालिश चिकित्सा के लिए भी काफी उपयोगी माना गया है। यह जोड़ों के दर्द घुटनों अर्थराइटिस व शरीर की चुभन जैसी पीड़ा से निवारण करने के लिए काफी उपयुक्त माना गया है । इसका उपयोग शरीर की दर्द निवारक के रूप में भी किया जाता है। यह पित्त वर्धक माना गया है।

6. पिपरमिंट का तेल

शरीर की गर्मी को दूर करके शरीर को ठंडक पहुंचाने के उद्देश्य किया जाता है। पिपरमेंट का तेल प्रकृति रूप से काफी अधिक ठंडा होता है। और इसका उपयोग गर्मी के दिनों में त्वचा रोग व गर्मी से बचने के लिए किया जाता है। इस तेल का उपयोग सीधे तौर पर शरीर पर नहीं किया जाता है। इस तेल का उपयोग करने के लिए हल्की मात्रा में पिपरमेंट का तेल लेकर उसे अन्य तेलों के साथ मिलाकर शरीर पर उपयोग किया जाता है।

7.तुलसी का तेल

तुलसी का पौधा भारत के सभी घरों में पाए जाने वाला एक दिव्य औषधि गुणों से युक्त पौधा होता है ।पिपरमेंट के तेल की तरह ठंडा और स्वस्थ वृद्धि से काफी लाभकारी होता है।यह गुणों के आधार पर सात्विक होता है। और प्रकृति के आधार पर यह ठंडा होता है। इसका भी उपयोग अन्य तेलों के साथ मिलाकर शरीर रोगों को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है।

8.आयुर्वेदिक औषधि तेल

आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार विभिन्न प्रकार की औषधि को मिलाकर तेल बनाया जाता है। और उस तेल से अभ्यंग किया जाता है। आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार की औषधियों के बीजों, उनकी छालों , उनकी पत्तियां आदि को तेल में उबालकर , आर्युवेदिक तेल को तैयार किया जाता है। और उस तेल का उपयोग शरीर के विभिन्न रोगों को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। जिसमें महानारायण तेल, नारायण तेल पंचगुण तेल, गोमय में तेल आदि प्रमुख माने गए हैं । इनका उपयोग हम मालिश चिकित्सा के रूप में भी कर सकते हैं।

अभ्यंग चिकित्सा कक्ष

अभ्यंग नियमो के साथ–साथ मालिश कक्ष की व्यवस्था पर भी ध्यान देना चाहिए।

1.अभ्यंग चिकित्सा हेतु कक्ष का साफ–सुथरा, हवादार व सुरक्षित स्थान होना चाहिए।

2.अभ्यंग चिकित्सा का स्थान कोलाहल आदि से रहित होना चाहिए।

3.अभ्यंग चिकित्सा के कक्ष में सूर्य का प्रकाश उचित रूप में मिलता रहे।

4.अभ्यंग चिकित्सा के स्थान पर स्वच्छ जल की उचित व्यवस्था भी होनी चाहिए।

5.अभ्यंग चिकित्सा को जमीन या तखत पर बिछे कम्बल वस्त्र का साफ होना चहिए ।

11.7 विभिन्न रोगों में अभ्यंग का उपयोग एवं सावधानियां

अभ्यंग चिकित्सा स्वास्थ्य संवर्धन के लिए एक महत्वपूर्ण चिकित्सा के रूप में मानी जाती है आयुर्वेद में अध्ययन समस्त क्रियो को करने से पूर्व भी किया जाता है या शरीर की समस्त क्रियो को क्रियाशील बनाने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्रिया है अभ्यंग शरीर के समस्त रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ और समन्वित समुचित बनाने में अधिक लाभकारी है इसके निम्नलिखित लाभ मिलते हैं।

1.सिर के सभी ऊर्ध्वजत्रुरोगोपचार में अभ्यंग

शिरो अभ्यंग के द्वारा कान ,आंख, नाक और सिर से संबंधित सभी रोगों का नाश अभ्यंग के द्वारा किया जा सकता है। जिसमें सिर प्रदेश की तेल आदि के माध्यम से अभ्यंग करके नेत्र संबंधित विकार, सिर चकराना गला खराब होना, स्वर यंत्र की खराबी, कानों का बजना टॉनसिलाइटिस, बहरापन, आंखों का संक्रमण, रतौंधी, दूर दृष्टि दोष एवं निकट दृष्टि दोष आदि रोगों को दूर किया जा सकता है। तेल का उपयोग आयुर्वेदिक औषधि और व्यक्ति की समस्या के अनुसार चयन किया जा सकता है।

सावधानियां

तेल से शिरो अभ्यंग करने पर आंख का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सर के अभ्यंग में मुख्ता बालों को तेल के माध्यम से अभ्यंग करना चाहिए और मस्तिष्क चेहरे आदि को धीरे–धीरे सावधानी पूर्वक अभ्यंग कराना चाहिए।

2.श्वसन से संबंधित रोगों के उपचार में अभ्यंग

अभ्यंग हमारे श्वसन तंत्र के समस्त रोगों को दूर करने में बहुत ही लाभकारी है। साइनोसाइटिस, दमा , सर्दी , खांसी, जुकाम, नाक से खून बहाना , नाक में संक्रमण आदि सभी के उपचार में काफी लाभकारी है। स्वसन तंत्र की समस्या जब होती है तब संपूर्ण शरीर की मालिश करने से रक्त का संचार तेजी से होता है। और स्वसन से संबंधित सभी प्रकार की समस्याओं का भी निदान होता है। क्योंकि रक्त नस नाड़ियों के माध्यम से हमारे फेफड़ों में जाकर समस्त रोगों की दूर करता है।

3.त्वचा संबंधित रोगों में अभ्यंग

जब व्यक्ति के शरीर में विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उनको दूर करने के लिए विभिन्न रोगों में अभ्यंग का उपयोग किया जाता है।

क्योंकि त्वचा रोग पेशीय तंत्र की विकृति के कारण उत्पन्न होती हैं। जिनमें ल्योकोडर्मा, खाज, खुजली कीड़े मकोड़े आदि के काटने पर, फोड़े फुंसियां, कील, मुंहासे त्वचा की सामान्य गर्मी, कटे और जलनशील घाव आदि के उपचार में उपयोगी है त्वचा आदि की चमक बढ़ाने के लिए अभ्यंग चिकित्सा काफी लाभकारी मानी गई है।

सावधानियां

जब शरीर पर किसी प्रकार का कोई ताज घाव या पस बन रहा हो, उस दौरान अभ्यंग चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। उसको पहले शल्य आदि के माध्यम से ठीक करके उसके बाद मरहम पट्टी करके उसे ठीक करना चाहिए। पूरी तरह से स्वस्थ होने के बाद ही अभ्यंग करना चाहिए। ताजे जले कटे और टूटे स्थान पर अभ्यंग चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

5.हृदय संबंधित रोगों में अभ्यंग

हृदय संबंधित सभी प्रकार के रोग जैसे उच्च रक्तचाप एवं निम्न रक्तचाप आशिक हृदयबद्धता , हार्ट अटैक , हृदय धमनी रोग, अनियमित हृदय गति संचालन, हृदय की सूजन, हृदय का फैलाव जन्मजात हृदय रोग, धमनी कठिन्य सभी प्रकार के रोगों में अभ्यंग चिकित्सा बहुत ही महत्वपूर्ण है। जब हम अभ्यंग करते हैं । तो हमारे संपूर्ण शरीर का रक्त का स्त्राव धमनियों से लेकर शिराओं तक सुचारू रूप से चलने लगता है। और हृदय की क्रियाशीलता बढ़कर अच्छे से कार्य करने लगती है। और सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं।

सावधानियां

उच्च रक्तचाप संबंधित रोगियों को ऊपर से पैरों की ओर अभ्यंग करना चाहिए तथा निम्न रक्त चाप वालों को नीचे से हृदय की ओर अभ्यंग करनी चाहिए।

6.प्रतिरक्षा तंत्र से संबंधित रोगों के उपचार में अभ्यंग।

प्रतिरक्षा तंत्र हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण तंत्र में से एक है। जो हमारी जीवनी शक्ति के विस्तार में सबसे अधिक सहायक है। प्रतिरक्षा तंत्र में किसी प्रकार से यदि विकृतियां उत्पन्न होती हैं। तो निश्चित रूप से शरीर पूरी तरह से बीमार और रोग ग्रस्त हो जाता है। और वह किसी प्रकार से कार्य करने योग्य नहीं रह जाता। इसलिए प्रतिरक्षा तंत्र का मजबूत होना अति आवश्यक है। जिसके अंतर्गत संक्रमण व सूजन धातु संबंधित रोग, रक्त विकार संबंधित रोग, त्वचा संक्रमण, नेत्र संक्रमण , स्वसन संबंधित संक्रमण, जठर उदर संबंधित संक्रमण, यकृत संक्रमण, थाइमस ग्रंथि से संबंधित रोग, प्लीहा आदि से संबंधित रोग की चिकित्सा हम अभ्यंग के द्वारा आसानी से कर सकते हैं। इन सबके लिए प्राकृतिक चिकित्सा सबसे उपयोग मानी गई है।

7.पाचन संस्थान संबंधित रोगों में अभ्यंग

जब कभी पाचन तंत्र से संबंधित रोग होते हैं , जिसमें उल्टी, दस्त, कब्ज, अपच, बवासीर, हर्निया, अल्सर, उदय दर्द , पेट में क्रीमी , उच्च कोलेस्ट्रॉल पित्त और अग्नाशय की अक्रियशीलता आदि की समस्या होने पर हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जिनके निदान के लिए उदर की

अभ्यंग चिकित्सा महत्वपूर्ण मानी गई है । जिसमें हम उदर की सभी पेशियों की अच्छे से औषधि और साधारण तेल से भी अभ्यंग चिकित्सा के द्वारा इस समस्या को ठीक कर सकते हैं। और जठराग्नि को तीव्र करके समस्त रोगों को दूर कर सकते हैं।

सावधानियां

- ऑपरेशन या वृक्क में पथरी होने की समस्या के दौरान अभ्यंग नहीं करना चाहिए।
- किसी प्रकार का ताजा घाव जख्म या जलन हो उसे दौरान भी नहीं करना चाहिए।

9. उत्सर्जन तंत्र एवं प्रजनन तंत्र से संबंधित रोगों के निदान में अभ्यंग चिकित्सा

हमारे उत्सर्जन तंत्र और प्रजनन तंत्र से संबंधित सभी प्रकार की विकृतियों के लिए अभ्यंग चिकित्सा काफी कारगर मानी गई है। जिसमें मूत्राशय में संक्रमण, गुर्दे की पथरी, ऋतु स्त्राव, महिलाओं में मासिक धर्म की समस्या, पुरुषों में नपुंसकता एवं महिलाओं में बांझपन ,गर्भाशय ग्रीवा की सूजन, डिम ग्रंथ की रसौली, गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना, या गर्भ का न ठहरना , पुरुष ग्रंथि का बढ़ जाना, गर्भवती स्त्री से संबंधित रोग आदि सभी में अभ्यंग चिकित्सा काफी लाभकारी मानी गई है। इन सबके लिए औषधि युक्त तेल का प्रयोग करके कमर के भाग को पूरी तरह से मालिश करना चाहिए। कमर के साथ–साथ हाथ पैरों और पूरे शरीर की मालिश करने से प्रजनन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र पूरी तरह से सक्रिय हो जाते हैं। और शरीर से मल निकालने में काफी सहायक होते हैं।

8.तंत्रिका तंत्र से संबंधित रोगों में अभ्यंग चिकित्सा

जब व्यक्ति की तंत्रिका तंत्र से संबंधित कोई भी समस्या होती है। उसको दूर करने के लिए अभ्यंग की क्रिया सबसे महत्वपूर्ण और लाभकारी मानी गई है। क्योंकि तंत्रिकाओं के विकृत होने पर शरीर की अंग प्रत्यंग अपना काम करना बंद कर देते हैं। जिसमें लकवा , मस्तिष्क शोध , मस्तिष्क का सुन्न पड़ जाना , मानसिक मंदता , सर का दर्द, सिर का भारी–भारी सा लगना, माइग्रेन अनैच्छिक और इच्छित गतिविधियों पर अनियंत्रण, पागलपन आदि सभी रोगों के उपचार में अभ्यंग सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि अभ्यंग से समस्त शरीर की मांसपेशियां और रक्त संचार तेजी से होता है। जिससे शरीर में रक्त संचारित होकर प्रत्येक शरीर की कोशिका तक जाकर उसे ऊर्जित कर उसे क्रियाशील बनाने का कार्य करता है। इसलिए लकवा जैसे संबंधित समस्याओं में भी अभ्यंग चिकित्सा सबसे लाभकारी प्रतीत होती है।

10. अंतः स्रावी संस्थान के रोगों हेतु अभ्यंग चिकित्सा

अंतः स्रावी ग्रंथियां की अनियमित के कारण विभिन्न प्रकार के शरीर में रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे थायराइड ग्रंथि का कम हो जाना या बढ़ जाना, जिससे शरीर की लंबाई, ऊंचाई आदि में अनियमितता आ जाती है। इस अनियमितता को दूर करने के लिए अंतः स्रावी ग्रंथि की क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए अभ्यंग सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। अभ्यंग हमारी सुषुप्त संस्थाओं को जागृत करने का कार्य करता है। जिससे सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं। इसके साथ–साथ पेनक्रियाज, थायराइड, शुक्र और डिम ग्रंथियां की क्रियाशीलता भी अभ्यंग के द्वारा बढ़ाई जा सकती है। और उनसे संबंधित सभी प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है।

11. अर्थराइटिस गठिया में अभ्यंग चिकित्सा

गठिया आज की समस्या होने पर अभ्यंग चिकित्सा करनी चाहिए। जिसमे वात नाशक रोगों से अभ्यंग चिकित्सा करके रोगों को दूर किया जा सकता है । और शरीर की क्रियाशीलता बनाई जा सकती हैं।

12. कब्ज के उपचार में अभ्यंग चिकित्सा

जब कब्ज की समस्या उत्पन्न होती है। तो उसे समस्या को दूर करने के लिए उदर से संबंधित पेशियां की तैलीय अभ्यंग चिकित्सा की जाती है। जिससे आंतो में जमा हुआ मल निष्कासित होकर शरीर से बाहर हो जाता है । और कब्ज जैसी समस्या से निजात मिलता है अतः इस प्रकार शरीर के समस्त अंगों प्रत्यङ्गो से उत्पन्न होने वाले रोगों में अभ्यंग चिकित्सा बहुत ही महत्वपूर्ण मानी गई है। जिसका लाभ प्रत्येक व्यक्ति आसानी से और सर्व सुलभ ढंग से ले सकता है। इसलिए अभ्यंग की शुरुआत बचपन काल से प्रारंभ कर देनी चाहिए।

11.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न– 1. वात जनित रोगों में मालिश की कौन सी विधि उपयुक्त मानी गई है?

अ. सूखी मालिश

ब. पाउडर मालिश

स. तैल मालिश

द. सभी

प्रश्न –2. मोटापे में कौन सी मालिश सबसे अच्छी मानी गई है?

अ. सुखी मालिश

ब. तैल मालिश

स. ठंडी मालिश

द. सभी

प्रश्न– 3. मालिश कितने चरणों में पूरी होती हैं ?

अ. 5

ब. 8

स.10

द. 11

प्रश्न– 4. मालिश में कौन सा तेल उपयोगी है है?

अ. सरसों तेल

ब. नारियल तेल

स. घृत

द. सभी

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. मालिश चिकित्सा मैं विभिन्न प्रकार के तेल का उपयोग किया जाता है।

प्रश्न–6. मालिश करने के बाद थकान महसूस होती है।

11.9 सारांश

प्रिय पाठको इस प्रकार हमने इस इकाई के अंतर्गत अभ्यंग के प्रकार एवं अभ्यंग की, विधि को विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त किया। अभ्यंग जो हमारे दैनिक जीवन में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता एवं थकावट को दूर करके शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए सबसे लाभकारी क्रियो में से एक है। जिसका उपयोग आयुर्वेद चिकित्सा से लेकर के योग चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सा बहुत ही महत्वपूर्ण बतलाया गया है। अभ्यंग हमारे शरीर के सभी शारीरिक तंत्रों को मजबूत एवं दृढ़ बनाकर शरीर को निरोग बनाने का काम करता है। अभ्यंग के कई प्रकार बताए गए हैं। जो समय, देश और वातावरण के आधार पर इसकी विधियों और प्रक्रियाओ को अपनाया गया। जिसमें अभ्यंग में , तेल अभ्यंग, सुखी मालिश , पाउडर मालिश , बिजली से मालिश, पांव से मालिश के साथ–साथ अनेकों प्रकार की अभ्यंग के प्रकार बताए गए हैं। अभ्यंग हमारे शरीर स्वस्थ संवर्धन के लिए काफी उपयोगी है, जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता एवं रक्त परिसंचरण को सामान्य बनाए रखते हैं।

अभ्यंग करने के लिए अभ्यंगकर्ता और अभ्यंग लेने वाले व्यक्ति को पूर्ण विश्वास के साथ–साथ इसके प्रति श्रद्धा भी होनी चाहिए। चिकित्सक को पूरी तरह से साफ सुथरा और मन, पवित्र विचारों से सकारात्मक होना चाहिए। तभी इसका सकारात्मक लाभ मिल सकता है। और जिस स्थान पर अभ्यंग किया जाता है वह स्थान पूरी तरह से प्राकृतिक तत्वों से परिपूर्ण हो वहां जल की व्यवस्था पूर्ण हो, सूर्य का प्रकाश हवा का आदान–प्रदान आसानी से हो सके।अभ्यंग के लिए विभिन्न प्रकार के तेलों का उपयोग करके शरीर के रोगों को दूर करने के लिए अभ्यंग की जानकारी और इसके ज्ञान और व्यावहारिक पक्ष को पूरी तरह से अच्छे किसी कुशल मार्गदर्शन में सीख कर ही इसका उपयोग करना चाहिए। तभी यह अभ्यंग चिकित्सा सफल मानी जाएगी। यह अभ्यंग हमारे बचपन से लेकर मृत्यु तक के जीवन में प्रतिदिन की जिंदगी में किसी न किसी रूप में उपयोग आता है। जो हमारे शरीर के सभी रोगों को दूर करके शरीर को स्वस्थ और दीर्घायु जीवन प्रदान करता है।

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 स. तैल मालिश

प्रश्न –2 अ. सुखी मालिश

प्रश्न –3 ब. स्वासन तन्त्र

प्रश्न –4 द. 11

प्रश्न –5. सत्य

प्रश्न–6. असत्य

11.11 निबंधात्मक प्रश्न–

1. अभ्यग के प्रकारों एवं विधियों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. अभ्यग चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले तेल विस्तार से वर्णन करें।
3.विभिन्न रोगों में अभ्यंग चिकित्सा को लिखिए।
4. अभ्यंग की सावधानियों को विस्तार पूर्वक समझाइए।

11.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डा0 अनंत प्रकाश गुप्ता – शरीर रचना एव क्रिया विज्ञान।
2. सत्यपाल – वैज्ञानिक मालिश
3. प्रो० रामहर्ष सिह – स्वस्यवृत विज्ञान
4. राकेश जिन्दल – प्राकृतिक आयुर्विज्ञान
5. आचार्य बालकृष्ण – आर्युवेद सिद्धान्त रहस्य ।
6. डॉक्टर सरस्वती काला – प्राकृतिक चिकित्सा एक समग्र पद्धति

इकाई 12

उपवास का अर्थ, उपवास के चिकित्सीय लाभ, उपवास सम्बन्धी भ्रामक धारणायें, उपवास के नियम, उपवास के प्रकार–दीर्घ, लघु, पूर्ण, अर्थ जल उपवास प्राकृतिक आहार, रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 उपवास का अर्थ एवं महत्व

12.4 उपवास सम्बन्धी भ्रामक धारणायें

12.5 उपवास के नियम

12.6 उपवास के प्रकार

12.7 प्राकृतिक आहार, रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.9 साराश

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठको प्रस्तुत इकाई में हम आकाश तत्व की चिकित्सा के अंतर्गत उपवास चिकित्सा के बारे में विस्तृत पूर्वक जानकारी प्राप्त करेंगे। उपवास हमारे जीवन की वह इकाई है। जो शरीर को समस्त रोगों से रोगों को दूर करके जीवन में नई चेतना का विकाश कर शरीर को स्वस्थ और दीर्घायु प्राप्त प्रदान करती है उपवास में हम अपने पाचन संस्थान को आराम प्रदान करके रोगों को भूखा मरने के सिद्धांत पर इस

चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। जब शरीर में किसी प्रकार का भोज पदार्थ ग्रहण नहीं किया जाता है तब शरीर की विजातीय द्रव्य पूरी तरह से शरीर की जठराग्नि में जलकर धीरे–धीरे दूर होने लगते हैं। उपवास का प्रयोग हमारे प्राचीन कर प्राचीन काल से ऋषि मुनियों के द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया है। जिसे लंघन के नाम से भी जाना जाता है । जब किसी प्रकार से कोई व्यक्ति बीमार होता है। तब उसके रोग को दूर करने के लिए उसे कुछ समय के लिए भूखा रखा जाता है। साथ ही साथ रोगी की स्थिति के आधार पर उसे खान–पान के रूप में फल, रस, जल, दूध, दही, छाछ आदि के माध्यम से उपवास कर कर उसके रोगों को दूर किया जाता है। पाठको इस इकाई के अंतर्गत उपवास के अर्थ और महत्व के साथ–साथ उपवास से संबंधित भ्रामक अवधारणाएं क्या–क्या उत्पन्न होती हैं? उनको कैसे दूर करें? प्राकृतिक आहार के माध्यम से अपने रोगों का निवारण करके हम संतुलित आहार के माध्यम से अपने शरीर को स्वास्थ्य संबंध कैसे बना पाएंगे? इसकी जानकारी इस इकाई के अंतर्गत हम विस्तार से पढ़ेंगे।

12.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों इस इकाई के अंतर्गत में आप सभी को

- उपवास के महत्व की जानकारी प्राप्त होगी।
- उपवास के नियम और उनके प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- उपवास के प्रभावों एवं उपवास से रोग निवारक जानकारी प्राप्त होगी।
- उपवास से संबंधित भ्रामक अवधारणाओं की सत्यता की जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.3 उपवास का अर्थ

उपवास उपवास चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा के आकाश तत्व की शुद्धि के लिए की जाने वाली चिकित्सा पद्धति है। जो प्रकृति में सभी जीव, जंतु, पेड़, पौधे सभी किसी न किसी रूप में उपवास की प्रक्रिया को अपनाते हैं। और अपने जीवन को स्वास्थ्य पूर्वक जीते है। प्रकृति में सभी जीवधारियों को उपवास की आवश्यकता किसी न किसी रूप में जरूर पड़ती है। क्योंकि उपवास रोग मुक्ति का प्रबल साधना पद्धति है। क्योंकि उपवास काल में शरीर की सारी ऊर्जा शक्ति सिर्फ रोग को दूर करने में लग जाती है। जिससे शरीर निरोगी बनकर शक्तिशाली बनता है। सिर्फ भोजन को बंद कर देना किसी प्रकार से अन्य या जल को ग्रहण न करना ही उपवास नही है यदि उपवास के दौरान हम कुछ ना फल फूल या पीने वाला फल, रस, दुग्ध , आदि का सेवन करते हैं ।तो वह उपवास नहीं कहलाएगा। उपवास का सम्बन्ध शरीर के संपूर्ण विकास से है। आहार ग्रहण न करके आहार तंत्र को आराम दिलाना उपवास है।

उपवास का शब्दार्थ ही बहुत व्यापक है। उपवास दो शब्दों से मिलकर बनता है। (उप + वास= उपवास), उप का अर्थ है समीप तथा वास का अर्थ है निवास करना , आदि से मिलकर बना है। जिसका समान्य स अर्थ होता है, कि स्थित अर्थात 'स्व' में स्थित होना। यही उपवास है। पाचन तंत्र और उपवास का स्वास्थ्य से सह–सम्बन्ध है। अग्रेजी भाषा में उपवास को (फास्टिंग) कहा जाता है। जो शब्द फास्टेन से बना है। जिसका अर्थ दृढ निश्चय होकर संकल्प के प्रति दृढ़ता है। दृढ निश्चय पूर्वक शरीर एवं आत्मषोधन के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्ति का प्रयत्न ही उपवास कहलाता है। उपवास से शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक स्वच्छता बढ़ती है। और सभी प्रकार के लाभों की भी प्राप्ति होती है।

उपवास की परिभाषा–

- **डा० हेनरी लिंडलार के शब्दो में।**

'प्रकृति चिकित्सा की रोग निवारण की जो वह प्रक्रिया जिसमे रोगों को भूखा मारकर दूर किया जाता है। उनमे उपवास उपवास बहुत प्रभावशाली है।

- **सूर्य पुराण के अनुसार**

उपवास की साधनाएं, भगवान विष्णु व शिव की प्राप्ति का साधन है।

जो विचारो की शुद्धि और मन को पवित्र करते है।

- **गीता के अनुसार**

विषया विनिवर्तन्ते निराहारसय देहिनः

अर्थात विषयों से मुक्त करने वाला यह उपवास देह को शुद्ध भी करता है। और विषयों से मुक्त भी करता है।

- **महर्षि चरक के अनुसार**

किसी प्रकार से भी ठोस द्रव भोज्य पदार्थ का शरीर में ग्रहण न करना ही उपवास है।

- **प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास**

पाचन संस्थान को पूरी तरह से विश्राम करना ही उपवास है। जिसमें किसी प्रकार से अन्य जल , ठोस, द्रव भोज्य पदार्थों को ग्रहण न किया जाए और शरीर के पाचन संस्थान को पूरी तरह से आराम दिया जाए यही उपवास है।

- **महर्षि सुश्रुत के ग्रन्थों में**

  उदर को निराहार रखना ही उपवास है जो हमारे शरीर को शुद्ध करके रोगों से मुक्त करने का एक सरल उपाय भी है

- **आचार्य श्रीराम शर्मा के शब्दो में।**

  उपवास व्यक्ति के शारीरिक मानसिक रोगों को दूर करके विचारों को शुद्ध करता है और साथ ही साथ उत्पत्तिकाओं का शोधन करके शरीर की चेतनात्मक शक्ति को विकसित शरीर और विचारों को निर्मल बनता है।

उपवास का स्वरूप

उपवास प्राणी के जीवनी शक्ति बढ़ाने में सबसे अधिक सहायक है मानव के शरीर में विभिन्न प्रकार की पाचन क्रियाएं स्वत रूप से निरंतर चलती रहती हैं उनमें भोजन की भी प्रक्रिया चलती रहती है जब हम अन्न को ग्रहण करते हैं। तब वह पाचक रसों के द्वारा पचाकर सप्त धातुओं में परिवर्तित होकर शरीर को पोषण प्रदान करता है। और उसे पोषण के पश्चात हमारे शरीर में अनेक अपाच्य और दूषित पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं।वे विजातीय द्रव्यों के रूप में जमा होने लगते है। जब विजाती द्रव्य शरीर से निकल नहीं पाते हैं। तब हमारे शरीर में रोगों का घर बना लेते हैं। इसलिए मलों के साथ–साथ विजातीय द्रव्यों का निष्कासन भी आवश्यक है। लेकिन इस प्रक्रिया में शरीर को उपवास के माध्यम से शुद्ध और निर्मल किया जा सकता है। उपवास काल में मल निष्कासन की प्रक्रिया बहुत ही तेजी से होती है। जिससे शरीर में समस्त विजाती द्रव्य तेजी से शरीर से बाहर निकलते हैं। विजाती द्रव्य पदार्थ शारीरिक की निष्कासन क्रिया के द्वारा स्वत ही धीरे–धीरे निकालकर शरीर को समस्त रोगों से मुक्त कर जीवनी शक्ति को बढ़ाने में सहायता प्रदान करते हैं। प्राचीन काल में उपवास को दैनिक जीवन में धार्मिक कार्यों से जोड़कर इसको अपनाया जाता था। जिसमें एक दिन या एक समय, घर में विवाह , त्योहार , विशिष्ट पूजा आदिकाल के अवसरों पर व्यक्ति को उपवास कराया जाता था। जिसमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक लाभों को प्राप्ति एवं रोगों के निवारण के लिए विभिन्न विभिन्न प्रकार के उपवासों को अपनाया जाता था। यह आध्यात्मिक और मानसिक विचारों को पवित्र और सकारात्मक बनाने की अचूक प्रक्रिया है। साथ ही साथ उपवास शारीरिक रोगों का निवारण में भी प्रयोग किया जाता है। उपवास से सभी प्रकार के होने वाली पीड़ाओं जैसे पित्त के विकार, उदर संबंधित रोग, हृदय संबंधित रोग , त्वचा और मांसपेशियों से संबंधित रोगों में काफी लाभकारी है। क्योंकि अन्न से अन्नमयकोष भी निर्माण होता है। अन्न रसेनभूत्वा अर्थात अन्य के रस से ही भूतों का निर्माण होता है। और उन भूतों के निर्माण होने के साथ–साथ उनकी सुरक्षा व्यवस्था भी हमें करनी चाहिए। जिसको हम उपवास के माध्यम से मजबूत समुन्नत बना बनाते हैं। उपवास सभी

प्रकार के बुखार, तीव्र ज्वार, गठिया , दम मधुमेह, काम, क्रोध , लोभ , मोह , दम , द्वेष, ईर्ष्या सभी प्रकार के मानसिक नकारात्मक विचार एवं वासनाएं आदि को दूर करने में काफी लाभकारी है । उपवास प्राणी को हमेशा प्रसन्नचित और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनता है। और उत्साह, साहस, धैर्य, आत्मज्ञान जैसी दिव्या साधनाओं की उपलब्धि भी करता है । इससे संबंधित सभी प्रकार के नियमों को अच्छे से भली प्रकार किया जाए , तो इसका बहुत ही अच्छा परिणाम मिलता है । यदि गलत तरीके से किया जाए तो उपवास के कई हानियां भी देखने को मिलती हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में व्रत उपवास को लंघन के नाम से जाना जाता है । धार्मिक कार्यों में व्रत, उपवास आदि को बहुत ही महत्वपूर्ण बताया गया है । जब वर्ष की शुरुआत होती है तब नवरात्रि के दिनों 9 दिन के लिए, साप्ताहिक उपवास ,आदि के माध्यम से एकादशी , द्वादशी, अमावस्या , पूर्णिमा के दिनों में व्रत का विधि विधान बताया गया है। इन उपवासों में हम फलाहार निर्जल रस दूध, छाछ आदि का उपयोग करके हम अपने आहार तंत्र को सशक्त और क्रियाशील बना सकते हैं यदि चिकित्सा की दृष्टि से देखा जाए तो पूरी तरह से निराहार रहना ही उपवास है। जो हमारे शरीर की शुद्ध करता है किंतु चिकित्सा और रोगी के व्यवहार और उसकी स्थिति के अनुसार उपवास की विधियां, उपवास के प्रकार, उपवासों का अलग–अलग विधान बताया गया है। शरीर की वृद्धि शरीर का अत्यधिक बढ़ा हुआ कफ पित्त इन सबको दूर करने के लिए अलग–अलग उपवास बताए गए हैं। शरीर में बड़ी विजाती द्रव्यों को और शरीर से मल पदार्थ को दूर करने के लिए उपवास बहुत ही अचूक चिकित्सा बताई गई है । उपवास से कफ पित्त के विकार दूर होते हैं। उपवास हमेशा स्वस्थ और समन्वित शरीर से संबंधित व्यक्ति को ही करना चाहिए। मदिरापान दुर्बल कामुक नित्य यात्राशील और अधिक शारीरिक मेहनत करने वाले व्यक्तियों को उपवास नहीं करना चाहिए। बलशाली शरीर वाले और शरीर में जमे कफ पित्त रक्त मल आदि अधिक मल जमा हो उत्पन्न हो रहा हो उन सबको निष्कासित करने के लिए उपवास अति आवश्यक है। मन , हृदय रोग, कब्ज , बुखार, अतिसार, शरीर में भारीपन, अरुचि आदि रोगों से ग्रसित लोगों में उपवास की चिकित्सा अधिक लाभकारी सिद्ध मानी गई है । उन सब की पाचन क्रिया को प्रशस्त करने के लिए रोगों को दूर करने के लिए उपवास कराया जाना चाहिए इसके अतिरिक्त कफ , त्वचा रोगी , वात, गठिया रोगी और ऋतुरोगी को उपवास चिकित्सा करानी चाहिए। उपवास के महत्व के बारे में यदि बात की जाए तो महर्षि चरक, महर्षि घेरण्य , महर्षि सुश्रुत आदि ऋषियों ने उपवास के बहुत सारे महत्व का वर्णन किया है। उपवास सभी प्रकार के रोगों के लिए पर्याप्त चिकित्सा के रूप में काफी लाभकारी है ।

आचार्य श्रीराम शर्मा

उपवास के महत्व के बारे में बताते हुए मन के को विचारों दुर्भावनाओं को दूर करने के लिए उपवास सबसे अधिक लाभकारी बताया है। आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने पांच प्रकार के उपवास बताएं जिनमें बहुत सारे हैं लाभों की प्राप्त होती है। जिनमें पाचक, शोधन , शामक, आनक , पावक ।

- **पाचक उपवास**

  वे उपवास होते है, जो सभी प्रकार की कब्ज, अजीर्णता , कोष्ठबद्धता आदि, रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ प्रदान करते हैं ।

- **शोधन उपवास,**

  वे उपवास होते हैं। जो रोगों को भूखा मार कर उनको दूर करते हैं। इन्हें लंघन भी कहा जाता है । जो जठराग्नि को प्रदीप्त करके रोग स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं।

- **ष्षामक उपवास**

  वे उपवास होते हैं जो कुविचारों, मानसिक दुर्भावना , नकारात्मक चिंतन, मानसिक दुष्प्र प्रवृत्तियां एवं विकृत चिंतन आदि के मिटाने लिए किए जाते हैं।

- **आनक उपवास**

  वे उपवास होते हैं। जो किसी विशेष प्रयोजन के लिए किए जाते है जैसे देवी शक्ति की प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए, उनको आकर्षित करने के लिए, देवी देवताओं की पूजन के लिए किए, अनुदान वरदान के लिए किए जाते हैं।

- **पावक उपवास**

  वे उपवास होते हैं जो पापों की प्रायश्चित के लिए किए जाते हैं । आध्यात्मिक और मानसिक स्थिति को सुधारने के लिए यह उपयुक्त माना गया है। इसमें जब व्यक्ति के जीवन में कोई पाप हो जाता है। उसके पश्चात आपके लिए अपने शरीर को तप के माध्यम से इस उपवास का पालन करता है।

इन सभी उपवासों से शरीर की विभिन्न प्रकार की उत्पत्तिकाओं और कोशिकाओं की शुद्धि होती है। तांत्रिका तंत्र सक्रिय रूप से कार्य करता है। इन सभी प्रकार के उपवास शरीर की शुद्ध कर मन को विचारों को पवित्र कर शरीर को निर्मल और स्वस्थ बनाकर दीर्घायु की प्राप्ति करते हैं। आयुर्वेद के आचार्यों का मानना है। कि आमाशय में स्थित सभी प्रकार के दोष , जठराग्नि को मंद कर देते हैं। और मंद जठराग्नि के कारण खाये गए खाद्य पदार्थों का पाचन अच्छे से नहीं हो पता है । जिसके कारण विभिन्न प्रकार की गैसें बनती है और अम्लता के कारण, अपच भोजन पेट में सड़ने लगता है। और कब्ज का रूप धारण करके समस्त शरीर को रोग ग्रस्त बना देता है। इसलिए उपवास के द्वारा जठराग्नि को प्रदीप करके समस्त शरीर के रोगों को उपवास के माध्यम से दूर किया जा सकता है । किंतु उपवास करने में हमेशा सावधानी

आवश्यक बरतना चाहिए । किसी योग्य प्रशिक्षक और उपवास चिकित्सक के निर्देशन में ही उपवास प्रक्रिया करनी चाहिए ।

उपवास के चिकित्सीय लाभ

उपवास हमारे संपूर्ण शरीर पर प्रभाव डालता है। क्योंकि उपवास का संबंध हमारे पाचन तंत्र से है। पाचन तंत्र हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण तंत्र में से एक है। क्योंकि पाचन प्रक्रिया जब शुद्ध और दृढ़ होती है। तब हमारे शरीर की समस्त क्रियाएं सुचारू रूप से चलती हैं । यदि किसी प्रकार से पाचन क्रिया असंतुलित होती है। तो पाचन से ही समस्त शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं और विजाती बन कर हमारे शरीर की जीवनी शक्ति कमजोर होकर शरीर बीमार पड़ जाता है। इसलिए उपवास का सबसे अधिक पाचन पर तंत्र प्रभाव पड़ता है।

1. पाचन तंत्र पर प्रभाव

शरीर को गतिशील और सक्रिय रूप बनाए रखने के लिए भोजन की आवश्यकता पड़ती है। जब संतुलित आहार , सुपाच्य आहार को ग्रहण किया जाता है। तब पाचन तंत्र अच्छे से कार्य करके उसे सप्त धातुओं में परिवर्तित कर शरीर का पोषण करता है। यदि किसी प्रकार से हमारे शरीर में दूषित आहार को ग्रहण कर लेते हैं। तब उसके सही से पाचन ना हो पाने के कारण अनेकों प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। और हमारे शरीर में कब्ज के साथ–साथ रक्त विकार और त्वचा सम्बंधी विकार उत्पन्न होकर शरीर रोगों से ग्रसित हो जाता है। उस दौरान हम उपवास का जब प्रयोग करते हैं। तब हमारे पाचन संस्थान को आराम मिलता है। और पाचन तंत्र के आराम मिलने से जब जठराग्नि तीव्र होती है। और शरीर के समस्त विजाती द्रव्यों का निष्कासन अच्छे से हो जाता है। और शरीर हमारा स्वस्थ हो जाता है।

2.रक्त पर प्रभाव

जब हम उपवास करते हैं। तब उपवास के माध्यम से हमारे शरीर की पाचन प्रणाली सुचारू रूप से सक्रिय हो जाती है। तब हम उस दौरान यदि किसी प्रकार का खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं। तो वह अच्छे से पाचक रसों के माध्यम से बचकर रस से रक्त रूप में परिवर्तित हो जाता है। और हमारे शरीर की क्रियाशीलता को और रक्त परिसंचरण को स्वस्थ बनाए रखता है।

3.यकृत पर प्रभाव

उपवास काल में यकृत अच्छे से कार्य करता है । यूं कहे कि जब हमारे पाचन संस्थान आराम की अवस्था में होता है। तब यकृत की प्रक्रिया तेज हो जाती है। और अधिक पित्त निकलने से अजीर्ण , कब्ज, दस्त आदि रोगों के उपचार में काफी लाभकारी है।

4.उत्सर्जन एवं प्रजनन तंत्र पर प्रभाव

उपवास का हमारे उत्सर्जन और प्रजनन तंत्र पर काफी प्रभाव पड़ता है। उत्सर्जित करने वाले शरीर के सभी प्रकार के अंग सक्रिय रूप से कार्य करने लगते हैं। जब हम उपवास करते हैं । तब किसी न किसी एक फल, रस या आहार को लेते हैं। इससे शरीर की ऊर्जा कम मात्रा में खर्च होती है और वह ऊर्जा हमारे अन्य अंगों को क्रियाशील बनाकर शरीर से विजाती द्रव्यों को निकाल कर शरीर को रोगों से बचाकर स्वास्थ्य प्रदान करती है। और हमारी मूत्र संस्थान और प्रजनन तंत्र पूरी तरह से स्वस्थ हो जाता है।

5.नाड़ी तंत्र पर प्रभाव

उपवास का हमारे नाड़ी तंत्र पर काफी प्रभाव पड़ता है। हमारी स्नायु पूरी तरह से स्वच्छ और शुद्ध होती हैं । योग की भाषा में इन्हें उपपत्तिकाएं कहा गया है। इन उपात्तिकाओ के शुद्धिकरण में सबसे उपयोगी उपवास चिकित्सा बताई गई है।

6.रोगों में लाभकारी उपवास

हमारे त्वचा रोगों में सबसे अधिक लाभकारी माना गया है। उपवास करने से त्वचा में जमने वाली वसा धीरे–धीरे कम हो करके दूर होती है। साथ ही हमारे शरीर के रोम छिद्र खुल जाते हैं। और शरीर से विजाती द्रव्य पसीने के माध्यम से अच्छे से निकलना शुरू कर देते हैं । इस उपवास से होने वाली शरीर में वसा रोम कूप के माध्यम से दूर हो जाती है। और हमारे शरीर से दुर्गंध और शरीर की ऊपरी त्वचा में फोड़े फुंसी आदि दूर होकर शरीर की त्वचा पूरी तरह से चमकीली हो जाती है।

7.शरीर के भार पर प्रभाव

उपवास का हमारे शरीर के भर पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है। जो अधिक मोटे और हट्टे कट्टे लोग होते हैं। जिनको अपना मोटापा कम करना हो उनके लिए उपवास सबसे अधिक प्रभावी माना गया है ।अपनी जीवनी शक्ति को ध्यान में रखते हुए मोटे व्यक्ति यदि दो से तीन दिन चार दिन एक सप्ताह एक महीने तक यदि आवश्यकता के अनुसार उपवास करते हैं। तो निश्चित ही उनके शरीर की वजन में काफी कमी आती है।

8.श्वसन रोगों एवं स्वसन तंत्र पर प्रभाव

शरीर में होने वाले सभी प्रकार के अस्थमा आदि की समस्याओं में उपवास काफी लाभकारी है। सभी प्रकार के उपवासों को यदि हम आवश्यकता के अनुसार किसी एक उपवास को पालन करते हैं। तो

निश्चित ही हमारे शरीर पर काफी इसका प्रभाव देखने को मिलता है ।और श्वसन प्रणाली हमारी तीव्र होती है। और समस्त रोग हमारे दूर होते हैं।

12.4 उपवास की भ्रामक धारणाएं एवं उपद्रव

आकाश तत्व की चिकित्सा के लिए उपवास सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। उपवास हमारे पाचन संस्थान को क्रियाशील बनाता है। और हमारे मन विचारों, इंद्रियों को शुद्ध और सकारात्मक बनाने का कार्य करता है। उपवास से हमारे विचार शांति और समन्वित होकर सकारात्मक बनते हैं। उपवास की बहुत सारी धारणाएं समाज में फैला दी गई । कई लोगों का मानना है, कि उपवास केवल किसी त्यौहार आदि के उपलक्ष में किए जाते हैं । उपवास से सिर्फ देवताओं की पूजन उपासना और उनकी कृपा की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं। किंतु उनको यह ज्ञान नहीं है कि उपवास हमारे स्वास्थ्य संवर्धन के उद्देश्य से किया जाता है। उपवास सभी प्रकार के प्राणी कर सकते हैं। जब हमारे शरीर में आहार और पाचन प्रणाली विकृत हो जाती है। उस दौरान उपवास के माध्यम से हम उसे सक्रिय बनाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। किंतु जब पूजा, त्यौहार आदि के उपलक्ष में उपवास किए जाते हैं। उस से पहले हमारे मन की वृत्तियां चंचल होकर बाहर जगत में विचरण करने लगती हैं। किंतु जब हम उपवास करते हैं। तब हमारी इंद्रियां पूरी तरह से आत्म नियंत्रण होकर प्रत्याहार की भूमिका निभाकर हमारे वशीभूत हो जाती हैं। और उस दौरान हम अपने जो भी धार्मिक पुण्य, कर्म करते है। उन कर्मो में हमारा मन सबसे अधिक लगता है। इसलिए उपवास शरीर शुद्धि के साथ–साथ अनंत कामनाओं धार्मिक पूजा पाठ उपासना आदि पद्धति से जोड़कर किए जाते हैं।

उपवास काल में होने वाले उपद्रव

उपवास काल के दौरान शरीर से विभिन्न प्रकार के विश पदार्थ शरीर के माध्यम से निष्कासन होते हैं। जो विभिन्न प्रकार की नकारात्मकता से भरे विचार, कामुकता से भरे विचार, और और विभिन्न प्रकार के खाये गए पदार्थ से बचने वाले किट्ट मल से उत्पन्न विषाक्त पदार्थों को भी निकलने का कार्य करता है। किंतु उपवास कल के दौरान हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के भ्रामक और उपद्रव उत्पन्न होते हैं। जिनको देखकर डरना नहीं चाहिए, उनकी उचित रूप से स्वास्थ्य संवर्धन के लिए उपयोग करके उनका सामना करना चाहिए।

उपवास कल के दौरान निम्नलिखित उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

1. ज्वर

उपवास काल के दौरान हमारे शरीर में सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों को कुछ समय के लिए ग्रहण नहीं किया जाता है। उस दौरान हमारे शरीर में एक साथ विजाती द्रव्य उसे जठराग्नि में जलकर शरीर से निकलने का प्रयास करने लगते हैं। उस दौरान हमारे शरीर में तापक्रम बढ़ जाता है। और तापक्रम बढ़ाने पर शरीर में हल्का सा बुखार उत्पन्न हो जाता है। इस दौरान अधिक से अधिक पानी पीना चाहिए और घर्षण स्नान के साथ–साथ गीली पट्टी का भी प्रयोग करना चाहिए।

2. चक्कर आना

उपवास कल के दौरान कई व्यक्तियों को चक्कर आने लगते हैं । क्योंकि जिनकी जीवनी ष्षक्ति कमजोर होती है। उनके शरीर में कारबोज की मात्रा भी कम होती है। और उपवास कल के दौरान यदि हम किसी प्रकार का खाद्य पदार्थ नहीं खाते हैं। और हमारे शरीर में कारबोज की मात्रा कम हो जाती है। जिसके कारण विभिन्न प्रकार के चक्कर आने लगते हैं। इसके साथ–साथ उपवास काल में हमारे उदर क्षेत्र में रक्त अधिक इकट्ठा हो जाता है। जिसके कारण मस्तिष्क को में रक्त की कमी आ जाती है। जिसके कारण पूरे शरीर में धीरे–धीरे चक्कर आने की समस्या पर जाती है।

3. सिर दर्द

उपवास काल में सिर दर्द की समस्या होना स्वाभाविक माना गया है। ऐसा इसलिए होता है। शरीर में विष पदार्थ की प्रक्रिया बहुत तीव्र हो जाती है। जिसके कारण शरीर में विभिन्न प्रकार की गैस से बनने लगते हैं। और पेट में बनने वाली गैसे सिर पर चढ़कर सिर दर्द उत्पन्न करने लगते हैं। इस स्थिति में हल्का गुनगुना पानी और एनिमा के साथ–साथ ठंडी पट्टी और गर्म पट्टी का लाभ लेना चाहिए ।

4.वमन

उपवास काल में अधिकांशत शरीर में उपस्थित विजातीय द्रव्य पूरे शरीर से पेट की ओर आ जाते हैं। और उनका निष्कासन अधों भाग से जब नहीं हो पता है। तब उनका निष्कासन मुख मार्ग से वहां के द्वारा होता है । इसलिए की समस्या देखने को मिलती है । ऐसी स्थिति में गुनगुना पानी पिलाना चाहिए। और पिलाने के पश्चात फिर उसे वमन के माध्यम से निकाल दें कुछ देर पश्चात हल्का सा शीतल जल पीला करके विश्राम करना चाहिए। यदि पेट की मांसपेशियां में ऐंठन उत्पन्न हो रही हो उसे दौरान गर्म पानी के साथ–साथ संतरा का रस भी पिला देना चाहिए।

5.हृदय शूल

उपवास कल के दौरान हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। जिसके कारण हमारे हृदय प्रदेश में भी दर्द की समस्या होने लगती है। और विभिन्न प्रकार की जब गैस से शरीर में बनती हैं । तब वह हृदय पर काफी विपरीत प्रभाव डालना प्रारंभ कर देती है।

6. नाड़ी गति का मंद होना।

उपवास कल के दौरान शरीर में रक्तचाप की मात्रा निम्न हो जाती है। जिसके कारण शरीर की नाड़ी गति भी सामान्य होकर मंद हो जाती है । जब अधिक नाड़ी स्पंदन करना बंद करें उसे दौरान उपवास को तोड़ देना चाहिए। और साथ ही गर्म जल का स्नान हल्का व्यायाम और शरीर पर मालिश करनी चाहिए। कभी–कभी लंबा उपवास करने पर पराया है। या देखा गया है कि नाड़ी गति तेज हो जाती है । क्योंकि उपवास काल के दौरान शरीर को विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। और जब पोषक तत्व नहीं मिल पाते हैं उस दौरान शरीर के विजाती द्रव्य का पाचन होने लगता है जिसके कारण नाड़ी गति तेज हो जाती है

7.शारीरिक दुर्गंध

उपवास कल के दौरान देखा गया है कि शरीर से पसीने आना प्रारंभ हो जाता है। और पसीने के साथ–साथ शरीर से दुर्गंध भी उत्पन्न होती है। यह ऐसा इसलिए होता है। क्योंकि जब उपवास किया जाता है। तब शरीर में विभिन्न प्रकार की गैस से और विजाती द्रव्यों का निष्कासन होता है। जिसके कारण शरीर में दुर्गंध उत्पन्न होती है। अनिद्रा उपवास कल के दौरान जब व्यक्ति किसी प्रकार के भोजन को ग्रहण नहीं करता है। उसे दौरान पाचन तंत्र पूरी तरह से निष्क्रिय होकर आराम की अवस्था में रहता है। जिसके कारण व्यक्ति में नींद की कमी आने लगती है। और नींद जब नहीं होती है उसे दौरान पूरी–पूरी रातें जागते जागते गुजर जाती है। और अनिद्रा की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

8.मूत्र अवरोध

उपवास कल के दौरान यहां भी देखा गया है। कि शरीर में पानी की मात्रा बहुत कम हो जाती है । जिससे मूत्र अवरोध की समस्या होने की काफी अधिकता बढ़ जाती है ऐसी स्थिति में व्यक्ति को अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार जल पीते रहना चाहिए।

12.5 उपवास के नियम

उपवास आकाश तत्व की शुद्धि के लिए की जाने वाली चिकित्सा है। जो हमारे पाचन संस्थान से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण मानी गई है। साथ ही साथ शरीर के सभी विकार, उपत्तिकाएं, नाड़िया के साथ साथ सभी शारीरिक संस्थानों की शुद्धि का सबसे उपयुक्त उपवास चिकित्सा को बताया गया है। इसके कुछ नियम और सावधानियां भी बतलाई गई है। आइए उपवास की सावधानियां एवं नियम को विस्तार से पढ़ें । उपवास के पूर्व की तैयारी जब भी कोई उपवास किया जाता है। तब उसके लिए पहले से तैयारी करना अति आवश्यक है। उपवास कोई भी हो वह नियम और सावधानी से यदि किया जाता है। तो निश्चित ही उसके विशेष लाभ परिणाम को देखा जाता है। इसलिए उपवास करने से पूर्व हमें अपने शारीरिक

रहन–सहन, खान–पान से संबंधित सभी पूर्व तैयारी को अच्छे तरीके से कर लेना चाहिए। उसके पश्चात उपवास की क्रिया को संपन्न करना चाहिए। पूर्ण उपवास के लिए तैयारी करना सबसे अधिक महत्व पूर्ण बताया गया है। जब उपवास को प्रारंभ करते हैं। तब कम से कम दो दिन पहले ही तैयारी कर लेनी चाहिए। उपवास के पूर्व के दो दिन पहले , हल्के सुपाच्य भोजन को ग्रहण करना चाहिए। जो शरीर के अनुकूल हो इस आहार को ग्रहण करना चाहिए।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी कहते हैं सीमित आहार को दो–तीन दिन लेने के बाद उपवास के पूर्व संध्या के दौरान भोजन न लेकर के फल आदि रस को ग्रहण करके उपवास को शुरू करना चाहिए। इससे फलों में विद्यमान विटामिन खनिज लवण सभी प्रकार के पोषक तत्व उपवास काल में सहायता प्रदान करते हैं। उपवास जब प्रारंभ हो जाता है। तब उचित मात्रा में अपनी क्षमता के अनुसार जल को ग्रहण करना चाहिए। और कम से कम 1 से 2 किलोमीटर प्रतिदिन भ्रमण करना चाहिए। साथ ही साथ एनिमा आदि की क्रिया को भी कर लेना चाहिए। जिससे हमारे आंतों से मल की सफाई सुचारू रूप से हो जाती है। यदि किसी प्रकार से कमजोरी, थकावट, महसूस होती है। उस दौरान नींबू और शहद के पानी को लिया जा सकता है। उपवास कल के दौरान तथा पूरा होने पर विश्राम करना चाहिए। उसके बाद जब उपवास को तोड़ना हो तो जिस दिन तोड़ना हो उसे दिन किसी भी प्रकार के फल रस सब्जी आदि के रस को ग्रहण करना चाहिए। तत्पश्चात अगले दिन हल्के सुपाच्य भोजन को लेना चाहिए। फिर उसके तीसरे दिन पूर्ण आहार को ग्रहण करके सामान्य दिनचर्या के रूप में आहार को ग्रहण कर लेना चाहिए।

उपवास तोड़ने के नियम

उपवास करना जितना सरल है। उपवास को तोड़ना कहीं उससे अधिक कठिन माना गया है। क्योंकि उपवास करने के समय किसी प्रकार की कोई हानि होने की संभावना नहीं रहती है। किंतु उपवास यदि नियम पूर्वक ना तोड़ा जाए तो उससे शरीर में अनेकों प्रकार की हानियां उत्पन्न हो सकती हैं। उपवास के दिनों में पाचन शक्ति पूरी तरह से कमजोर और दुर्बल हो जाती है।

छानदोग्योपनिषद में कहा गया है कि दीर्घ उपवास करने वाले व्यक्तियों की पाचन क्रिया बहुत ही हल्की हो जाती है। इसलिए उसकी समाप्ति के समय बहुत ही सावधानी के साथ हल्का भोजन के रूप में हरी सब्जी को उबालकर ग्रहण करना चाहिए। या किसी फल के रस को अथवा खिचड़ी आदि को खाकर उपवास को सामान्य करके तोड़ना चाहिए।

उपवास समाप्ति के निम्नलिखित प्रकार से करनी चाहिए।

- उपवास समाप्ति के पहले दिन आधा गिलास फलों का रस या उबली सब्जियों का रस एक–एक घंटे पर सुबह से शाम तक लेना चाहिए।

- दूसरे दिन एक गिलास फलों का रस प्रत्येक दो–दो घंटे के समय पर ग्रहण करना चाहिए फलों का रस या उबली हुई सब्जियां आदि के रस को भी ग्रहण कर सकते हैं।
- तीसरे दिन प्रातः काल नाश्ते के समय कोई एक फल संतरा, अनन्नास मौसमी, दोपहर के समय दो संतरे दो प्रकार के फल और शाम के समय तीन प्रकार के फल ले सकते हैं। संतरे के स्थान पर पका हुआ टमाटर या अंगूर या अनार आदि का सेवन भी किया जा सकता है।
- चौथे दिन प्रातः कालीन नाश्ते में नींबू या संतरा अल्प मात्रा में लेना चाहिए और साथ ही दो प्रकार के ताजे फल और दोपहर के भोजन में सब्जी , सलाद और उबली हुई सब्जी आदि के साथ–साथ रात्रिकालीन भोजन के समय खिचड़ी आदि का प्रयोग कर सकते हैं।
- पांचवें दिन सुबह के नाश्ते में फल सलाद पकी हुई दो हरी सब्जियां एक भुना या उबला हुआ आलू के साथ में रात्रिकालीन भोजन में फलाहार आदि को ग्रहण किया जा सकता है।
- छठे दिन पथ्यआहार के रूप में भोजन की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए तथा तरह–तरह की सब्जियां फल आदि को ग्रहण किया जा सकता है। उपवास करने वाला छठे दिन समान सभी प्रकार के आहार को ग्रहण करने योग्य हो जाता है ।

महात्मा गांधी के अनुसार उपवास आत्म शुद्धि एवं आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिए परम उपयोगी है। उपवास शारीरिक , मानसिक , विचार सभी प्रकार के विकारों को दूर करने के लिए एक महत्वपूर्ण चिकित्सा है। जो शरीर में सभी प्रकार के उपस्थित विजाती द्रव्यों को निष्कासन करने के संदर्भ में परम उपयोगी है। उपवास से पेट से संबंधित दर्द, गठिया, कब्ज, गैस, दमा , मोटापा आदि सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं।

12.6 उपवास के प्रकार

आकाश तत्व की चिकित्सा में उपवास सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है। उपवास शब्द से ही स्पष्ट होता है कि भोजन को त्यागने की प्रक्रिया अर्थात जिन–जिन माध्यमों से हम भोजन को त्याग कर अपने रोगों के उपचार में लाभ लेते हैं। उन्हें उपवास के प्रकार के रूप में बताया गया है। प्रिय पाठकों विभिन्न प्रकार के उपवास के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त करें।

1.प्रातः कालीन उपवास

यह सबसे सरल उपवास माना गया है। इसमें सिर्फ प्रातः काल के समय का नाश्ता को छोड़ दिया जाता है। और दिन के दोनों समय के भोजन को ग्रहण किया जाता है। इसे प्रातःकालिक उपवास के नाम से जाना जाता है। सुबह का नाश्ता छोड़ने के बाद केवल दिन और रात में दो बार ही भोजन ग्रहण किया

जाता है। इसके अलावा दिन में किसी प्रकार से कोई भी चीज ना खाई जाए। न ही किसी प्रकार का रस का उपयोग किया जाए सिर्फ जल का पान करते रहे। यह उपवास सूर्योदय से पहले उठकर नित्य कर्म करने के बाद संध्या, वंदन, पूजा उपासना, योग व्यायाम आदि करने के बाद किया जाता है । तब यह अधिक लाभकारी होता है।

2.सायंकालिक उपवास

इस उपवास में सिर्फ शाम और रात्रिकल के समय के आहार को त्याग किया जाता है। इसलिए इसे रात्रकालिक उपवास भी कहा जाता है। यह अधोपवास का कार्य करता है। दिन रात में केवल एक बार ही भोजन किया जाता है। देखा जाए तो हमारा दिन रात में केवल एक बार ही भोजन किया जाता है। परंतु वर्तमान समय में अधिक भागदौड़, भौतिक जिंदगी के कारण व्यक्ति की दिनचर्या पूरी तरह से विकृत होती चली गई । इसलिए उपवास की परंपरा को अधिक महत्व दिया जाने लगा। सायं कालीन उपवास दिन भर की थकावट खान–पान के बाद हम रात्रि में यदि भोजन नहीं करते हैं । और तब पूरी रात्रि के लिए पाचन तंत्र आराम मिलता है । तब हमारी पाचन प्राणली सुचारू रूप से सक्रिय होकर कार्य करती है। और जटिल रोग इस उपवास से दूर होते हैं । यह उपवास सुपाच्य और प्राकृतिक रूप से काफी अच्छा माना गया है

3.एकहारोपवास

इस प्रकार की उपवास में सिर्फ एक समय पर एक ही आहार को ग्रहण किया जाता है। मुख्यत सिर्फ एक समय में एक ही आहार का सेवन करना चाहिए। यदि सुबह के भजन में रोटी खाया है। तो रात्रि में सब्जी खाना चाहिए और फिर अगले दिन यदि सुबह दूध का सेवन किया है। तो दोपहर में किसी अन्य फल का उपयोग करना चाहिए और रात्रि में सिर्फ किसी एक ही आहार का सेवन आदि के माध्यम से इस उपवास को करना चाहिए। कहने का तात्पर्य है। कि सिर्फ एक समय में एक ही खाद्य पदार्थ को ग्रहण करना चाहिए। जैसे रोटी ,सब्जी ,दाल चावल, सलाद , खीर आदि जिस चीज का सेवन किया जा रहा हो उसे सिर्फ एक समय में एक ही वस्तु का सेवन करें।

4.रसो उपवास

यह उपवास किसी फल सब्जी आदि के रस पर आधारित होता है। इसकी यह विशेषता है। कि इसमें किसी प्रकार का ठोस खाद्य पदार्थ नहीं खाया जाता है। और ना ही फल का सेवन किया जाता है। इसमें साग सब्जियों के रस फलों के रस और विभिन्न प्रकार के औषधीय का काढ़ा आदि का सेवन किया जाता है। यह उपवास पेट को अधिक विश्राम देने के उद्देश्य किया जाता है । जब किसी को उल्टी, दस्त

आदि की अधिक समस्या होती है। उस दौरान इस उपवास का प्रयोग करना चाहिए। इस उपवास में दुग्ध, दही, छाछ आदि का सेवन भी निषेध माना गया है।

5.फलोपवास

यह उपवास फलों पर आधारित है। जैसे नाम से यह प्रतीत होता है। इसमें सिर्फ फलों का उपयोग किया जाता है। इसमें किसी फल, साग, सब्जी आदि का सेवन किया जाता है। जिससे आम, अनार, सेब , संतरा आदि फलों के माध्यम से उपवास किया जाता है। इसमें दिन में सिर्फ फलों का ही सेवन करके अपने शरीर को स्वस्थ और बलवर्धक बनाने के उद्देश्य किया जाता है। साथ ही साथ जिनके पेट में बहुत सारी विकृतियां उत्पन्न हो जाती है। उन सभी प्रकार की विकृतियों को दूर करने के लिए फल उपवास किया जाता है। यह फल मौसमी फलो के आधार पर किया जाता है। जिनका पाचन मौसम के अनुसार सुपाच्य हो सके और फलों से मिलने वाले विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करके शरीर को स्वस्थ बनाने में काफी लाभकारी है।

6.दुग्ध उपवास

यह दुग्ध पर आधारित उपवास है। इस उपवास को दुग्धकल्प के नाम से भी जाना जाता है । इस उपवास के अंतर्गत गाय के दूध आदि का 4 से 5 दिनों तक पीकर उपवास की प्रक्रिया को संपन्न की जाती है। गाय का दूध स्वस्थ और रोग निवारण के लिए काफी महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिए गाय का दूध मिल जाए तो बहुत ही अच्छा माना गया है। यदि गाय की उपस्थिति ना हो तो भैंस आदि के दूधों का भी सेवन किया जा सकता है। ध्यान रखना चाहिए कि यदि जानवर किसी प्रकार से रोग से ग्रसित है। बीमार है, उस दौरान उसे पशु का दूध उपयोग नहीं लाना चाहिए। इस उपवास की शुरुआत प्रातः कालीन दुग्ध से शुरू करनी चाहिए । दिन में 4 से 5 बार दूध लेना चाहिए। और दूध को अच्छे से आग पर पकाकर उसका उपयोग किया जाना चाहिए। जिससे दुग्ध में उपलब्ध बैक्टीरिया आदि नष्ट हो जाते हैं। और दूध स्वच्छ हो जाता है। दुग्ध उपवास हमारे पाचन क्रिया को तीव्र और मन को स्वस्थ बनाने के लिए काफी लाभकारी है। दुग्ध शरीर स्वास्थ्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण और परम औषधि के रूप में इसे कल्प के रूप में बताया गया है।

7. मठ्ठो उपवास

इसे छाछ कल्प के नाम से जाना जाता है। इस उपवास में दूध को मक्खन से रहित करके छाछ के रूप में उपयोग किया जाता है। यह पाचन शक्ति को सबसे अधिक क्रियाशील बनाने में सहायक है। दुग्ध उपवास के स्थान पर छाछ उपवास करना अधिक लाभकारी है। क्योंकि दूध की अपेक्षा छाछ का पाचन जल्द ही हो जाता है। साथ ही छाछ कफ दोषों में अधिक लाभकारी है जो रोगों उपचार में प्रयोग किया जाता है । उसमें घी की मात्रा नहीं होनी चाहिए वह पूरी तरह से मक्खन से रहित होना चाहिए। मठों

उपवास प्रारंभ करने से पहले शरीर की स्थिति को अच्छे से तैयार कर लेना चाहिए। तत्पश्चात मठों उपवास को करना चाहिए । इस उपवास को करने से शरीर की पाचन क्रिया ठीक होती है पित्त दोष दूर होता है। और कब्ज की समस्या में भी निजात मिलता है। साथ ही साथ 2 महीने से 3 महीने तक इसे चलाया जा सकता है । इस उपवास को लेते समय यदि किसी प्रकार से पेट का भारीपन लगता है। गैस जैसी समस्या बनती है । तो तुरंत एनिमा चिकित्सा लेनी चाहिए। यह उपवास अजीर्णता को नाश करने में अधिक लाभकारी है।

8.पूर्ण उपवास

यह उपवास अपनी इच्छा के अनुसार किया जाता है। इसमें शुद्ध ताजे जल के सिवा किसी प्रकार से कोई खाद्य पदार्थ नहीं लिया जाता है। इस उपवास में सिर्फ जल का ही उपयोग किया जाता है। इसमें स्वच्छ ताजे जल को आवश्यकता के अनुसार सीधे तौर पर ग्रहण किया जा सकता है । मौसम के अनुसार इसे गर्म करके इसका लाभ लिया जा सकता है। यह उपवास खाली पेट में किया जाता है। इस उपवास से अपच पेट में गैस बनना, पेट की अतिअम्लीयत, पेट में गैस के गूंजे बनना , जलन उत्पन्न होना आदि सभी प्रकार की समस्याओं का निदान होता है । साथ ही साथ सिर दर्द, बदन दर्द, मोटापे आदि में काफी लाभकारी है। यह उपवास अधिक पित्त और कफ वाले व्यक्तियों को करना चाहिए जिससे उनके कफ दोष, उच्च रक्तचाप के साथ मोटापे में अधिक लाभ मिलता है।

9.साप्ताहिक उपवास

यह उपवास भारतवर्ष में बहुत अधिक प्रचलित है। इसमें भारत देश के सभी निवासी भाई ,माताएं, बहन सभी सप्ताह में एक दिन किसी न किसी देवी देवता के आधार पर इस उपवास का पालन करते हैं । इस साप्ताहिक उपवास के नाम से जाना जाता है । इस उपवास में साधारण तौर पर सप्ताह के किसी एक दिन भोजन को पूरी तरह से त्याग कर दिया जाता है। उसे दिन में सिर्फ जल को पीकर पूरे दिन को व्यतीत किया जाता है। और अगले दिन फिर भोजन के माध्यम से उपवास की क्रिया को छोड़कर सामान्य दैनिक दिनचर्या के रूप में भोजन को उपयोग किया जाता है। यह उपवास अरुचि, सिर दर्द, सुस्ती, आलस्य , मानसिक विकार, पेट से संबंधित समस्याएं आदि के निवारण में अधिक लाभकारी है। साप्ताहिक उपवास हर व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए रामबाण का कार्य करता है।

10.लघु उपवास

यह उपवास नाम से ही प्रतीत होता है। लघु अर्थात छोटा जो कम समय में किया जाता है । कम समय में किए जाने वाले उपवास को लघु उपवास कहा जाता है। इस उपवास की अवधि 3 दिनों से लेकर 7 दिनों तक मानी गई है जिसमें स्वेच्छा के अनुसार जल दुग्ध छाछ फलों का रस आदि को किसी न

किसी प्रकार के खाद्य पदार्थ या बिना खाद्य के भी किया जा सकता है। इस लघु उपवास कहा जाता है। यह छोटे–छोटे रोगों को दूर करने में अधिक प्रभावी है।

11.कड़ा उपवास

यह उपवास नाम से ही प्रतीत होता है कड़ा अर्थात कठोर इससे बहुत ही कठिनाइयों के रूप में प्रयोग करके रोगों को दूर करने के उद्देश्य किया जाता है। इस उपवास में बहुत अधिक कठिनाइयां होती हैं। इसलिए इस उपवास को दुर्बल , कमजोर, पीड़ित रोगियों को यह उपवास नहीं करना चाहिए । यह शारीरिक रूप से हष्ट पुष्ट और अधिक काफ वाले लोगों को करवाना चाहिए। इस उपवास में किसी प्रकार की कोई लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अन्यथा इस उपवास के लाभ की अपेक्षा कई तरह की हानियां से सामना करना पड़ सकता है। इस उपवास का उपयोग जीर्ण रोगों, असाध्य रोगों, पुराने रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। जब तक किसी प्रकार की कोई बीमारी या रोग ठीक नहीं हो जाता है। तब तक इस उपवास को कठिनाई के साथ पालन किया जाता है। पालन करते समय यदि किसी प्रकार से कोई समस्या उत्पन्न होती है। तो उसे समस्या के दौरान इस उपवास को त्याग देना चाहिए।

12.टूट उपवास

टूट उपवास या उपवास लगातार नहीं करना चाहिए। यह नाम से ही विदित है टूट अर्थात बीच–बीच में करने के पश्चात इस से तोड़ दिया जाता है । और फिर विश्राम करने के पश्चात इसकी अवधि को फिर से शुरू कर दिया जाता है। अर्थात लगातार इस उपवास को लगातार नहीं चलने दिया जाता । इस उपवास में 2 दिन से लेकर 7 दिनों तक किया जा सकता है। जब पूर्ण उपवास का अभ्यास किया जाता है । फिर उसके कुछ दिन पश्चात इस टूट उपवास का अभ्यास किया जाता है। जैसे 2 दिन से लेकर 7 दिन तक के उपवास में दो दिन कुछ नहीं खाते फिर तीसरे दिन किसी अन्य जल या किसी खाद्य पदार्थ के माध्यम से उपवास को रोक दिया जाता है। और उसके बाद पुन इस उपवास को शुरू करके इसे अंत तक समाप्त कर दिया जाता है। यह साधारण रोगों की अपेक्षा जीर्ण रोगों में अधिक लाभकारी है।

13.दीर्घ उपवास

दीर्घ उपवास अर्थात अधिक दिनों तक चलने वाले उपवास को दीर्घ उपवास के नाम से जाना जाता है । यह पूर्ण उपवास के समान नियमों को पालन करते हुए किया जाता है। इस उपवास के लिए किसी प्रकार की कोई समय सीमा नहीं होती है। या उपवास व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर करता है। इस उपवास को कम से कम 21 दिनों से लेकर 60 दिनों तक किया जा सकता है । यह उपवास तभी समाप्त कर सकते हैं। जब वास्तविक रूप से भूख का अनुभव न होने लगे। शरीर के सारे विजाती द्रव्यों से बचाकर

उनके दोष समाप्त हो जाने के पश्चात इस उपवास को तोड़ देना चाहिए । इस उपवास को शारीरिक दृष्टि से किया जाता है। शरीर में बड़े विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। शरीर में अधिक कफ बढ़ जाने पर इस उपवास के माध्यम से शरीर को विजाती द्रव्यों से मुक्त करके इसके लाभों को लिया जा सकता है। इस उपवास का मूल उद्देश्य विजाती द्रव्यों का पाचन करना होता है । जब शरीर के सभी विजातीय द्रव्य धीरे–धीरे शरीर में पचकर नष्ट हो जाते हैं । तब इस उपवास को तोड़ दिया जाता है। अर्थात समाप्त किया कर दिया जाता है। उपवास बिना तैयारी अर्थात अपने शरीर को उसके अनुसार तैयार करने के पश्चात ही करना चाहिए ।

उपरोक्त बताए गए सभी प्रकार के उपवास तभी संभव है। जब इनका नियम पूर्वक और किसी योग्य चिकित्सक के निर्देशन में अपनाया जाए और नियम पूर्वक इन सभी उपवासों का पालन किया जाए तब उनके असाध्य लाभों को देखने को मिल सकता है। और शरीर स्वस्थ में काफी लाभकारी प्रतीत हो सकते हैं। इन सभी प्रकार के उपवासों को करने के दौरान यदि किसी प्रकार से कोई समस्या उत्पन्न होती है। तो इस समय उपवास को त्याग कर कुशल चिकित्सक को की सलाह को मानकर के माध्यम से शरीर को स्वस्थ और निरोग करना चाहिए। हमारे शारीरिक स्वास्थ्य से दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माना गया जो हमारे विचार शक्ति के साथ–साथ हमारी चेतना में सकारात्मक परिवर्तन लाने का काम करता है। और इस प्रकार इन उपवास के माध्यम से आकाश तत्व की शुद्धि भी होती है। और हमारे विचार शक्ति बहुत ही मजबूत और सकारात्मक बनती है।

12.7 प्राकृतिक आहार रोग निवारण में उपयुक्त आहार, संतुलित आहार,

आहार अर्थात जिसे आहरण किया जाए ग्रहण किया जाए वह आहार कहलाता है। प्रकृति वनों एवं औषधीय से संपूर्ण है। तथा प्रकृति से प्राप्त जो भी खाद्य पदार्थ है वह आहार कहलाते हैं। प्रकृति में मनुष्य के लिए अलग–अलग रूपों में औषधियां वनों पर पाई जाती है। जिसका उपयोग मनुष्य भोजन के रूप में करता है वह आहार कहलाता है आहार औषधि है। जिसके उचित प्रकार सेवन करने से निरंतर आरोग्यता तथा अनुचित प्रकार सेवन करने से रोगों की उत्पत्ति होती है। तथा उन रोगों को भी फिर से औषधि के माध्यम से ही दूर किया जाता है। जिस प्रकार किसी वाहन को कार्य करने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार मनुष्य को अपने जीवन यापन के लिए आहार रूप ईंधन की आवश्यकता होती है अतः यह आवश्यक है कि स्वस्थ जीवन के लिए उचित आहार का सेवन किया जाए उचित आहार अर्थात उचित मात्रा ,उचित प्रकार, उचित समय तथा उचित प्रकृति के अनुकूल आहार ग्रहण करना जिससे उसका ठीक प्रकार पाचन हो तथा शरीर को पोषण प्राप्त हो अनुचित आहार अर्थात अधिक मात्रा में भोजन, अनुचित प्रकार से तथा अनुचित समय ,तथा अनुचित शारीरिक प्रकृति के अनुसार भोजन करना जिसके द्वारा उस

भोजन का पाचन उचित प्रकार से नहीं होता है तथा वह भोजन आंतों में रहकर सड़ने लगता है। तथा रक्त के माध्यम से संपूर्ण शरीर पर स्रोतों में जाकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। शरीर के वातावरण को दूषित करता है, जिससे विभिन्न प्रकार के रोग मधुमेह ,गठिया ,मोटापा, थायराइड अन्य प्रकार के शारीरिक तथा तनाव, अवसाद ,चिंता ,क्रोध ,हिंसा भय विभिन्न प्रकार के मानसिक व भावनात्मक वेग उत्पन्न होते हैं । जिससे मनुष्य का समग्र स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

आहार ग्रहण की विधि जितनी महत्वपूर्ण है। उसे अपनाना भी उससे अधिक महत्वपूर्ण होता है। हमारे द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोजन किस प्रकार की कमाई से अर्जित किया है? वह किस प्रकार से पकाया गया है? किसके द्वारा बनाया गया है?तथा भोजन बनाने वाले की मन स्थिति भोजन बनाते समय क्या थी ? यह अति महत्वपूर्ण होता है। अनुचित प्रकार से प्राप्त किया गया अनाज तथा दूषित विचार वाले व्यक्ति द्वारा अस्वच्छ वातावरण में निर्मित भोजन स्वास्थ्य हेतु हानिकारक होता है। इसका उचित लाभ नहीं मिल पाता है। ऐसे भोजन को ग्रहण करने वाले व्यक्ति में क्रोध ,ईर्ष्या, उत्तेजना, चिंता सारे मनोभाव उत्पन्न हो जाते हैं। अतः भोजन का निर्माण अच्छे भाव से स्वच्छ वातावरण में तथा प्रसन्नचित होकर किया जाना चाहिए

गीता में तीन प्रकार के आहार बताए गए हैं जो शरीर की सात्विक, राजसिक और तामसिक गुणों को विकसित कर मानव को मानव के व्यवहार को निर्देशित करता है।

1.सात्विक आहार।

रस युक्त मधुर आहार जिसमें जिससे आयु बुद्धि बल और प्रीति में वृद्धि होती हो जो सुपाच्य हो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। इससे रोगों का उत्पन्न नहीं होता है। उचित प्रकार से पाचन होता है। मन में प्रसन्नता , दया, करुणा , सेवा परोपकार के भावों को जागृत करता है।

2.राजसिक आहार

यह आहार कड़वे ,अधिक खट्टे ,लवण युक्त अधिक तीखा, दाह कारक युक्त भोजन होता है । जो केवल रोगों उत्पन्न करता हैं । यह राजसिक भोजन कहलाते हैं । यह मन में राजसिक भाव उत्पन्न करके मन को विभिन्न प्रकार की कामनाओं, वासनाओं की ओर भी खींचता है।

3.तामसिक आहार

यह दुर्गंध युक्त भोजन ,वासी ,अपवित्र रस रहित भोजन जिसके ग्रहण करने पर शरीर में आलस्य की वृद्धि होती है। ऐसे भोजन तामसिक आहार की श्रेणी में आते हैं। जो मन में तमस गुण उत्पन्न करके मन को वासना , तृष्णा , हीनता, काम , क्रोध, मोह , लोभ की ओर ग्रसित करता है। अतः ऐसे भोजन का सेवन नहीं करना चाहिए इससे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। स्वस्थ मनुष्य को सदैव सात्विक

आहार रुचि पूर्वक ग्रहण करना चाहिए । जिससे शारीरिक कुशलता ,बुद्धि का विकास तथा तन में स्फूर्ति ,मन में प्रसन्नता की प्राप्ति हो सके।

12.7 रोग निवारण में उपयुक्त आहार की भूमिका

उपनिषदों में कहा गया है कि

जैसा खाए अन्न वैसा बने मन।

शरीर में भोजन ग्रहण के पश्चात उसका पाचन तंत्र के द्वारा पाचन के पश्चात भोजन के सूक्ष्म भाग से मन व चित्त में विचारों का निर्माण होता है। तथा स्थूल भाग से रस तथा रक्त आदि सप्त धातुओं के रूप में शरीर का पोषण होता है । वर्तमान समय में आहार का प्रयोग जैसे तेज मिर्च मसाले, मिठाई, डीब्बा बंद चीजो का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा रहा है। जिसके कारण विभिन्न प्रकार के रोग की उत्पत्ति का कारण है । आहार का एक निश्चित समय होता है। जिसे बनाने के पश्चात एक निश्चित समय अंतराल में भोजन ग्रहण कर लिया जाना चाहिए। तभी उस आहार की संपूर्ण ऊर्जा हमारे शरीर को प्राप्त होती है । बासी भोजन में ऊर्जा की मात्रा घट जाती है । जो केवल भूख को शांत कर सकता है। परंतु शरीर को पोषित नहीं कर सकती है। डिब्बा बंद सामग्री भी पूर्ण रूप से ऊर्जा से रहित होती है। तथा उसे संरक्षित रखने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायन का उपयोग किया जाता है । इसके सेवन से शरीर की आंतरिक मांसपेशियां अमाशय, आंत जो की अत्यधिक नाजुक होती हैं रसायनों के सेवन से क्षीण होने लगती है। जिससे विभिन्न प्रकार के अपच , कब्ज,संग्रहणी रोग उत्पन्न होते हैं । क्योंकि आहार का पाचन उचित प्रकार से नहीं होता है। शरीर को उचित मात्रा में पोषण नहीं मिलता है। तथा अपक्व आहार शरीर के विभिन्न तंत्रो की क्रियाविधि को बुरी प्रकार से प्रभावित करते हैं। पाचन संस्थान के लिए हितकर शाकाहार युक्त भोजन है। जिसे सात्विक आहार भी कह सकते हैं। जिसके माध्यम से पाचन तंत्र की क्रियाशीलता को बढ़ाया जा सकता है। उपवास भी पाचन तंत्र को उचित विश्राम प्रदान करता है। विश्राम के पश्चात पाचन तंत्र फिर से अच्छे से कार्य करने लगता है। वह अधिक मात्रा में पाचन करता है। तथा उचित प्रकार से खनिज लवणों को अवशोषित करता है। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न–भिन्न होती है। अतः प्रकृति के अनुसार भारतीय ऋतुओं के अनुसार आहार का सेवन करना चाहिए। विभिन्न ऋतुओं में उनके अनुकूल भोजन करना चाहिए ऐसा करने से स्वास्थ्य संवर्धन होता है। तथा अनुकूल से रोग उत्पन्न नहीं होता है। गर्मी के दिनों में शीतल द्रव्य सेवन तथा ठंड में गर्म द्रव्य सेवन करने से स्वास्थ्य लाभ होता है।
इस निम्न प्रकार भोजन से रोगों की उत्पत्ति होती है

दानेदार चीनी ,फास्ट फूड, पिज़्ज़ा, बर्गर, चाय कॉफी व्यसन अधिक कड़वा खट्टा एवं लवण युक्त आहार जो पित्त को दूषित करते हैं । गरम तथा ठंडा ,कारक गरिष्ठ दुर्गंध तथा बासी भोजन से बात एवं कफ दूषित होकर दोष उत्पन्न करते हैं।

भोजन क्यों एवं कब करें

आहार शरीर की पोषण के लिए आवश्यक है। तथा भोजन उचित प्रकार से भूख लगने पर ही करना चाहिए भूख नहीं होने पर भोजन नहीं करना चाहिए खाये गए भोजन का पाचन हो जाने के पश्चात भोजन करना चाहिए । निरंतर भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात थोड़ी–थोड़ी समय में भोजन करते रहने से उसके पाचन हेतु समस्त पाचन तंत्र को कार्य करना पड़ता है। निरंतर अतः जितनी ऊर्जा भोजन से प्राप्त की जाती है। उनसे कहीं अधिक उसके पाचन में नष्ट हो जाती है। प्रातः समय उचित एवं मध्यान्ह में उचित मात्रा में भोजन लेना चाहिए तथा शाम को हल्की मात्रा में रात्रि को सूर्यास्त के पश्चात भोजन नहीं करना चाहिए।

कब भोजन नहीं करना चाहिए।

भोजन में अरुचि होने पर पाचन तंत्र स्वस्थ होने पर हल्का भोजन लेना चाहिए। तीव्र रोग होने पर भोजन नहीं करना चाहिए। चिंतित व क्रोध की अवस्था में भोजन नहीं करना चाहिए। शोक के समय अधिक शारीरिक व मानसिक परिश्रम करने के थकने के पश्चात भोजन नहीं करना चाहिए कुछ समय विश्राम के पश्चात भोजन ग्रहण किया जाना चाहिए ।

भोजन की प्रकृति

शरीर की उचित प्रकार से सफाई, हाथ मुंह धो कर स्नान के पश्चात भोजन ग्रहण करना चाहिए। भोजन सदैव शांत होकर करना चाहिए भोजन के समय बात करने से मुख सूखता है। जिससे लार ग्रंथियां को अधिक लार का श्रवण करना पड़ता है तथा अच्छे से चबाकर भोजन करना चाहिए।भोजन कंदमूल से युक्त जिसमें उचित मात्रा में खनिज लवण की प्राप्ति हो अंकुरित अनाज, रेशेदार पदार्थ का भजन आमाशय की प्रकृति अमलीय होती है। अतः अधिक मात्रा में क्षारीय भोजन तथा अम्लीय भोजन का सेवन कम मात्रा में किया जाना चाहिए। क्षारीय पदार्थ जैसे गुण खजूर फल सलाद, अंकुरित अनाज , सब्जियां नारियल फल तथा में वे आदि हैं। अम्लीय पदार्थ अधिक चिकनाइ युक्त भोजन जैसे मैदा, बेसन, चिकनाई युक्त आहार तेल, घी , दही , चावल चीनी , अचार , मुरब्बा, नमकीन तथा डिब्बा बंद भोजन ।

भोजन की मात्रा

भोजन हमेशा जितनी भूख लगे उससे काम करना चाहिए। अधिक पेट भरकर भोजन नहीं करना चाहिए । पेट भरकर भोजन करने से आमाशय तथा आंतों में किसी प्रकार की गति नहीं होती है । वह गति करने में असमर्थ होता है। जिसके कारण भोजन का पाचन उचित प्रकार नहीं होता है।

यदि भोजन करने हेतु उचित समय ना मिले तो थोड़ा समय मिलता है। तो थोड़ा ही भोजन किया जाना चाहिए। थोड़े समय में जल्दबाजी में अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। आमाशय का चौथाई भाग हवा पानी के लिए रिक्त रखकर भोजन ग्रहण करना चाहिए। शाकाहार सात्विक भोजन जिससे स्वास्थ्यवर्धक होता है। अधिक ऊर्जा से युक्त होता है। पूर्ण रूप से प्राकृतिक होता है। जिससे प्राकृतिक ऊर्जा हमें मिलती है शाकाहार से वनस्पतियों का उत्पादन अधिक किया जा सकता है। नैतिक रूप से तथा राष्ट्रीय हितकारी है। तन मन धन संरक्षण है। शक्ति वर्धक है। रोगों का उपचार करने वाला है। तथा प्रसन्नता देने वाला है । शाकाहारी भोजन सात्विक रूप से ग्रहण किया जाना चाहिए जिससे उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति हो एवं रोगों का उदय नहीं होता है। इसलिए शुद्ध सात्विक सुपाच्य और सभी प्रकार के पोषण युक्त आहार को ग्रहण करना चाहिए।

संतुलित आहार

संतुलित आहार वह आहार होता है। जिसमें पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा होती है। क्योंकि संतुलित आहार हमारे शरीर की समस्त क्रिया प्रक्रिया और चाप से क्रिया को बनाए रखने में सबसे अधिक लाभकारी है। संतुलित आहार वह आहार होता है। जिसमें कर्बोज ,वसा, प्रोटीन , विटामिन के साथ–साथ सभी प्रकार के खनिज लवणों की मात्रा समान रूप से पाई जाती है। यह सभी खनिज पदार्थ प्रकृति में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है इन खनिज लवणों की प्रति हम भोजन के माध्यम से करते हैं। अंकुरित अनाजों में सबसे अधिक खनिज पदार्थ और पोशक तत्व पाए जाते हैं। इसके साथ–साथ में हमारे आस पास, हरे पेड़ पौधों की पत्तियां फलों सब्जियों आदि से यह सभी प्रकार के पोषक तत्व हमारे शरीर में प्राप्त होते हैं। जिनसे हमारा शरीर स्वस्थ बना रहता है। इसलिए हमारे जीवन में सात्विक आहार के साथ–साथ हमको अपने आहार को दिनचर्या में अपनाना चाहिए । संतुलित आहार के होने से हमारा शरीर काफी , रोगों से सुरक्षित और सुंदर बना रहता है । और हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली अच्छे से कार्य करती है। जिससे हमारा शरीर पूरी तरह से स्वस्थ रहता है। संतुलित आहार हमारे जीवन के लिए अमूल्य वरदान के रूप में है । इसलिए इसका हमें दिन प्रतिदिन की जीवन में अपनाना चाहिए। वह आहार जिसमें भोजन के सभी घटक पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हो जल, खनिज लवण, कार्बोहाड्रेट, प्रोटीन, वसा तथा विटामिन यह सभी शरीर को पोषित करते हैं। शरीर में नई कोशिकाओं के निर्माण करते हैं। यह सभी शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्तरदाई होते हैं। तथा रोगों से रक्षा करते हैं । इन घटकों की एक निश्चित मात्रा में शरीर को आवश्यकता होती है। इसकी मात्रा कम अथवा अधिक होने पर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अतः इनका निश्चित मात्रा में ग्रहण किया जाना आवश्यक होता है । यही संतुलित आहार कहलाता है। संतुलित

आहार हेतु खाद्य मंत्रालय द्वारा हर उम्र के पुरुष, स्त्रियों ,बच्चों व गर्भवती महिलाओं के लिए संतुलित आहार की तालिका बनाई गई है। जिसमें बताया गया है कि कौन सा पोषक तत्व कितने मात्रा में ग्रहण किया जाना चाहिए जिसका पालन करना किया जाना चाहिए संतुलित आहार के 6 घटक होते हैं।

1.जल–

जल एक महत्वपूर्ण उपापचय नियंत्रक घटक है। शरीर का 70% भार जल के कारण होता है । जल की मात्रा शरीर में 50 से 85% तक हो सकती है जल शरीर में विभिन्न प्रकार के परिवहन कार्यों को करता है। जल कुछ विटामिन बी व सी के लिए विलायक का कार्य करता है। यह शरीर की तापमान को नियंत्रित करता है। मलों का निर्माण कर पसीने एवं मूत्र के रूप में शरीर से बाहर करता है इसका मुख्य स्रोत स्वच्छ जल है।

2.खनिज लवण

खनिज लवण शरीर की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक होता है यह शरीर में कार्बनिक एवं अकार्बनिक आयनों के रूप में पाया जाता है। कैल्शियम यह शरीर में अस्थियों व धातु के निर्माण में सहायक होता है। फास्फोरस या फास्फोलिपिड का निर्माण करता है, आयरन यह हीमोग्लोबिन का मुख्य घटक है। जो ऑक्सीजन का संवहन करता है आयोडीन थायरोक्सिन हार्मोन को नियंत्रित करता है उपापचय हेतु उत्तरदाई होता है। मैंगनीज वसीय अम्ल का ऑक्सीकरण करता है।सोडियम व पोटेशियम कोशिकाओं में तरल द्रव्यों की मात्रा को नियंत्रित करता है । क्लोरीन हाइड्रोक्लोरिन अम्ल का प्रमुख अवयव है जो पाचन में सहायता करता है। गंधक अमीनो अम्लों के निर्माण करता है।

3.कार्बोहाइड्रेट

यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। जो कार्बन हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से मिलकर बना होता है। यह पॉलीहाइड्राक्सी एल्डिहाइड व कीटोन होता है। यह शर्करा युक्त योगिक है यह भोजन में घुलनशील शर्करा के रूप में तथा अघूलनशील स्टार्च के रूप में पाया जाता है। यह शरीर में शीघ्र ऊर्जा उत्पादन का कार्य करता है। यह स्टार्च व ग्लाइकोजन के रूप में शरीर में संचित रहता है। श्वसन के समय ग्लूकोज का विघटन से उर्जा उत्पन्न करता है। इसका मुख्य स्रोत चावल ,गेहूं ,अनाज, शकरकंद ,चीनी मिठाई ,फलों के रस ,आलू।

4.वसा

इसकी रासायनिक संरचना कार्बोजके समान होती है। परंतु ऑक्सीजन की मात्रा कार्बोज की अपेक्षा कम होती है। यह वसा अम्ल तथा ग्लीसराल के एस्टर होते हैं। यह भी ऊर्जा का मुख्य घटक है। यह जीव में ऊतकों में वसीय उत्तक के रूप में संचित रहता है। तथा तापरोधी का कार्य करता है ठंड से रक्षा करता है।यह विटामिन ।,A,D,E,K के लिए विलायक का कार्य करता है। इसका मुख्य स्रोत तेल , घी, मज्जा आदि।

5.प्रोटीन

इसकी संरचना कार्बन व वसा से जटिल होता है। यह जीवों का मुख्य घटक होता है। प्रोटीन न्यूक्लिक अम्ल के रूप में डीएनए तथा आरएनए पाया जाता है। शरीर का 14% भाग प्रोटीन से बना होता है। यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत है यह विभिन्न प्रकार के एंजाइम के रूप में शरीर में विद्यमान रहता है इम्यूनोग्लोबिन के रूप में शरीर को प्रतिरक्षा प्रदान करता है। रक्त में हीमोग्लोबिन के रूप में ऑक्सीजन का संवहन करता है। थांबीन एवं फैबरीनोजन के रूप में रक्त का थक्का जमने में सहायता करता है। इसका मुख्य स्रोत विभिन्न प्रकार की दालें ,मूंगफली ,मांस, दूध के उत्पाद ,अंडा, अंकुरित अनाज है।

6.विटामिन

यह कार्बनिक यौगिक होते हैं। इसकी अल्प मात्रा में शरीर को आवश्यकता होती है। उचित मात्रा में या शरीर की क्रियाशीलता को बनाए रखता है। तथा कम मात्रा होने में अंगों में शिथिलता हो जाती है। जो रोग का रूप ले लेता है। यह विटामिन खाद्य पदार्थों से प्राप्त किए जाते हैं। विटामिन ।, A , B, C, D, E, K होते हैं

विटामिन A की कमी से रतौंधी नामक रोग होता है। विटामिन B की कमी से बेरिबेरी तथा पाचन संबंधित समस्याएं उत्पन्न होती है, विटामिन C की कमी से त्वचा रोग होता है , विटामिन D की कमी से शरीर सूखाग्रस्त हो जाता है। विटामिन E की कमी से प्रजनन क्षमता में कमी आती है, विटामिन K की कमी से शरीर में रुधिर का थक्का नहीं जमता है

इन सभी विटामिनों का मुख्य स्रोत खाद्य पदार्थ ही हैं। नींबू, गाजर, दूध, फल, अनाज, सब्जियां तथा सूर्य प्रकाश सूखे मेवे इत्यादि।जो शरीर को स्वस्थ बनाए रखता है और प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाता है। संतुलित आहार की कमी से हमारे शरीर में प्रतिरोधक क्षमता की कमी आती है। और विभिन्न प्रकार के संक्रमण के साथ–साथ खांसी बुखार सर्दी जुखाम आदि समस्या उत्पन्न होकर हमारे शरीर की शारीरिक क्रिया से संबंधित विभिन्न प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो जाती है। और हमारा शरीर रोग ग्रस्त हो जाता

है। इन सभी प्रकार के रोगों से बचने के लिए शरीर की संतुलित रूप से विकास और उन्नतशील दीर्घायु जीवन जीने के लिए संतुलित आहार हमारे जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना गया है।

12.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न –1. आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने उपवास के कितने प्रकार बतलाए हैं? है?

अ. 1

ब. 3

स. 4

द .5

प्रश्न –2. दीर्घकालीन उपवास कितने दिन का होता है?

अ. 10 दिन

ब. 20 दिन

स. 40 दिन

द. 60 दिन

प्रश्न– 3. उपवास चिकित्सा कौन से तंत्र से संबंधित है ?

अ .पाचन तन्त्र

ब. स्वासन तन्त्र

स. अस्थि तंत्र

द. उत्सर्जन तंत्र

प्रश्न– 4. संतुलित आहार में पोषक तत्व पाए जाते है?

अ. विटामिन

ब. खनिज लवण

स. प्रोटीन

द. सभी

सत्य /असत्य कथन

प्रश्न–5. संतुलित आहार में सभी प्रकार के पोषक तत्वों की मात्रा संतुलित रूप में पाई जाती जो स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम उपयोगी है।

प्रश्न–6. भगवत गीता के अनुसार सात्विक, राजसिक, तामसिक तीन प्रकार का आहार बताया गया है।

12.9 सारांश

अतः प्रिय पाठको हमने इस इकाई के अंतर्गत उपवास से संबंधित सभी प्रकार की जानकारी विस्तार पूर्वक प्राप्त की। उपवास हमारे पाचन तंत्र को पूरी तरह से शुद्ध करके समस्त रोगों को दूर करने का अचूक उपाय बताया गया है। उपवास से हमारे शरीर की नाड़ियों की शुद्धि होती है । और शरीर से सभी प्रकार की विजाती द्रव्य शरीर के विभिन्न भागों से बाहर निकलते हैं। और सभी प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए उपवास सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है । उपवास से आकाश तत्व की शुद्धि होती है। जिस व्यक्ति के विचार, इंद्रियां पूरी तरह से सात्विक और पवित्र होती हैं । जिससे व्यक्ति के मन में सकारात्मक आती है। इसके साथ–साथ उपवास के विभिन्न प्रकार की जो अवधारणाएं समाज में प्रचलित हैं। उन धरनो के बारे में विस्तार से हमने जाना यह उपवास चिकित्सा के साथ–साथ सभी प्रकार से सभी वर्ग के द्वारा आसानी से उपयोग करके रोगों को दूर करने के लिए किया जा सकता है। उपवास से होने वाले शारीरिक लाभों को हमें विस्तार से जाना । उपवास से समस्त शरीर के बीमारियां दूर होती हैं। इसके साथ ही साथ उपवास के विभिन्न प्रकार की जानकारी जिसमें लघु उपवास , पूर्ण उपवास, दीर्घ उपवास, रसों उपवास फलों उपवास, मट्ठे का उपवास, पूर्ण उपवास , जल उपवास, टूट उपवास आदि की जानकारी हमने गहनता पूर्वक प्राप्त की इस इकाई में हमने आहार से संबंधित विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है। इसकी जानकारी हमें प्राप्त की आहार के बारे में हमने विस्तार से जाना की सात्विक राजसिक तामसिक तीन प्रकार के गुनो से आधारित आहार हमारे मन अंतरण को निर्माण करके मानव व्यवहार को निर्देशित करता है।

संतुलित आहार हमारे जीवन का मुख्य और सबसे महत्वपूर्ण बताया गया है । संतुलित आहार जिसमें सभी प्रकार के विटामिन , खनिज लवण, प्रोटीन आदि पोषक तत्व पाए जाते हैं। यह पोषक तत्व हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करके रोगों को दूर करने और शरीर को रक्षा करने के लिए परम उपयोगी है। इस संतुलित आहार की ग्रहण करने से मानव के विकास पूर्ण रूप से होता है। और वह सभी प्रकार के रोगों से दूर रहता है । और अपने जीवन प्रसन्नता पूर्वक निरोगी अवस्था में रहकर दीर्घायु को प्राप्त होता है । इसलिए हमारे जीवन के लिए उपवास और संतुलित आहार यह सभी महत्वपूर्ण है। स्वस्थ और संबंधित जीवन जीने के लिए बहुत फायदेमंद है।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न –1 द .5

प्रश्न –2 द. 60 दिन

प्रश्न –3 अ .पाचन तन्त्र

प्रश्न –4 द. सभी

प्रश्न –5. सत्य

प्रश्न–6. सत्य

12.11 निबंधात्मक प्रश्न :–

1. उपवास का अर्थ परिभाषा एवं प्रकारों का वर्णन करे।
2. उपवास का शरीर पर पढ़ने वाले प्रभाव का विस्तार से वर्णन करें।
4 संतुलित आहार से आप क्या समझते हैं विस्तार से समझाइए।
5. आहार क्या है आहार के प्रकार एवं रोग उपचार में आहार की पर टिप्पणी लिखिए।

12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राकृतिक आर्युविज्ञान– डॉ० राकेष जिन्दल
2 .गायत्री महाविज्ञान – आचार्य श्री राम शर्मा
3. प्राकृतिक चिकित्सा – उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालय
4. वागमय जीवेम शरद सतम्। आचार्य श्री राम शर्मा
5.पंचमहाभूत – उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालय
6. प्राकृतिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति – डॉक्टर सरस्वती कला